ज्ञानार्णव प्रवचन

भाग 19

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी “सहजानन्द” महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

श्री ... जैन महिला मंडल,
श्री ...
मल्हारगंज, इन्दौर.

ज्ञानार्णव प्रवचन

१८, १९, २०, २१ भाग

प्रवक्ता:

अध्यात्मयोगी सिद्धान्तन्यायसाहित्य शास्त्री, न्यायतीर्थ

पूज्य श्री गुरुवर्य्य मनोहर जी वर्णी

"श्रीमत्सहजानन्द महाराज"

प्रकाशक:

खेमचन्द जैन सर्राफ,

मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ (उत्तर प्रदेश)

स्वाध्यायार्थी बन्धु, मन्दिर एवं लाइब्रेरियोंको
भारतवर्षीय वर्णी जैनसाहित्य मन्दिरकी ओरसे अर्धमूल्यमें।

प्रथम संस्करण १०००] सन् १९७२ [मूल्य १५)

Report any errors at vikasnd@gmail.com

आत्म-कीर्तन

http://www.jainkosh.org

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री शान्तमूर्ति पूज्य श्री मनोहरजी वर्णी
"सहजानन्द" महाराज द्वारा रचित

हूं स्वतन्त्र निश्चल निष्काम । ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ।।टेक।।

अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहं रागवितान ।
मैं वह हूं जो हैं भगवान, जो मैं हूं वह हैं भगवान ।।१।।

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ।।२।।

सुख दुःख दाता कोइ न आन, मोह राग दुःख की खान ।
निजको निज परको पर जान, फिर दुःखका नहिं लेश निदान ।।३।।

जिन शिव ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुंचूं निज धाम, आकुलताका फिर क्या काम ।।४।।

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूं अभिराम ।।५।।

••••○○○••••

[धर्मप्रेमी बंधुओ ! इस आत्मकीर्तनका निम्नांकित अवसरों पर निम्नांकित पद्धतियों में भारतमें अनेक स्थानोंपर पाठ किया जाता है । आप भी इसी प्रकार पाठ कीजिए]

१—शास्त्रसभाके अनन्तर या दो शास्त्रोंके बीचमें श्रोतावों द्वारा सामूहिक रूपमें ।
२—जाप, सामायिक, प्रतिक्रमणके अवसरपर ।
३—पाठशाला, शिक्षासदन, विद्यालय लगनेके समय छात्रों द्वारा ।
४—सूर्योदयसे एक घंटा पूर्व परिवारमें एकत्रित बालक, बालिका, महिला तथा पुरुषों द्वारा ।
५—किसी भी आपत्तिके समय या अन्य समय शान्तिके अर्थ स्वरुचिके अनुसार किसी अर्थ, चौपाई या पूर्ण छंदका पाठ शान्तिप्रेमी बन्धुओं द्वारा ।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञानार्णव प्रवचन एकोनविंश भाग

पिण्डस्थध्यान वर्णन प्रकरण ३५

पिण्डस्थं च पदस्थं च रूपस्थं रूपवर्जितम् ।
चतुर्द्धा ध्यानमाम्नातं भव्यराजीवभास्करैः ॥१८५६॥ (अ)

चतुर्विध ध्यानोंमें आर्त व रौद्रध्यानका निर्देश——ध्यान चार प्रकारके होते हैं—आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान। आर्तध्यान तो दुःख भरी स्थितिमें जो ध्यान होता है उसका नाम है। जैसे इष्टका वियोग हो गया, अनिष्टका संयोग हो गया, शरीरमें कोई वेदना रोग हो गया, किसी वस्तुकी आशा लगाये बैठे हैं, किसीका निदान बाँधा, ऐसी स्थितियोंमें दुःखभरी स्थिति होती है, उस समयके ध्यानका नाम आर्तध्यान है। देखिये जैसी पीड़ा इष्टके वियोगमें व अनिष्ट अर्थात् बैरीके संयोगमें होती है, अथवा शरीरमें व्याधि रोग हो जानेपर होती है वैसी ही पीड़ा और बल्कि उससे भी बढ़कर किसी वस्तुकी आशा करनेमें, अमुक चीज मिले ऐसा निदान बाँधनेमें होती है। सुखी तो वे पुरुष हैं जिन्होंने कोई इच्छा नहीं की। दूसरा ध्यान है रौद्रध्यान। रुद्र परिणाम होना, खुश रहना, मौज मानना और क्रूर परिणाम रखना, उसका नाम है रौद्रध्यान। जैसे हिंसा करना कराना और उसमें आनंद मानना, झूठ बोलना, चुगली करना, झूठी गवाही देना, निन्दा करना, असत्य वचनोंमें आनन्द मानना, किसीकी वस्तु चुरा लेना, कोई कलासे किसीका कोई द्रव्य हड़प लेना, उस कलामें आनन्द मानना और अपनी चतुराई समझना—ये सब रौद्रध्यान हैं। परिग्रहोंका संग्रह करके विषयोंके साधनोंकी रक्षा करना, विषयके साधनोंमें प्रीति बढ़ाना ऐसे मौजोंका नाम रौद्रध्यान है।

धर्मध्यानका निर्देश——धर्मध्यान धर्मसम्बंधी ध्यानको कहते हैं। प्रभुकी भक्ति करना, तत्त्वका चिन्तन करना, कर्मोंका फल विचारना, जगतके स्वरूपकी रचनाका विचार करना आदिक ये सब धर्मध्यान हैं। और शुक्लध्यान नाम है स्वच्छध्यानका। जहाँ रागांश नहीं प्रवर्तता है और वस्तुस्वरूपका ध्यान बनता है उसका नाम है शुक्लध्यान। इन चार प्रकारके ध्यानोंमें आर्तध्यान और रौद्रध्यान तो बुरे हैं, संसार बढ़ावनहारे हैं और धर्मध्यान शुक्लध्यान ये मोक्षके कारणभूत हैं। इस प्रसंगमें धर्मध्यानका वर्णन चल रहा है। धर्मध्यानके चार भेद हैं—आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय। प्रभुकी आज्ञाको प्रमुख

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मानकर उस पद्धतिसे धर्मध्यान करना आज्ञाविचय है। अपायविचय नाम है रागादिक भाव कैसे विनष्ट हों, इन कर्मशत्रुवोंसे छुटकारा कैसे हो, यों रागादिकमें विनाशका चिन्तन करना सो अपायविचय है। कर्मोंके फलका विचार करना, पुराण पुरुषोंके चरित्र बांचकर अथवा वर्तमानके देवोंको देखकर कर्मफलका चिन्तन करना विपाकविचय धर्मध्यान है। संस्थान-विचय धर्मध्यान लोकरचना, कालरचनाका चिन्तन करना सो संस्थानविचय धर्मध्यान है। अभी संस्थानविचय धर्मध्यानका वर्णन चला था, अब उस ही ध्यानके अंगभूत चार प्रकारकी जो धर्मध्यान करनेकी पद्धतियां हैं उनका वर्णन करेंगे।

संस्थानविचय धर्मध्यानकी चार पद्धतियां—वे चार पद्धतियां क्या हैं, वे चार प्रकार के संस्थानविचयके भेद कौन हैं सो इस श्लोकमें बताया है। पिंडस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत—ये चार प्रकारके ध्यान आचार्य देवने बताये हैं। जिन योगीश्वरोंके सद्वचन सुनकर भव्य जीव रूपी कमल प्रफुल्लित हो जाते हैं ऐसे संत योगीश्वरोंने ये चार प्रकारके संस्थान-विचय ध्यान बताये हैं। इनका वर्णन आगे विस्तारसे आयगा, और फिर सामान्य रूपसे समझ लीजिये कि पिण्डस्थ नाम तो है अपने आपके पिण्डमें, शरीरमें, अपने आपके प्रदेशोंमें कुछ ऐसी धारणा बनाना, कल्पना करना, जिसमें यह जीव बाह्य प्रसंगोंसे छूटकर अपने आपके एक चिन्तनमें और निर्भार ज्ञानानन्दस्वरूपके अनुभवमें आता है पिण्डस्थकी वह पद्धति है, स्वयं आचार्य देव बहुत विस्तारसे बतायेंगे। पदस्थ ध्यान है किसी मंत्र पद्धतिका आश्रय लेकर चिन्तन करें। मंत्र कितने ही प्रकारके हैं—छोटे, बड़े और मझोले। मंत्र अनेक हैं। उनमें से किसी भी मंत्रका सहारा लेकर ध्यान बने, चिन्तन करना, भक्ति करना वह पदस्थ ध्यान है। रूपस्थध्यान है अरहंत भगवानका स्वरूप चिन्तन करके उनके ध्यानमें जो चिन्तन चलता है वह रूपस्थ ध्यान है और अष्टकर्मोंसे रहित केवल निजस्वरूपमात्र आत्मतत्त्वका, परमात्मतत्त्व का चिन्तन होना रूपस्थ ध्यान है। इन चार ध्यानोंमें से पिण्डस्थ ध्यानका इस अधिकारमें वर्णन कर रहे हैं।

पिण्डस्थं पञ्च विज्ञेया धारणा वीरवर्णिताः।
संयमी यास्वसंमूढो जन्मपाशान्निकृन्तति ॥१८५६॥ (ब)

पिण्डस्थध्यानमें पांच धारणायें—पिण्डस्थ ध्यानमें वीरभगवानकी दिव्यध्वनिसे प्रगट उपदेशमें बताया है कि ५ धारणायें होती हैं। उनमें संयमी मुनि ज्ञानी होकर उन ध्यानोंमें उपयोग करके संसाररूपी जालको काट देते हैं। ध्यानके लिए सीधा तत्त्व तो है अपने आत्मा का सहजस्वरूप और यत्र तत्र न भ्रमण करना, उपयोग नहीं फंसाना है। सारभूत तत्त्व तो अपना सहज ज्ञानानन्द स्वरूप है। वहाँ उपयोग देते हैं जिसके प्रतापसे सर्वकर्ममल, सर्व उपा-

Version 1

धियाँ दूर होती हैं। जब यह सीधा ध्यान नहीं बन सकता जो कि सहज है, सुगम है और परमार्थ है तब मन वश करनेके लिए और मनको एक सत्पथमें लगानेके लिए इस ही निर्भार आत्मस्वरूपके चिन्तनके लिए कुछ धारणायें की जाती हैं, कुछ विचार बनाये जाते हैं और उन विचारोंके रूपमें अपनेको निरखा जाता है तो वे धारणायें कहलाती हैं। वे धारणायें ५ कौन कौन सी हैं, इसका वर्णन आगे के श्लोकमें कर रहे हैं।

पार्थिवी स्यात्तथाग्नेयी श्वसन वाथ वारुणी।
तत्त्वरूपवती चेति विज्ञेयास्ता यथाक्रमम् ॥१८५७॥

पांच धारणाओंका निर्देश—पिण्डस्थध्यानके अंगभूत ५ धारणायें हैं ये—पार्थिवी, आग्नेयी, श्वसना, वारुणी और तत्त्वरूपवती। इन सबका वर्णन आगे आयगा। बहुत अपने कामका वर्णन है। हम किस प्रकार अपना ध्यान बनायें, कैसी साधना करें कि हम अपने आपमें बिराजे हुए इस अंतस्तत्वको विशुद्ध बना लें, संसारके समस्त संकटोंसे छूटें, इसके लिए ध्यानका सहारा लेना होता है। कितना मोहान्धकार छाया है जीव पर कि जो व्यर्थकी बात है—बाह्यसाधन परिवार मित्रजनोंका मोह अथवा लोगोंमें अपना कुछ नाम चाहना आदिक कितनी एक विडम्बनाकी बातें हैं कि इनमें उपयोग पड़ा हुआ है और समय निकल जाने पर यह खुद अपने आप यह अनुभव करता है कि मैं रीताका रीता ही रहा। जन्म लिया, सम्पर्क में बसा, क्या क्या किया, वह सब व्यर्थ ही गया। कुछ साथ न रहे, यह मैं रोता ही चला जा रहा हूं, बल्कि जो कुछ मैंने पूर्वभवमें कमाई की थी उसको इस भवमें गंवाकर जा रहा हूं। एक कविने अलंकारमें बताया कि देखो जब बालक पैदा होता है तो कुछ मुट्ठी-सी बाँधे हुए रहता है और जब मरता है तो हाथ पूरा फैला हुआ रहता है। तो इसमें हुआ क्या कि जब आया तब पुण्यको बाँधकर लाया जन्म समय और ज्यों ज्यों आयु व्यतीत हुई, बड़ा हुआ कषाय जगीं सो उसने अपना पुण्य बरबाद किया। अब कुछ हाथ नहीं रहा सो हाथ पसारे जा रहा है और भी देख लो, जब बच्चा छोटा होता है तब सबको कितना प्रिय रहता है? वह बच्चा छोटे बड़े सभीके गोद गोदमें ही रहता है। सभी उस बालक को प्रसन्न रखना चाहते हैं, उसकी बड़ी सेवा होती हैं। तो मालूम होता है कि अभी उसके पुण्यका उदय है जो पुण्य पूर्वभवमें कमाया उसका यह फल है कि अशक्त है वह बालक, चल फिर भी नहीं सकता, अच्छी तरह बोल भी नहीं सकता, पर लोग उस बालकके लिए कितना आँखोंकी पलकें बिछाये रहते हैं। तो क्या हुआ कि उसके पुण्यका उदय विशेष है। फिर जब वह बड़ा होता है तो फिर कुटता पिटता भी है, अनेक आपत्तियां भी आती हैं, घरसे निकाल भी दिया जाता है, वृद्ध हुआ तब तो और भी दीन बन जाता है। तो इससे भी यह साबित हो रहा कि मनुष्यभवमें पुण्यके साथ आया है सो वह बचपनमें बड़ा सुखी रहा और फिर विषय

कषायोंमें पड़कर उसने अपने पुण्यको खतम कर दिया । तो यह संसार बड़ा भयानक है । जन्म मरणसे प्रेरित हैं ये जीव । इनको उत्तम ध्यान ही शरण है । जब परमार्थ सहज ज्ञायकस्व-रूपका ध्यान नहीं जमता, पात्रता विशेष नहीं है तो उस समय इस जीवको इन धारणाओंका सहारा लेना चाहिए । उनमेंसे पहिले पार्थिवी धारणाका स्वरूप बतलाते हैं ।

तिर्यग्लोकसमं योगी स्मरति क्षीरसागरम् ।
निःशब्दं शान्तकल्लोलं हारनीहारसन्निभम् ।।१८५८।।

पार्थिवी धारणामें प्राथमिक ध्यानमें विशाल क्षीरसागरका चिन्तन—प्रथम ही योगी एक तिर्यक् लोकका विचार करे । तिर्यक् लोक उसे कहते हैं जिसमें जम्बूद्वीप, लवण समुद्र, धातकी खण्ड आदिक असंख्याते द्वीप समुद्र विस्तारको प्राप्त हैं । देखो जब घरमें रहते हैं तब क्या हाल होता है और जब इन असंख्यात द्वीप समुद्रोंका ज्ञान करनेमें ध्यान रहता है तब अन्तरमें कितना एक हल्कापन रहता है, सन्तोषकी ओर सा रहता है, तो सर्व प्रथम पार्थिवी धारणामें क्या चिन्तन करे यह जीव ? यह धारणा पद्मासन, अर्द्ध पद्मासन जैसा आसन लगा-कर की जाती है । यों चर्चा करते हुए या सोते हुए, या किसी भी तरह बैठे हुए यह बात बने ऐसा नहीं है । किसी स्थिर आसनसे बैठकर योगी अथवा श्रावक यह चिन्तन करे कि यह तिर्यक् लोक है जहाँ असंख्याते द्वीप समुद्र हैं और यह निःशब्द है, कहींसे कोई शोरगुल नहीं हो रहा, कोई शब्द नहीं हो रहे, सारा प्रदेश भूमण्डल और सागरका प्रदेश भूमण्डल और सागरका प्रदेश सब निःशब्द है, समस्त सागर कल्लोलरहित है ऐसा पहिले इस तिर्यक् लोकका चिन्तन करे और फिर बर्फके तुल्य शान्त शीतल स्वच्छ एक क्षीर सागरका चिन्तन करे । यह पार्थिवी धारणामें एक प्रारम्भिक चिन्तन है । इसके पश्चात् क्या विचारे ?

तस्य मध्ये सुनिर्माणं सहस्रदलमम्बुजम् ।
स्मरत्यमितभादीप्तं द्रुतहेमसमप्रभम् ।।१८५९।।

विशाल क्षीरसागरमें सहस्रदल कमलका चिन्तन—अभी चिन्तन किया था कि असं-ख्याते द्वीप समुद्रोंसे वेष्ठित, असंख्याते लोकमें फैला हुआ यह तिर्यक् लोक है और इस तिर्यक् लोकके मध्यमें एक क्षीर समुद्र है, उसमें अथाह जल है, दूधके समान सफेद है, शान्त है, कल्लोलरहित है, ऐसा क्षीरसागर सोचा था, इसके पश्चात् यह धारणा करें कि उस क्षीर सागरके मध्यमें एक सहस्र दल कमल है, जिसकी रचना सुन्दर है और चारों ओर फैलती हुई दीप्तिसे कान्तिमान है और तपे हुए स्वर्णकी तरह लाल प्रभाववाला एक सहस्र दल वाले कमलका चिन्तन करें । इस चिन्तन करनेमें देर नहीं लगती । एक पलक मारते ही सारा चिन्तन हो गया । जैसे कभी कहीं बड़ी दूर रहने वाले रिश्तेदारका चिन्तन कर रहे हैं अथवा अन्य किसी मित्रका चिन्तन कर रहे हैं तो उसमें क्या विलम्ब लगता ? एक पलक मारते ही

http://sahjanandvarnishastra.org/

वह स्मृतिमें आ जाता है। बम्बई कलकत्ता वगैरह जानेमें तो २४ घंटे लगते होंगे रेलगाड़ीसे, पर इस मनको भी क्या इतना समय लगता है ? अरे इस मनको तो पलक मारते मारते ही झट स्मृत हो जाता है। उसे कुछ भी विलम्ब नहीं लगता। तो यह एक धारणा बतायी जा रही है कि एक बड़ा तिर्यंक लोक है इतने विस्तार वाला, असंख्याते योजन वाला और उसके मध्य क्षीरसमुद्र है, उसके बीच एक तप्तायमान स्वर्णकी सी प्रभा वाला एक कोटिमान सहस्र दल कमल हैं, इसके बाद क्या चिन्तन करे ?

अब्जरागसमुद्भूतकेसरालिविराजितम्।
जम्बूद्वीपप्रमाणं च चित्तभ्रमररञ्जकम् ॥१८६०॥

पार्थिवीधारणामें आसनस्थानरूप कमलकी विशालताका चिन्तन—वह कमल जम्बूद्वीपके प्रमाण एक लाख योजनका फैला हुआ है। चिन्तन ही तो है। वहाँ कोई यह शंका नहीं करना है कि इतना बड़ा कमल होता है क्या ? यह तो एक धारणा है। जब यह वर्णन समाप्त होनेको होगा, इस धारणाका स्वरूप पूरा जब सुन लिया जायगा और कुछ उसके अनुरूप अपने आपका चित्त बनेगा तो स्वयं अनुभव कर लेंगे कि इस धारणामें इस जीवका उपयोग कितना विशुद्ध बन जाता है और अपने आपके स्वरूपका स्पर्शन करने वाला होता है। अभी तो एक चिन्तन चल रहा है। एक बड़ा तिर्यंक लोक है, उसमें क्षीर समुद्र है, उसमें एक लाख योजनके विस्तारका सहस्रदल कमल है जिसकी लालिमासे उत्पन्न हुई जो केसरोंकी पंक्ति है उससे शोभायमान है। कमलके बीचमें बाल बराबर पतले कर्णिकासे कुछ उठे हुए बहुतसे केसर रहते हैं, हर एक फूलमें मिलेंगे और उनमें उनके ऊपर कुछ बूँद बूँद सी केसर रहती हैं जो झरती भी हैं, तो उस सहस्रदल कमलमें केसरकी पंक्ति है, उससे शोभायमान है और मनको हरने वाला, चित्तको रंजायमान करने वाला एक लाख योजनका ऐसा सहस्रदल कमल है। तीन केन्द्र तक आप आयें। इतना बड़ा तिर्यंक लोक जिसमें असंख्याते द्वीप समुद्र समाये हैं, उसके मध्य क्षीर समुद्र और उसके बीच है एक लाख योजन का शोभायमान सहस्रदल कमल। फिर क्या चिन्तन करे ?

स्वर्णाचलमयीं दिव्यां तत्र स्मरति कर्णिकाम्।
स्फुरत्पिङ्गप्रभाजालपिशङ्गितदिगन्तरम् ॥१८६१॥

कमलमें स्वर्णिम कर्णिकाका चिन्तन—अब उस कमलके बीचमें कर्णिका का चिन्तन करे। कमलमें कर्णिका बहुत स्पष्ट होती है और फूलमें भी होती है, बीचमें कुछ उठा हुआसा भाग जिसके चारों ओर केसरकी पंक्ति लगी रहती है, उसका नाम है कर्णिका। कमलकी कर्णिकामें ही तो कमलगट्टा पैदा होते हैं। उस कमलके मध्यमें मेरुपर्वतके समान स्फुरायमान पीत रंगकी प्रभा वाले जिसे अपने पीत रंगसे समस्त दिशाओंको पीला बना दिया है ऐसी कर्णि-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

काओंका चिन्तन करे। यह चौथी भूमिका है। तिर्यंक लोकके बीचमें क्षीरसमुद्रके मध्यमें एक लाख योजनका कमल और उसके मध्य मेरू समान विस्तार की कर्णिका का चिन्तन करे।

शरच्चन्द्रनिभं तस्यामुन्नतं हरिविष्टरम्।
तत्रात्मानं सुखासीनं प्रशान्तमिति चिन्तयेत् ॥१८६२॥

विशाल कमलकर्णिकापर सिंहासनपर अपनेको आसीन होनेका अवलोकन—अब उस कमलके बीच जो कर्णिका है उस पर अपने आपको बिराजा हुआ निरखे, अपनेको नगरसे बहुत ऊँचे उठा ले गए और इतने बड़े विस्तारमें तिर्यंक लोकमें क्षीरसमुद्रके मध्यमें एक लाख योजनके कमलके बीच मेरू पर्वतके समान उत्तंग कर्णिका पर यह मैं स्वयं बैठा हुआ हूं ऐसा अपने आपके आत्माको बिराजमान निरखे। ले तो जाये कोई अपने उपयोगसे अपने आपको अपनेमें, देखिये वहाँ कितना हल्कापन प्रगट होता है? जब आप अपने बारेमें स्थिर आसन करके और इस तरहका चिन्तन करके अपनेको ऊपर उठा ले जायेंगे, जमीनका भी पता न रहेगा कि मैं किस जगह बैठा हूं, इस धारणामें इस तरहकी चिन्तना ले जायें कि मैं इतनी उत्तंग मेरू पर्वतके समान कर्णिका पर बिराजा हूं और चारों ओर यह सब दृश्य है, उसके मध्य बहुत ऊँचे चलकर मेरू कर्णिकापर अपनेको बैठा हुआ चिन्तन करें, और भी कुछ विशेषताके साथ उस कर्णिकामें एक श्वेत स्वच्छ चन्द्रके समान धवल ऊँचा सिंहासन है, उसमें अपने आपको शान्तरूप निश्चल चिन्तन करें। लो यह मैं हूं। स्वयं अपने आपका स्वरूप अपने उपयोगमें बिराजा रहे, ऐसा अपनेको उठायें और वहाँ अपनेको सुखी चिन्तन करें, शान्त चिन्तन करें।

रागद्वेषादि निःशेषकलङ्कक्षपणक्षमम्।
उद्युक्तं च भवोद्भूतकर्मसन्तानशातने ॥१८६३॥

अपनेको निष्कलंक देखनेकी दृष्टि—उस सिंहासनपर बैठे हुए अपने आत्माका ऐसा चिन्तन करें कि यह मैं आत्मा रागद्वेषादिक समस्त कलंकोंका क्षय करनेमें समर्थ हूं। इस भूमंडल पर कितने स्वच्छ वातावरणमें, कितने ऊँचे अपने आपको बिराजमान करके यों निरख कर अपने आपको देखकर यह उत्साह भरे, यह सारे कलंकोंको दूर करनेमें समर्थ है। क्यों कलंक किया था? कोई खोटा परिणाम बनाया था। कितने ही खोटे परिणाम बनाया हो, अब उनके बजाय यदि विशुद्ध चैतन्यस्वभावका उपयोग बने तो सारे कलंक तो लो यों दूर ही तो हो गये। उन रागद्वेषादिक कलंकोंका क्षय करनेमें यह समर्थ है और संसारमें उत्पन्न हुए जो कर्म हैं उनकी परम्पराका नाश करनेमें लो यह बड़ा उद्यमी है। ऐसा अपने आपको राग-द्वेषमयी वातावरणसे बहुत ऊँचे उठाकर अपने आत्मामें इस प्रकार चिन्तन करें इसका नाम है पार्थिवी धारणा। इसमें भौतिक तत्त्वोंका, पार्थिवी पिण्डका सहारा लिया गया है, इस कारण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इस धारणाका नाम है पार्थिवी धारणा ।

ततोऽसौ निश्चलाभ्यासात्कमलं नाभिमण्डले ।
स्मरत्यति मनोहारिषोडशोन्नत पत्रकम् ॥१८६४॥

आग्नेयी धारणामें नाभिमण्डलस्थ कमलका चिन्तन—इस पिण्डस्थ ध्यानमें जो चार प्रकारकी धारणावोंका वर्णन किया जा रहा है—पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत । तो ये चारों धारणायें बिल्कुल जुदी हैं, सिलसिलेसे प्रारम्भ करनेकी हैं । वे ५ धारणायें हैं—पार्थिवी, आग्नेयी, श्वसना, वारुणी और तत्त्वरूपवती । इनमें पार्थिवी धारणासे जो कुछ चिन्तन कर लिया, उसके बाद फिर आग्नेयी धारणाकी बात शुरू होती है । ऐसा नहीं है कि कोई पार्थिवी धारणा करके ही अपना ध्यान समाप्त कर ले और कोई आग्नेयी धारणासे ज्ञान शुरू करे, किन्तु ये सब क्रमवर्ती हैं । पार्थिवी धारणामें इस ध्यानार्थी पुरुषने यह चिन्तन किया था कि असंख्यात योजनका तिर्यक् लोक है, उसमें क्षीर समुद्र है, उसमेंसे बीचमें मेरू पर्वतके समान एक सहस्र दल कमल है और उस कमलकी कर्णिकापर एक स्वच्छ सिंहासन पर मैं बैठा हूँ, ऐसा चिन्तवन करनेसे उसने अपने आपको दुनियाके वातावरणसे और उपयोग में भूमितलसे उठाकर बहुत दूर अपनेको विराजमान किया है । इस ही ध्यानमें बहुतसे कषायों के मंद होनेकी बात हो जाती है । इसके पश्चात् अब वहीं विराजा हुआ यह ध्यानार्थी पुरुष निश्चल अभ्याससे अपने नाभिमण्डलमें सोलह ऊँचे-ऊँचे पत्रोंके एक सुन्दर कमलका ध्यान करता है । मैं वहाँ ऊपर बैठा हूं, और उसकी नाभिपर एक सोलहपत्रोंका कमल है । इस कमल की क्यों कल्पना यह कर रहा है, उसका प्रयोजन क्या बतावोगे ? सामान्यतः ऐसा समझ लो कि वहाँ दो कमल विचारे जाते हैं एक नाभिपर सोलह दल कमल, जिसकी पंखुड़ी ऊपरको उठी हुई हैं और उसके ऊपर हृदयपर एक आठ पत्रोंका कमल है जिसकी पंखुड़ी नीचेको चली हैं । यों समझिये कि जैसे खिले कमलपर खिला कमल धर दिया जाय तो एकका मुख ऊपर हुआ, एकका मुख नीचे हुआ । ऐसा क्यों चिंतन किया जा रहा है, यह सब आगे आयगा । तो अभी इतना चिन्तन कर रहा है । अपनेको इस जीवनसे ऊँचे तो पहिले ही उठा रखा था, अब इस ही स्थानपर विराजे हुए अपने आपके शरीरमें नाभि कमलपर सोलह पत्रोंके कमल का यह योगी चिन्तन कर रहा है ।

प्रतिपत्रसमासीनस्वरमालाविराजितम् ।
कर्णिकायां महामन्त्रं विस्फुरन्तं विचिन्तयेत् ॥१८६५॥

नाभिमण्डलस्थ कमलके पत्रमें स्वरमालाका व कर्णिकामें महामंत्रका चिन्तन—इतना चिन्तन करनेके बाद उस कर्णिकामें जो नाभिपर विचारा है कमल, उसमें भी तो बीचमें कर्णिका है, उसमें महामंत्रका चिन्तन करे । कौन महामंत्र ? जो अभी आगे बताया जायगा,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

जिसमें एक स्वर लगा हुआ है। णमोकार मंत्रकी बात नहीं कही जा रही है, किन्तु उसके बीच मंत्र होता है, जिसमें समस्त मंत्रोंका सार गर्भित है, जिसका उच्चारण करना तो जरा कठिन है, उसका आकार एक 'ह' का अक्षर है, जिसपर रेफ लगा है और उसपर अनुनासिक मात्रा लगी है, जिसे कोई विशिष्ट वचन ऋद्धि वाला शुद्ध बोल सकता है। अर्हँ बोलेंगे तो अ आयगा। अर्हँकी जो स्थिति है उसमें अ को निकालकर बोलिये, और उस कमलके सोलह पत्रोंपर सोलह स्वरोंका चिन्तन करें। एक एक पत्रपर एक एक स्वर अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः। आजकल तो ॠ ॡ आदि शब्दोंका तो हिन्दी भाषामें प्रयोग ही नहीं किया जाता, इन्हें कोई लोग जानते ही नहीं हैं। इंगलिशमें भले ही आर-आई लिखें। तो उसमें व्यञ्जन लगाकर लिखते हैं। ऋ का व लृ का आकार यदि स्वरके ढंगसे हो तो वह स्वर कहलाता है, और ऐसा विचार लो कि य र ल व का ल अक्षर है, उसमें ऋ लगी है तो वह व्यञ्जन बन जायगा। उसके उच्चारणमें कुछ अन्तर हो जायगा।

ये स्वर क्यों कहलाते हैं? तो जो स्वयं बोला जाय उसे स्वर कहते हैं। व्यञ्जन शुद्ध नहीं बोला जाता, उसमें स्वरका सहारा चाहिए। जैसे "क", तो क में अ मिला है तब क उच्चारण कर सके। क में अ लगाये बिना नहीं बोल सकते। कभी बोल भी सकते जैसे अक्। इसमें बोल दिया। मगर वहाँ विशुद्ध क के बोलने के लिए शुरूके अ का सहारा मिल गया। क्य, इसमें भी आधा क बोल दिया जायगा पर इस विशुद्ध क बोलनेमें अ का सहारा मिला। आप कितने ही व्यञ्जन लगा दें और उसमें एक स्वर छोड़ दें तो सबका उच्चारण बन जाता है। एक शब्द है "कर्टस्न्यर" इसमें कितने अक्षर आया। क आया, अ आया, आधा र, त, स, न य और र इतने अक्षर हैं अर्थात् र त स न ये चार आधे अक्षर लगे हुए हैं। इसका उच्चारण करनेमें य और अ का सहारा लिया है। स्वर बोलनेमें किसी सहारेकी जरूरत नहीं है, वह स्वयं बोला जा सकता है, यह स्वर कहलाता है। श्रुतज्ञानके शब्दोंमें व्यञ्जन शब्द भी आते हैं, पर स्वरोंका भी वहाँ बड़ा महत्त्व है, जिनके बिना व्यञ्जन बोले नहीं जा सकते। दूसरा स्वर जैसे बिना किसी अपेक्षाके स्वयं बिराजमान रहा करता है इसी तरह हमारे लक्ष्यके पवित्र सिद्ध भगवंत भी स्वयं पलटते हैं। उनको किसी कर्म आदिकके सहारेकी आवश्यकता नहीं होती। तो इन स्वरोंका उस नाभि कमलके एक एक पत्रपर चिन्तन करें और उस कर्णिकामें हँ मंत्रका चिन्तन करें। उस मंत्रका स्वरूप बतला रहे हैं जिसकी कर्णिकामें विराजमान किया। (पिण्डस्थ ध्यानवर्णन प्रकरण ३७)

रेफरुद्धं कलाविन्दुलाञ्छितं शून्यमक्षरम्।
लसदिन्दुच्छटाकोटिकान्तिव्याप्तहरिन्मुखम् ॥१८६६॥

कर्णिकामें रेफरुद्ध हँ महामंत्रका चिन्तन—यह मंत्र अक्षर रेफसे रुद्ध है अर्थात् अन्तमें

http://sahjanandvarnishastra.org/

रेफ है और कला बिन्दुसे चिह्नित है अर्थात् अर्द्ध चन्द्राकार उसके ऊपर है ऐसा हकार अक्षर है सो देदीप्यमान चन्द्रमाकी छटाकी तरह कान्तिसे व्याप्त और किया है दिशावोंको स्वच्छ जिसने ऐसा महामंत्र यह हँ उस नासिकामें स्थापित करके चिंतन करें। कितना ऊपर बिराजे और वहाँ नाभिकमल पर सोलह पत्रोंका एक कमल है, जिसकी कर्णिका ऊपर हैं और कमल-पत्र भी ऊपरसे उठा हुआ है। प्रत्येक पत्रपर स्वर लिखा है क्रमसे। जब कभी अक्षरोंको गोल लाइनमें लिखा जाता है तो दाहिनी तरफसे बढ़ाकर नहीं लिखा जाता। जैसे हम हिन्दी में लाइन लगाते हैं तो बायेंसे दाहिनी तरफ बढ़ते हुए लगाते हैं। पर जब गोलमें इन अक्षरों को लिखें तो बायेंसे दाहिनी तरफ बढ़कर न लगायेंगे किन्तु दाहिनेसे बाईं ओरको चलाते हुए लिखेंगे। इसको लोग उल्टा लिखना कहेंगे किन्तु यह सीधा है। उन वर्णोंके लिखनेसे एक गोलकी प्रदक्षिणा दे देते हैं तो वह सोलह पत्रोंपर स्वर बाईं ओरसे बढ़ता हुआ लिखा जायगा। ऐसे एक कमलका चिन्तन करता है यह योगी और उस कमलके मध्यमें कर्णिका का विचार करता है, जिस कर्णिकापर यह महामंत्र लिखा हुआ है।

तस्य रेफाद्विनिर्यान्तीं शनैर्धूमशिखां स्मरेत्।
स्फुलिङ्गसन्ततिं पश्चाज्ज्वालालीं तदनन्तरम् ॥१८६७॥
तेन ज्वालाकलापेन वर्द्धमानेन सन्ततम्।
दहत्यविरतं धीरः पुण्डरीकं हृदि स्थितम् ॥१८६८॥

महामंत्रके रेफसे निर्गत विशुद्ध अग्निज्वालासे हृत्कमलपत्ररूप अष्टकर्मके दहनका चिन्तन—इस योगी ने चिन्तन किया है अपने आपके पद्मासन या सुखासन हँ पद्मासनको स्थिर करके नाभिपद्मका चिन्तन किया है। जिसका स्वरूप स्वरोंसे मण्डित और .... से शोभित है। अब इसके पश्चात् यह चिन्तन चल रहा है कि महामंत्रमें जो रेफ ऊपरसे उठी हुई पड़ी है उस रेफसे मन्द मन्द निकलता हुआ धुवां और उसमें अग्निकी छोटी-सी शिखा है। यह चिन्तन कर रहा है और इस चिन्तनका प्रयोजन क्या है? तो अभी आगेके श्लोकमें बतावेंगे कि हृदयपर एक औंधा कमल भी बना है जो ८ पत्रोंसे सहित है और वे ८ पत्र हैं—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय आदि कर्मोंका। इन ८ कर्मोंसे यह नाभिकमल ढका हुआ है। इसे प्रगट नहीं होने देते। तो उस स्थितिमें यह चिन्तन चल रहा है कि नाभिकमलके रेफसे मंद मंद धुवांकी शिखा उठ रही है। इस समय कोई सोचता भी होगा ऐसा कि ये सब कल्पनाएँ बनायी जा रही हैं। चीज तो कुछ है ही नहीं। कल्पनाएँ ही सही। भाव ही तो करता है जीव, पर इन कल्पनाओंके दौरानमें इस जीवका उपयोग कितना विशुद्ध होता है? यह एक विचार करके तो अनुभव कर लो। एक विशुद्धि बढ़ती है और जब यह [illegible] धारणा तक चलेगा, पाँचों धारणायें समाप्त

Report any errors at vikasnd@gmail.com

होंगी तब इसका और प्रभाव विदित होगा कि ऐसी धारणा विचारनेसे आत्मामें कितनी विशुद्धि जगती है ? यह धारणा तो कुछ शुभ है ना। जब विषयकषायके व्यामोहमें यह जीव अनेक खोटी धारणायें कर रहा है, वासनायें बना रहा है, उनमें तो कुछ तथ्य है ही नहीं। इन धारणावोंमें विषय कषाय शिथिल होते ही हैं और अपने आपको भाररहित अनुभव करता है यह जीव। इन सोलह दलों वाली नाभि कमलकी कर्णिकापर उल्लिखित कमलकी रेफसे। ....उसमें प्रवाह रूपसे निकलती हुई स्फुलिंगा, स्फुलिंगा कहते हैं जैसे अग्निकी ज्वालासे निकलकर थोड़ी थोड़ी अग्निकी बूँदें निकलती हैं इसी प्रकार वहाँसे स्फुलिंगोंकी पंक्ति उठने लगे और उसमें अब ज्वाला बहुत बढ़ी, उससे लपटें भी निकलीं, तब योगी क्रमसे बढ़ती हुई उस ज्वालामें कमलका जलता हुआ चिन्तन कर रहा है। उस महामंत्रकी रेफसे ज्वाला शुरू हुई और उसमें ये अष्टकर्मोंके पत्र जल गए, ऐसा जलता हुआ चिन्तन करता है। कभी कोई ऐसा सोचे कि यह कल्पनाकी बात है तो चलो कल्पना ही सही। अभी तक यह जीव अपनेको कायरकी कल्पना कर रहा था, अपनेको पतित नीच, तुच्छ कल्पनाएँ कर रहा था, उन कल्पनाओंकी अपेक्षा ये कितनी अच्छी कल्पनाएँ हैं। तो ऐसा चिन्तन करे कि मेरु पर्वतके समान बड़े सहस्र दल कमलपर सिंहासनपर विराजमान आत्माने एक नाभिकमलसे निकली हुई शिखायें अष्टदल कमलको जलता हुआ चिन्तन किया। वह अष्टदल कमल कैसा है ?

तदष्टकर्मनिर्माणमष्टपत्रमधोमुखम् ।
दहत्येव महामन्त्रध्यानोत्थप्रबलोऽनलः ॥१८६९॥

कर्मरूप पत्रके दहनका अवलोकन—जो हृदयमें स्थित कमल अधोमुख है, नीचेको पंखुड़ियां लटक रही हैं आठ पंखुड़ियां, उन ८ पत्रोंपर ८ कर्म स्थित हैं, ऐसे कमलको नाभिस्थ कमलपर ठहरे हुए महामंत्रकी रेफसे निकलती हुई ज्वालाका चिन्तन कर रहा है। यह अग्नि फक फक होकर ऊपरको उठ रही है और ये अष्टकर्म जले जा रहे हैं ऐसा चिन्तन कर रहा है। इसमें परमार्थकी बात यह भी है कि जब जीव अपने आपमें विराजमान उस ज्ञायकस्वरूपके अनुभवन चैतन्य प्रतपनके तपानेसे जो एक बलवती ज्वाला उत्पन्न होती है ध्यान ज्वाला, उसके द्वारा ये रागादिक विभाव भस्म हो जाते हैं और अष्टकर्म भी भस्म हो जाते हैं, यह चैतन्य परिणामोंकी सामर्थ्य है।

ततो वहिः शरीरस्य त्रिकोणं वह्नि मण्डलम् ।
स्मरेज्ज्वालाकलापेन ज्वलन्तमिव वाडवम् ॥१८७०॥

आग्नेयी धारणामें अग्निविस्तार विधिका अवलोकन—इसके पश्चात् अर्थात् कमल दग्ध हो गया, वे अष्ट कर्म जल गए, ऐसा निरखनेके बाद उस शरीरके बाहर त्रिकोणरूपसे अग्निका विस्तार हुआ। अग्नि फैली तो किस तरह ? त्रिकोणरूपसे। इस त्रिकोणके विचार

में भी कुछ मर्म है। एक तो अग्निका स्वरूप ही कोण-कोण वाला है। चौखूटी अग्नि, जलती हुई अग्नि, बराबर ठीक आकारसे, चौकोर या गोल रूपसे, किसी भी सुन्दर आकारसे अग्नि जलती हो सो बात नहीं है। अग्नि जलती है तो कोणोंको पैदा करके जलती है, और नीचेसे ऐसी दिखती भी है कि नीचे फैली हुई है और ऊपर चलकर दोनोंका एक कोना बन गया। दूसरी बात यह है कि जिस शरीरमें विराजा हुआ यह योगी ध्यान कर रहा है, उस शरीरका आकार भी त्रिकोण बन गया है, नीचे पद्मासनके कारण चौड़ाई विशेष है, और ऊपर सिर तक ले जाय तो वह एक त्रिकोण बन जाता है, उस ज्वालासे कर्म भस्म हुए और कर्मोंको भस्म करके यह अग्नि त्रिकोणरूपमें चारों तरफ विस्तृत हो गई, जिस ज्वालाका ऐसा भयानक रूप है कि जो बड़वानलके समान तीव्र ज्वाला है। बड़वानलकी आगपर किसीका वश नहीं चल सकता। जलमें आग लगी हो तो उसे फिर किस तरह बुझाया जाय ? बाहरमें आग लगी हो तो उसे जलसे बुझा लें, पर समुद्र जलका समूह है और समुद्रमें ही बड़वानल उठता है, पानीसे ही आग निकलती है तो उसपर वश किसीका नहीं चलता है। वह स्वच्छन्द होकर बेरोकटोक बड़ी प्रभुताके साथ फैल जाती है। इसी तरह यह महामंत्रकी रेफ ज्वालासे निकली हुई, बढ़ी हुई यह आग जो त्रिकोण हो गई है वह बेरोकटोक बिचर रही है, ऐसा ध्यान करें।

वह्निबीजसमाक्रान्तं पर्यन्ते स्वस्तिकाङ्कितम्।
ऊर्ध्ववायुपुरोद्भूतं निर्धूमं काञ्चनप्रभम् ॥१८७१॥

आग्नेयी धारणामें काञ्चनप्रभ सबीज अग्निका अवलोकन—अब यह अग्नि किस प्रकार अपना स्वरूप रख रही है, जो बीजाक्षर 'र' से व्याप्त है। अग्निका बीजाक्षर 'र' है। रमरमरम उच्चारण करिये। कुछ इसकी ध्वनिमें कुछ अग्निकी सदृश्यता किन्हीं अंशोंमें है, इसलिए यह अग्निका बीजाक्षर माना जाता है। तो यह अग्नि र से व्याप्त है और अन्तमें साथियाके चिन्हसे चिह्नित है और ऊपरसे जो वायुमण्डल चल रहा है उससे उत्पन्न हुई चंद्र की प्रभा वाली यह अग्नि शिखा है, इस प्रकार चिन्तन करे। एक अपने उपयोगको अपने आपमें तपाया जा रहा है।

अन्तर्दहति मन्त्रार्चिर्बहिर्वह्निपुरं पुरम्।
धगद्धमितिविस्फूर्जज्ज्वालाप्रचयभासुरम् ॥१८७२॥

मन्त्रार्चि द्वारा अन्तः कर्मदहन—यह अग्निकी ज्वाला धगधगायमान फैलती हुई लपटोंसे कान्तिमान बाहरके अग्निमंडल बाहरके पुरसे यह चल रही है अर्थात् यह मंत्रसे उत्पन्न हुई अग्नि एकदम फैलकर अब उस अग्निको ही जला रही है। अग्निका काम ही ऐसा होता है कि दूसरेको जलाकर खुद जल जाती है। एक क्रोधकी अग्नि तो विलक्षण इतनी है कि दूसरेको तो जला देती है पर खुदको नहीं जला पाती अर्थात् यह क्रोध क्रोधके द्वारा नष्ट नहीं हो पाता।

http://www.jainkosh.org

यह क्रोधकी ज्वाला अग्निकी ज्वालासे भी भयानक है। अग्नि तो जल जलकर स्वयं भी शांत हो जाती है, पर यह क्रोध जल जलकर स्वयं नहीं जल पाता है। यह मंत्राक्षरसे निकली हुई ज्वाला अष्टकर्मोंको जलाकर अन्तमें बेरोकटोक चारों ओर त्रिकोणरूपसे फैलकर धूमरहित स्वर्णकी तरह कान्तिवाली अग्नि बनकर अब यह उस अग्निको भी शान्त कर रही है। जब स्वच्छता आती है तब शान्ति होती है। अग्निमें जब तक धुवां साथ दे रहा हो तब तक अग्नि शांत नहीं होती। अग्निके शान्त होनेका समय तब है जब धुवां बिल्कुल नहीं रहता और एक स्वर्णकी तरह चमकती हुई आग रह जाती है तब आग शान्त होती है। तो यह अग्नि ज्वाला फैलकर (अग्निमण्डल) अन्तरङ्गकी मंत्राग्निको दग्ध करती है।

भस्मभावमसौ नीत्वा शरीरं तच्च पङ्कजम्।
दाह्याभावात्स्वयं शान्तिं याति वह्निः शनैः शनैः ॥१८७३॥

देह, पङ्कज, कर्मका भस्म करके वह्निका शनैः शनैः उपशम होनेका अवलोकन—क्या हो रहा है अब कि यह अग्निमण्डल नाभिस्थ कमलकी कर्णिकापर लिखे हुए महामंत्रकी लेपसे निकली हुई ज्वाला अष्टकर्मोंको जलाकर अब नाभिस्थ कमल और शरीरको भी भस्मभूत करके चूंकि अब जलाने योग्य पत्र कुछ रहा नहीं तो धीरे-धीरे यह अग्नि अपने आप शांत हो जाती है। आग्नेयी धारणामें इस प्रकारका यह योगी चिन्तन कर रहा है। पार्थिवी धारणामें अपने आपको अशुद्ध वातावरणसे बहुत ऊँचा उठाकर विराजमान किया गया है, फिर आग्नेयी धारणामें उस एक महामंत्रके ध्यानसे एक चैतन्य प्रतपनकी ज्वाला उठी और उस ज्वालाने अष्टकर्मोंको जलाया। देखिये यह जो महामंत्र है इसमें अनेक देवतावोंका स्थान गर्भित है। इसमें व्यञ्जन दो हैं र और ह। र का संकेत होता है दो और ह का संकेत होता है चार। तो दो और चार मिलकर हुए २४। ये हुए चौबीस तीर्थंकर। उनका इसमें मुख्यता से स्मरण है, और फिर तीर्थंकर कहकर उपलक्षणसे सब अरहंत आये। सो समस्त परमेष्ठियों का इस महामंत्रमें स्मरण है। करणानुयोगके गणित शास्त्रमें जहाँ संख्यावोंका वर्णन किया जाता है वहाँ क से लेकर झ तक अर्थात् ९ अंकोंकी कल्पना है। ट से लेकर न तक, फिर ९ अंकोंकी कल्पना है। इन कल्पनाओंके सहारे अक्षर बोलकर गिनती बनायी जाती है। य र ल व इनमें १, २, ३, ४ श ष स ह इनमें १, २, ३, ४। तो इस महामंत्रमें र और ह के सन्निवेशसे सभी अरहंत परमेष्ठियोंका स्मरण किया गया है। जैसे जिनेन्द्र भगवानके स्वरूपमें चैतन्यका प्रतपन है उस ही भांति यहाँका एक प्रताप पुञ्ज निकला शिखाके रूपमें, उसने इन अष्टकर्मोंको जलाया। अन्तमें यह अग्नि चारों ओर बेरोकटोक फैलकर धूमरहित हो गई, स्वच्छ हो गई। तो यह अग्निमण्डलने अपने आधारभूत नाभिमण्डलको भी जलाया, और यहाँ सारा मल जल चुका, केवल आत्मा ही आत्मा रहा। इस प्रकारका चिन्तन इस आग्नेयी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

धारणामें यह ध्यानी योगी कर रहा है।

विमानपथमापूर्य सञ्चरन्तं समीरणम्।
स्मरत्यविरतं योगी महावेगं महाबलम् ॥१८७४॥

वायव्यी धारणामें महावेग समीरणका स्मरण—योगीने सर्वप्रथम पार्थिवी धारणामें अपने आपको बहुत बड़े विस्तारसे कल्पना करके बहुत ऊँचे सहस्र दलपर, सिंहासनपर विराजा हुआ चिन्तन किया था, पश्चात् नाभिकमलसे जो कर्णिकामें महामंत्रकी रेणुसे निकली शिखा थी उसको अष्टकर्मोंने जलाया, इस प्रकार चिन्तन किया, और वह अग्नि ऐसी चारों ओर बढ़ी कि निष्कोण आकारमें शरीरके चारों ओर फैल गयी और वह अग्नि इस शरीरको, कर्मको सबको भस्मसा करके स्वयं शान्त हो गयी। इस प्रकार आग्नेयी धारणाके पश्चात् अब मारुती धारणामें आ रहा है। अब इस ध्यानीने यह चिन्तन किया कि आकाशमें पूर्ण होकर विचरती हुई यह हवा जो महावेग वाली है, महा बलवान है, ऐसा वायुमण्डल विचर रहा है।

चालयन्तं सुरानीकं ध्वनन्तं त्रिदशालयम्।
दारयन्तं घनव्रातं क्षोभयन्तं महार्णवम् ॥१८७५॥
व्रजन्तं भुवनाभोगे संचरन्तं हरिन्मुखे।
विसर्पन्तं जगन्नीडे निविशन्तं धरातले ॥१८७६॥
उद्धूय तद्रजः शीघ्रं तेन प्रबलवायुना।
ततः स्थिरीकृताभ्यासः समीरं शान्तिमानयेत् ॥१८७७॥

वायुमहावेगकी विशेषता व भस्मपरिहार—इतने महावेग वाली वह वायुमण्डल है कि जिस हवाने देवोंकी सेनाको भी चलायमान कर दिया। देवोंकी सेना बड़ी बलवान ऋद्धि सम्पन्न है, पर उस समय ऐसा वायुमण्डल चिन्तनमें आया कि उसने देवसेनाको भी चलित कर दिया। मेरु पर्वत भी कँप गया, जिस वायुमंडलके निष्पातसे प्रबल वायुमंडलका चिन्तन किया जा रहा है, यह वायुमंडल क्या करेगी कि जो सारी भस्म पड़ी है आग्नेयी धारणामें शरीर और कर्मकी जो भस्म है उसको उड़ायेगी। यह ध्यानी अपनेको केवल चैतन्यस्वरूपमें उपयोग लेना चाहता है और उसके लिए ये धारणायें बनायी हैं। वह वायुमंडल इतनी प्रबल है कि समूहोंको बखेर रही है। जब तीव्र वायु चलती है तो कितने ही घने मेघ हों उनको तितर बितर करके शिथिल कर देती है। यह वायुमंडल समुद्रमें भी बड़ा क्षोभ पैदा करता रहता है। कहो ऐसा वायुमंडल आये कि सर्व दिशावोंमें समुद्रमें सर्वत्र कँप जाय, ऐसा वायु मंडल अब उत्पन्न हुआ है। वह वायुमंडल लोकके मध्यमें गमन कर रहा है। इस आकाशमें वायुमंडल है तो अब यह मध्यसे आया और दसों दिशावोंमें फैलता हुआ, इस सारे जगतमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

फैलते हुए अब पृथ्वीतलमें प्रवेश करता हुआ। यह वायुमंडल है ऐसा चिन्तन करें। कहाँसे वायुमंडल चला ? आकाशसे चला। बड़े वेग वाला चलते-चलते अब संकुचित होकर बड़े वेगको उत्पन्न करके अब पृथ्वीतलमें प्रवेश करने लगा, फिर ऐसा चिंतन करे वह, वायुमंडल आया और शरीरका जो भस्म, कर्मोंका जो भस्म था उस सबको इस वायुमंडलने उड़ा दिया। अपने आपको केवल विचारनेके लिए, अकिञ्चन देखनेके लिए यह चिन्तन चल रहा है। लो अब यहाँ कुछ नहीं रहा। अब यह आत्मा ही आत्मा रहेगा, वही दृष्टिमें रहेगा। ये सब बोझ तो हट गये, जल गये, उड़ गए। उस वायुमंडलने इन समस्त भस्मोंको उड़ाया और अन्तमें यह स्वयं स्थिर हो गया। वायुमंडल अब शांत हो गया। जब कभी भी तीव्र आँधी चलती है, तो आँधी आयी और सारे उपद्रव करके, विघटन करके अंतमें वह शांत हो जाती है। तो यह वायुमंडल भी शरीर और कर्मकी भस्मको उड़ाकर अब यह स्वयं स्थिर शांत हो गया, ऐसा मारुती धारणामें यह योगी चिंतन कर रहा है।

ध्यानमें सर्वत्र ज्ञानधारणाकी झांकी—देखिये समस्त व्यवस्था सुख दुःख, शांति अशांति सब कुछ अपनी ज्ञानधारापर निर्भर हैं। बाहरमें कुछ भी पड़ा हो, कुछ भी चल रहा हो, यदि भीतरमें ज्ञान सावधान है तो उसे कोई क्लेश नहीं और बाहरमें बड़ा मौज हो, वैभव हो, ठाठ हो लेकिन ज्ञान विचलित हो गया है तो उसको तो अशांति ही है। इसमें दृष्टांत की क्या जरूरत ? जगतमें ऐसा साक्षात् देखनेको मिलेगा कि जिसके घरमें सारा ठाठ है, आजीविकाकी चिंता नहीं, सब कुछ होकर भी दिमाग बुद्धूसा है, पगलासा है, कुछ ज्ञान काम ही नहीं करता, दुःखी है, अथवा घरमें कलह हो गया, लड़ाई हो गई, लो दुःखी हो गए, और अनेक गरीब भी ऐसे मिलेंगे जो गरीबीमें गुजारा कर रहे हैं, कोई घबड़ाहट नहीं है, कर्मोंपर विश्वास है। जो स्थिति होती हो वह हो, आज जो है सो ठीक है, जो होगा सो ठीक है। उस गरीबोंको परिस्थितिमें भी परस्पर प्रेमसे रहकर एक दूसरेको धर्ममें सावधान करते हुए प्रसन्न नजर आते हैं। तो जिसकी ज्ञानधारा सावधान है, अविचलित है वह शान्त और सुखी है, और जिसका ज्ञान बिगड़ गया वह अशांत और दुःखी है। तो यहाँ ध्यानके प्रकरणमें इस ही ज्ञानकलाकी बात चल रही है। जैसा अपनेको कोई निरखे उस योग्य अपनेमें बात उत्पन्न होती है। यहाँ तो एक विशुद्ध तत्त्वकी प्राप्तिके लक्ष्यसे कल्पना चल रही है। एक बच्चेको कोई अगर इस तरहसे समझा दे—अरे तू तो राजा है, राजा भी कहीं इस तरह ऊधम किया करते, तो वह तुरन्त शान्त होकर बैठ जायगा।

ज्ञानका महाप्रताप—कोई पुरुष अपनेको पतित अनुभव करे, मैं तो बहुत पापी हूं, मैं अपना क्या उद्धार कर सकता हूं, मेरा जीवन तो अब सारा बेकार हो चुका है। लो ऐसा जिसने अपने आपमें अनुभव किया वह उठ नहीं सकता, और कोई यह अनुभव करे कि क्या

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है पतन, यह तो अनादिकालसे होता चला आया है, अनादिकालसे डूबे चले आ रहे हैं, व्यसनों में, पापोंमें, मोहमें, जिसके फलमें यह संसार भ्रमण चल रहा है। सो पतन माना गया है। अपना भाव विकृत होना, अपने आत्माकी सुधि खो बैठना, अपने आपकी दृष्टि न रह सके यही तो पतन है। कितना भी यह पतन हो चुका हो, किन्तु जब भी आत्मा अपने आपकी सुध लेता है तो आखिर पर्यायमें तो एक ही पर्याय रहेगी। लो जब तक वे खोटे भाव चलते थे, चले। अब आज यदि आत्मदृष्टिका भाव जगा है तो अब क्षणमात्रको भी न रहेंगे। कहाँ गया वह पतन? सारा पतन समाप्त हो गया। अब तो ऊपर ऊपर की ही बात है। जिसने अपने आपको इस तरहसे सम्हाल लिया उसको उद्धार हो गया, सुख शान्तिके लिए बाहरी धन वैभव इज्जत आशा प्रतीक्षा स्नेह इनमें दौड़नेकी जरूरत नहीं है। इनमें परिश्रम करनेसे, व्यापार करनेसे शांतिकी सिद्धि नहीं है। यह है होता है पर शांतिकी सिद्धि तो एक अपने आपके स्वरूपकी सम्हालसे है। आज सारा जगत शांत है। यहाँकी दुनिया सब परेशान है। देशमें बड़ी हैरानी है। तो वह हैरानी पर आशाकी है। धन आशा, जीवन आशा, नामवरीकी चाह, अपनी कुर्सी मिलना, अपना पद बना रहना, ये सारी बातें चित्तमें आती हैं तो अशांति रहती है। जो कुछ भी नहीं चाहता, कुछ भी वासना चित्तमें न रखे, लो वह अभी शान्त है। तो शांति अशांतिका सम्बंध अपने ज्ञानपर निर्भर है। यहाँ मारुती धारणामें इस योगी पुरुषने यह चिन्तन किया। आग्नेयी धारणामें यह अग्नि ज्वाला चारों ओर बढ़कर कर्मोंको, शरीर को, सबको भस्म किया और खुद उज्ज्वल बनकर निर्धूम होकर स्वयं शांत हुआ, इसके पश्चात् तीव्र वायुमण्डल चला और यह उसी जलमें प्रवेश करता हुआ समस्त भस्मको उड़ा ले गया। अब भस्मसे रहित केवल यह मैं आत्या चिदानन्दघन रह गया। ऐसी धारणा मारुती धारणा में योगीने की।

वारुण्यां स हि पुण्यात्मा घनजालचितं नभः।
इन्द्रायुधतडिद्गर्जच्चमत्काराकुलं स्मरेत् ॥१८७८॥

वारुणी धारणामें सविभव मेघमालाका चिन्तन—इसके बाद वारुणी धारणाका आश्रय लेता है। ऐसा मेघमंडल चला जो आकाशमें सर्वत्र व्याप गया। कभी-कभी देखा होगा कि कुछ भी नहीं है और एकदक चारों ओरसे मेघ उमड़े और बड़े घनीभूत होकर चारों ओर छा गए और वर्षा होने लगी। ये सब बातें अन्तर्मुहूर्तमें ही होकर खतम हो जाती हैं। ऐसा तो यहाँ भी दिखता है, यह मेघमण्डल बड़े वेगके साथ, आकाशभरमें व्याप कर फैला हुआ है, जहाँ इन्द्रधनुष बिजलीकी गर्जना ये सारे चमत्कार हो रहे हैं ऐसे मेघमण्डलका विचार हुआ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सुधाम्बुप्रभवैः सान्द्रैर्विन्दुभिमौक्तिकोज्वलैः।
वर्षन्तं तं स्मरेद्धीरः स्थूलस्थूलैर्निरन्तरम् ॥१८७९॥

वारुणीधारणामें सुधाम्बुवर्षणका चिन्तन—यह सारा चिंतन इसलिए चल रहा है कि लो इस तरह था, यह घटना हुई, सभी कर्म जले, भस्म भी उड़ गयी और रही सही जो कुछ भी है वह भी उड़ गयी। थोड़ा बहुत लवलेश तो रह ही जाता है तो उसको धोनेके लिए बहुत मोटी वर्षा भी होने लगी। उन मेघोंसे मोतीके समान उज्ज्वल बड़े बड़े बिन्दुवोंसे बड़ी मोटी धारामें बरषते हुए ये मेघ हैं। ऐसे मेघोंसे व्याप्त आकाशसे जब मोटी मोटी बूँदें गिरती हैं तो मेघोंसे धारा बनकर नहीं गिरतीं, अलग-अलग मोती-सी गिरती हुई दीखती हैं और उन मोटी बूँदोंसे बहुत ही जल्दी सफाई हो जाती है। मेघ वर्षा बड़े-बड़े बिन्दुवोंसे इसने अपनी धार बनाया और उन बिन्दुधारावोंसे जो कुछ भी भस्म था, मल था उस सबको धो डालेगा। चिंतन करना है अपने आपको द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्मसे रहित शुद्ध चिदानंद स्वरूप आत्मतत्त्वका ध्यान करना है। उसपर जो आवरण लगे हैं उन समस्त आवरणोंसे रहित अपने आपका कैसा उपयोग बनायें उसके लिये ये धारणायें चल रही हैं।

ततोऽर्द्धेन्दुसमं कान्तं पुरं वारुणलाञ्छितम्।
ध्यायेत्सुधापयःपूरैः प्लावयन्तं नभस्तलम् ॥१८८०॥

वारुणी धारणामें सर्वत्र जलमयताका अवलोकन—इतना बड़ा ऐसा वायुमंडल चिंतन करें (वरुणमंडल) मेघका देवता है वरुण। देवोंमें जो व्यतंर देव हैं उन देवोंको कुछ अपना-अपना अलग-अलग कौतूहल प्यारा रहता है। कुछ देव ऐसे हैं जो मेघ छटावोंसे ही प्यार रखते हैं, ऐसे मेघ छटावोंसे प्यार रखने वाले उसमें कुछ कौतूहल करने वाले वरुण देव होते हैं, तो उसे वरुणमंडल कहो, या वायुमंडल कहो, एक ही बात है। तो वह कैसा वरुणमंडल है ? अर्द्धचंद्राकार। मेघ कभी चौकोर सुडौल नहीं हुआ करते। वे अटपटे अर्द्ध चंद्राकार कोन निकले हुए नाना प्रकारके आकारमें रहा करते हैं। तो मेघकी मुद्रा अर्द्धचंद्राकार बताया है। साहित्यमें और जो मेघप्रिय देवोंको भी रुचे ऐसी मुद्रासे यह वायुमंडल अर्द्ध चंद्राकार मनको हरने वाला है, अमृतमय जलकी प्रभाको आकाशसे बहाते हुए अर्थात् जलधाराको बरषाते हुए वायुमण्डलका चिंतन यह योगी करता है।

तेनाचिन्त्यप्रभावेण दिव्यध्यानोत्थिताम्बुना।
प्रक्षालयति निःशेषं तद्रजः कायसम्भवम् ॥१८८१॥

वारुणी धारणामें अवशिष्ट कलिप्रक्षालनका अवलोकन—उस जलके द्वारा जिसका विचिन्त्य प्रभाव है जो दिव्यध्यानसे उठा हुआ है, बाहर जल नहीं है, मेघ नहीं आये, यह तो दिव्यध्यानसे उत्पन्न हुआ सारा एक चिंतन है। उस दिव्यध्यानसे उत्पन्न हुआ अमृतमय जल

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

से समस्त उस रजको जो भस्मसात हुई थी प्रक्षालन कर देता है, धो डालता है। तो इतना काम हो चुकनेके बाद पार्थिवी धारणा, आग्नेयी धारणामें भस्मको उड़ाना और वरुण धारणा में जो कुछ पहिले शेष रह गया था उस समस्त रजका धुल जाना, इतना हो चुकनेके बाद अब तत्त्वरूपवती धारणाका वर्णन चलेगा। तत्त्वरूपवती पांचवी धारणा है और इसके लिए ही वे चारों धारणायें थीं। तत्त्वरूप जो वास्तविक आत्माका स्वरूप है उस स्वरूपका चिंतन चलेगा तत्त्वरूपवती धारणामें। जब कोई विषय कषाय परिणाम कुसंगति आदिक जब सुलभ से हो जाते हैं, प्रकृतिमें आ जाते हैं और इसमें जब कुछ विकार बढ़ते हैं तो उस विकारको धोनेके लिए कितनी विशेष डाट चाहिए, आत्मसंयम चाहिए तब ये विकार धुला करते हैं। उनपर संयम करनेके लिए ये चार प्रकारकी धारणायें कही गयी हैं।

ध्यानकी अन्य विधियोंपर भी योगीका अधिकार—उन धारणावोंके साथ जो ध्यान की विधियां हैं और जो कुछ, साधु योगी उनको भी प्रयोगमें लाते रहें, जैसे स्थिर आसनसे बैठना। वहाँ कमर झुकाकर बूढ़ा बुढ़ियोंकी तरह नहीं बैठना है। यदि कमर झुक जाये तो वहाँ निसर्ग हालत रहती है। उसमें ध्यानका इतना विच्छेद नहीं होता लेकिन स्वयं समर्थ हैं, अच्छी प्रकार बैठ सकते हैं और कमर झुकाकर पड़े रहें तो उसमें एक तो जो श्वांस नली है उसपर जोर पड़ता है और दूसरे और और नसाजालोंपर भी ऐसा कुछ जोर रहता है कि जिसमें फिर चित्तकी एकाग्रता नहीं हो पाती है। तो यों मेरु पर्वतको सामने स्थिर करके अपनी श्वासोंको जान जानकर नहीं चलाते, किन्तु अपने आप प्रकृतिसे जैसे श्वास चलती हो, श्वास भरती हो, श्वास निकलती हो स्वभावतः स्थित रहती है। चित्तको एकाग्र करनेके लिए कुछ ऐसा भी योग बताया है कि और विशेष कार्य नहीं बनता है तो हम अपनी श्वासको ही देखें। लो यह श्वास भींतर लो। अगर उस श्वासपर दृष्टि डालें तो बिल्कुल यों समझमें आयगा कि जैसे हम उसे बिल्कुल प्रत्यक्ष कर रहे हैं और प्रत्यक्ष भी है। चक्षु इन्द्रियसे जो वस्तु नजर आये उसका नाम प्रत्यक्ष है, पर इसके अलावा जो शेष चार इंद्रियां हैं उनसे भी जो जाना जाय उसे भी तो प्रत्यक्ष कहते हैं, साम्व्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं। जब श्वास भीतरको ली जाती है तब उस श्वासका स्पर्श होता है; ओठोंपर हो, नाकपर हो, और वह मालूम भी हो रही हो, जब श्वास बाहरको फेंकी जाती है तब भी स्पर्श होता है तो वह भी तो कुछ विशद प्रतीत होता है और कुछ नहीं बनता, चित्त स्थिर नहीं हो पाता तो हम अपनी श्वास जब फेंकें तो उसे समझते रहें और श्वासको भीतर लें तो उसे भी समझते रहें। पहिले यह काम करें। कुछ देर तक यों काम करनेके बाद उस आवाजको सुनें। श्वास निकालनेमें और श्वास लेनेमें आवाज आया करती है। श्वासको जब भीतरकी ओर खींचते हैं तो सो की जैसी आवाज निकलती है और जब श्वासको बाहरकी ओर फेंकते हैं, निकालते हैं तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आवाज हं की जैसी आती है। तो श्वास खींचने और बाहर निकालनेमें सोहंकी जैसी आवाज आती रहती है। जितनी देर श्वासको भीतरकी ओर खींच रहे हैं उतनी देर सो का विचार करें और जितनी देर श्वासको बाहर निकाल रहे हैं उतनी देर हं का विचार करें। श्वास लेने और निकालनेमें सोहं, सोहं की आवाज आया करती है। सोहंका अर्थ है जो प्रभु हैं सो मैं हूं। ऐसा ध्यान करनेके बाद जो प्रभु वीतराग सर्वज्ञ हैं उस परमात्मतत्त्वका ध्यान करने लगिये। उस श्वासके शब्दोंका भी ध्यान छोड़ दीजिये और उस प्रभुके स्वरूपवत् अपने आपको चिदानंदस्वरूप चिंतवन करने लगिये। इस योगसे तत्त्व दीखेगा, मन स्थिर होगा। इस योगको भी योगी पुरुष अपनाता है, करता है और साथ ही जो प्राणायामकी प्रवृत्ति है वह शुरू हो जाती है। आप निश्चिन्त बैठे हों बड़ी शांतिमें, आराममें तो आपकी श्वास चल रही है, निकल रही है, प्रवेश कर गयी है, पर आपको कुछ भान नहीं हो रहा, और थोड़ा श्रम करके यह भी चिंतनमें रहे कि मैंने बड़ा श्रम किया, मैं बड़ा थक गया तो बादमें श्वास बहुत ज्यादा मालूम पड़ेगी कि यह चल रही है, यह निकल रही है। तो इन योगोंसे भी अपने आपके कलंकोंको दूर करें। इन धारणावोंसे इन समस्त कलंकोंको बहा दें। इसके पश्चात् अब रह क्या गया? केवल एक ज्ञानप्रकाश, उज्ज्वल, एक प्रतिभास। सो उस प्रतिभास स्वरूप अपने आपके निरखा गया यह तत्त्व रूपवती धारणामें बात चलेगी और इस तत्त्व-रूपवती धारणाके पश्चात् पिण्डस्थ ध्यानमें जो कुछ करना चाहिए वह सब परिपूर्ण हो जायगा, समाप्त हो जायगा। समाप्तके मायने विनाश नहीं। समाप्तका अर्थ है सम् आप्त। जो पूरी तरहसे पा लिया जाय उसे समाप्त कहते हैं। वहाँ यह अपने शुद्ध चिदानंदस्वरूपका अनु-भव करे।

सप्तधातुविनिर्मुक्तं पूर्णचन्द्रामलत्विषम्।
सर्वज्ञकल्पमात्मानं ततः स्मरति संयमी ॥१८८२॥

पार्थिवी आदि चार धारणावोंके पश्चात् योगीका तत्त्वरूपवती धारणामें चिन्तन— इस योगी ध्यानी पुरुषने प्रथम तो पार्थिवी धारणामें एक तिर्यक् लोकमें क्षीर समुद्रके बीच मेरुपर्वतकी भाँति उत्तुंग सहस्र दलकमलपर सिंहासनपर अपने आपको बिराजा हुआ चिन्तवन करके मनको थामा था। तत्पश्चात् आग्नेयी धारणामें नाभिकमलके बीच कर्णिका लगी हुई लोकमंत्रकी रेणुसे निकली हुई शिखा ज्वालासे ऊपर अधोमुख कर्ममलको जलाया और भस्म करके यह अग्नि ऐसी बढ़ी कि शरीरको भी भस्म कर चारों ओर त्रिकोणरूपसे उज्ज्वल ठहर कर शान्त हो गयी, इस तरह चिन्तन कर विषय कषायोंसे धुनि हटाकर अपने आप उस मन को थामा। पश्चात् मारुती धारणामें एक बड़े वायुमण्डलका चिन्तन करके उस वायुमण्डल के द्वारा रही सही भस्म सब उड़ा दी गई। इस तरह अपने आपका चिन्तन किया। फिर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वारुणी धारणामें मेघमण्डल इतने जोर से वर्षा कर गया कि वहाँ भस्मके शेष रहे समस्त कण भी धुल गए। वहाँ क्या रह गया ? केवल आत्मा ही आत्मा। इस तरह केवल आत्मा ही रह जाय इस चिंतनमें आया। अब इसके बाद वह तत्त्वरूपवती धारणाको करने लगा। इस धारणामें यह संयमी पुरुष अपने आपको सप्तधातुरहित पूर्ण चंद्रके समान निर्मल प्रभा वाले स्वच्छ ज्ञानानंद प्रकाशमय सर्वज्ञ समान अपने आत्माका ध्यान कर रहा है। जिस पुरुष की दृष्टिमें केवल यह आत्मा आत्मा ही रहता है, यह ज्ञानानंद स्वरूप अमृत जैसा इसके गुण पर्यायरूप समूह है एतावन् मात्र जिसकी दृष्टिमें रहता है उसे समस्त विषयकषायोंके विकल्प छूटनेसे एक समताभावका अवसर आता है और उस समय जो एक अद्भुत आनंद प्रगट होता है उस आनंदके अनुभवसे यह अपनेको तृप्त करता है। ये धारणायें चल रही हैं, चिंतन में आ रही हैं कि द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्मसे रहित यह मैं आत्मा हूं, यद्यपि बंधनमें बद्ध है, पर जिस समय ऐसा उपयोग किया जा रहा था उस समय यह आत्मा अबद्ध निर्लेप अनुभव में आता है।

मृगेन्द्रविष्टरारूढं दिव्यातिशयसंयुतम्।
कल्याणमहिमोपेतं देवदैत्योरगार्चितम् ॥१८८३॥
विलीनाशेषकर्माणं स्फुरन्तमतिनिर्मलम्।
स्वं ततः पुरुषाकारं स्वाङ्गगर्भगतं स्मरेत् ॥१८८४॥

तत्त्वरूपवती धारणामें आर्हतवैभवोपेत आत्मतत्त्वका अवलोकन—अब योगी ऐसा चिंतन कर रहा है–अपने आत्माके अतिशयसे युक्त यह आत्मतत्त्व है। इसका ज्ञान विकास बढ़े तो ऐसे वेगसे अमर्याद बढ़ता है कि इस ज्ञानविकास गुण फैलाव हो जानेमें समस्त लोकालोक को तो जानता ही है, त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थोंको तो जानता ही है, किन्तु ऐसे अनेक लोकालोक होते तो उन्हें भी यह ज्ञान जानता। यह तो एक ज्ञानभाव है। यहाँ कोई स्थानमें तो लोकालोक नहीं आता कि आत्माका प्रदेश भर गया है, लोकालोक समा गया है, अब दूसरा कहांसे जाननेमें आये ? यह तो भावात्मक तत्त्व है, इसी कारण इसकी कोई सीमा नहीं है कि यह कितनेको जाने, जो कुछ भी सत् है समस्त विश्व है, वह सब इस ज्ञानके एक कोनेमें पड़ा हुआ है। इस तरह यह असीम ज्ञान होता है। यह आत्माका है अतिशय। ऐसा अतिशयकर युक्त यह आत्मा चिंतनमें आ रहा है। सिंहासनपर आरूढ़ अनेक कल्याणक महिमा सहित देव धरणेन्द्र आदिकसे पूजित अपने आत्मतत्त्वका चिंतन कर रहा है, यह एक आत्मस्वरूपके विकासके मार्गमें आने वाली बात है। कुछ अहंकार इसमें नहीं आता कि दानव आदिक पूज रहे हैं बल्कि एक वैराग्य बढ़ रहा है। देव आदिक आते हैं तो उनका कुछ भगवानसे रिश्ता नहीं है। भगवान और देव ये दो तो बिल्कुल अलग जातिके देव हैं। वे देव गतिके हैं, यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

मनुष्य गतिके हैं, फिर कौनसा आकर्षण है कि स्वर्गोंसे देव आकर्षित होकर मध्यलोकमें आते हैं और देव भक्तिमें निरत होते हैं। वह आकर्षण है वीतरागताका। तो वीतरागताकी ही पुष्टि होती है, ऐसा दृश्य निरखनेसे कि चारों ओरसे देव गान तानके साथ आ रहे हैं, बड़े विभोर होते हुए इस मनको प्रसन्न कर रहे हैं, ऐसा सोचनेसे अहंकार नहीं बनता किन्तु वीतरागताकी पुष्टि होती है। फिर सोच रहा है ज्ञानी योगी कि अष्टकर्म जहाँ विलीन हो गए हैं ऐसा अति निर्मल पुरुषाकार अपने शरीरमें ही यह आत्मा है, परमात्मतत्त्व है, तब शरीरका भी भान छूटकर केवल अपने आपके ज्ञानस्वरूपमें उपयोग रहता है तो पुरुषाकार प्रमाण जो आत्मा फैला है सर्वप्रदेशोंमें एक विशुद्ध आत्मीय आनंद जगता है, सारभूत शरणभूत बात तो यही है, बाकी सब असार है। अपना उपयोग अपने आत्मस्वरूपमें रम जाय, बड़ी दृष्टगत रहे यह काम कोई कर सके तो उससे बढ़िया स्थिति और क्या है? चाहे गरीब हो, दीन हो, बाह्यस्थितिमें चाहे इज्जत रहित हो, कोई चाहे जानता भी न हो, असाता वेदनीयके उदयसे चाहे अनेक उपसर्ग आदिक वेदनाएँ भी आ रही हों, किसी भी स्थितिमें हो, जिसने उपयोगसे अपने आत्मस्वरूपको दृष्टिमें लिया है वह तो सर्वोत्कृष्ट आत्मा है, अमीर आत्मा है। उसके समान आत्मीय आनंद पानेकी होड़ संसारमें और कौन प्राणी लगा सकता है? समस्त तीनों कालोंके इन्द्रोंका व समस्त पुण्यवान जीवोंका सुख सब इकट्ठा कर लो तो वह साराका सारा सुख भगवानके आनंदके अनंतवें भाग है। कुछ भी नहीं है वह समस्त सुख। यह भी एक कह दिया है, परंतु जाति ही अलग अलग है। आत्मीय आनंदकी जाति और कुछ है और वैषयिक सुखोंकी जाति और कुछ है। उस आत्मीय आनंदकी उपमा इन वैषयिक सुखोंसे क्या दी जा सकती है? वह अनुपम आनंद है, ऐसे आनंदामृतका पान करते हुए यह योगी तत्त्ववती धारणामें लीन है।

इत्यविरतं स योगी पिण्डस्थे जातनिश्चलाभ्यासः।
शिवसुखमनन्यसाध्यं प्राप्नोत्यचिरेण कालेन ॥१८८५॥

पिण्डस्थध्यानाभ्यासी मुनिकी मुक्तिभाजनता—इस प्रकार पिण्डस्थ ध्यानमें जिसका अभ्यास निश्चल बन गया है वह ध्यानी मुनि ऐसे मुक्तिसुखको शीघ्र प्राप्त कर लेता है जो मुक्ति सुख अन्य किसी भी प्रकारसे साधनामें नहीं आ सकते। मुक्ति पानेका केवल एक ही उपाय है। लोग तो मोटे रूपमें यह कह बैठते हैं कि कोईसा भी धर्म हो, कोईसा भी मत हो, कोईसा भी साधन हो, मोक्षके सब रास्ते हैं, और दृष्टांत भी देते हैं कि देखो जैसे यहाँ किसी शहरके चारों ओरसे अनेक रास्तावोंसे लोग शहरमें आते हैं और पहुंचते हैं उसी जगह, इसी तरह कुछ भी धर्म हो, कुछ भी मान्यता हो, कोई भी साधन हो, अंतमें सब पहुंचते हैं मोक्षमें, तो यह कहना उनका सत्य नहीं है। मुक्तिका मार्ग तो एक ही है, वह मार्ग है—अपने

http://sahjanandvarnishastra.org/

आत्माके ऐसे स्वभावका आश्रय लें, उस आत्मस्वभावका अनुभव करें कि जो स्वभाव स्वभावतः सबसे मुक्त अनादिकालसे चला आ रहा है, ऐसे ज्ञानस्वभावका आलंबन लें, उसकी स्थिरता रखें, उसमें उपयोगको स्थिर बनायें तो ऐसी जो एक आत्मस्थिति है वही मोक्षका मार्ग है। यह बात जो पा सके सो मुक्ति पायगा। अब इसे कुछ युक्तियोंसे और आगमके कथनसे निर्णयमें लायें कि ऐसा मुक्तिका मार्ग किस स्थानमें बताया गया है? देखिये आत्माका सत्यस्वरूप जाने बिना यह मार्ग नहीं मिल सकता, इसमें धर्म और मजहबकी कुछ बात नहीं, जो मार्ग है यथार्थ वह जैन शासनमें बताया गया है उसे यदि कोई धर्म, मत, मजहब कहकर अलग कर दें, एक सबकी भांति उसे भी मान ले तो यह उसकी निजी कल्पना है, पर जो यथार्थ बात है वह कोई न कोई तो बतायेगा ही। आत्माका श्रद्धान करें, आत्माका ज्ञान करें और अपने आत्मामें ही रमकर तृप्त होनेका अभ्यास रखें। अगर यह बन सकता है तो मुक्ति अवश्य मिलेगी। यही मुक्तिका मार्ग है, यह बात आत्माके यथार्थ श्रद्धानसे ही हो सकती है। रत्नत्रयका पालन कहो, ब्रह्मचर्य कहो—दोनों एक ही बात है। ब्रह्म मायने आत्मा उसमें चर्य मायने लग जाना, रम जाना, इसका नाम है ब्रह्मचर्य। इस ब्रह्मचर्यकी साधनाके लिए व्यावहारिक ब्रह्मचर्य भी पालन करना चाहिए। कारण यह है कि जो शरीरमें रुचि रखता है पर शरीरमें रुचि रखता है, ऐसा जिसने अपने उपयोगको बाहरमें लगाया है और आसक्तिपूर्वक बाहरमें रम रहा है उस उपयोगसे आत्माकी सुध कैसे प्राप्त होगी? वह इस परम ब्रह्मचर्यके मार्गसे बिल्कुल विपरीत चल रहा है, इस कारण जो लोग ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं उनमें ऐसी पात्रता है कि वे इस परमार्थ ब्रह्मचर्यको भी धारण कर सकते हैं।

ध्यानार्थ आत्मस्वरूपपरिचय—श्रेयस्कर बातोंके लिए आत्मज्ञानकी आवश्यकता है। कैसा है यह आत्मा? कुछ लोग तो इस आत्माको क्षणिक मानते हैं अर्थात् क्षण-क्षणमें नवीन नवीन आत्मा होते हैं। कोई लोग आत्माको एक अपरिणामी मानते हैं और कुछ लोग मानते कि आत्मा सर्वव्यापक है और केवल एक है। उसमें कभी अदल-बदल नहीं होता। तो देखिये इनमें परस्परमें कितना विरोध है? अब कल्पना करिये कि किसी भी एक मंतव्यपर डटकर यदि क्षणिक ही आत्मा माना जाय तो जिसने पाप किया वह आत्मा तो नष्ट हो गया, कर्म जिसने बाँधा वह आत्मा दूसरा है और फल जो भोगेगा वह आत्मा दूसरा है। यह एक विडम्बना है कि कोई कर्म करे और कोई फल भोगे। और फिर धर्म ही क्यों करना, जिस आत्माने धर्म किया, तपश्चरण किया वह आत्मा तो मिट ही गया, अब उसका फल पायगा दूसरा आत्मा। जब क्षण-क्षणमें नये-नये आत्मा होते हैं तो फिर मुक्तिका उद्यम क्यों करना? तो यह क्षणिकवादियोंका आत्मा कुछ चित्तमें जमता नहीं है। दूसरे मंतव्यमें कहा गया कि आत्मा एक है, सर्वव्यापक है और उसमें कभी अदल-बदल नहीं होता। तो भला लोकमें कोई

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भी पदार्थ ऐसा हो सकता है कि जो है और उसका परिणमन कुछ भी न हो ? रूपक अवस्था दशा प्रगटरूप कुछ भी न हो ऐसा कोई सत् नहीं है, यह भी बात जमती नहीं है, और जैन शासनने यह बताया है कि आत्मा द्रव्यदृष्टिसे नित्य है और पर्यायदृष्टिसे अनित्य है। प्रत्येक सत् का यह स्वरूप है कि वह सदा रहे और नये नये रूप धारण करता रहे। समय समयपर मुझ आत्मामें नवीन नवीन भाव उत्पन्न होते हैं, वे भाव वे परिणमन सदा नहीं रहते, जिस क्षण हुए उसी क्षण समाप्त हो जायेंगे। अगले क्षण दूसरे भाव होंगे। तो इस पर्यायदृष्टिसे आत्मा की क्षणिकता नजर आयी, पर द्रव्यदृष्टिसे आत्मा वही एक है। अपरिणामी है आत्मा, वह शाश्वत रहता है द्रव्य समाप्त नहीं होता। द्रव्यदृष्टिसे इसका अधोबदल नहीं है, पर्याय दृष्टिसे इसमें परिवर्तन है। इस प्रकार आत्माके बारेमें और भी बात सोचियेगा। कैसा एक गुण वाला है, शक्तियुक्त है, इसके सभी पहलुवोंपर विचार करें तो जैन शासनने अनुभव करके महर्षियोंने एक आत्मस्वरूपका उपदेश प्रधान किया है, वह है हम आप लोगोंको उनकी परम भेंट। इसको हम आदरसे स्वीकार करें, मस्तिष्क पर रखकर इसे अंगीकार करें। इस पथपर यदि हम आप चल सके तो हितका मार्ग मिल सकेगा। शेष तो लोकमें जो कुछ मिलता है वे सब असार बातें हैं। कोई जीव कहींसे आकर आपके घरमें उत्पन्न हो गया तो उससे क्या पूरा पड़ता है ? आपकी आत्माका उसकी आत्मासे क्या सम्बंध है ? सभी जीव अपने आपमें परिणमते हैं, यह मैं भी अपने आपमें परिणम रहा हूं, इससे मेरा क्या सम्बंध है, इस तरह चिंतन करके निर्णय कर लीजिए, प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र है, किसीका कोई कुछ लगता नहीं है। जब यथार्थ आत्मतत्त्व ध्यानमें आता है तो वह मुक्तिका मार्ग जो कि एक प्रकारका बताया है—अपने आत्मस्वरूपका दर्शन होना, ज्ञान होना और उस ही में रमण होना, यह प्राप्त होता है सम्यग्ज्ञानके सहारेसे। तत्त्वरूपवती धारणामें यह योगी चिंतन कर रहा है अपने आपके उस विशुद्ध स्वच्छ ज्ञानप्रकाशको, तन्मात्र अपना अनुभव बना रहा है, और जिसने अपना अभ्यास बनाया वह योगी मुनि मोक्ष सुखको अल्प समयमें ही प्राप्त कर लेता है।

इत्थं यत्रानवद्यं स्मरति नवसुधासान्द्रचन्द्रांशुगौरम्।
श्रीमत्सर्वज्ञकल्पं कनकगिरितटे वीतविश्वप्रपञ्चम्॥
आत्मानं विश्वरूपं त्रिदशगुरुगणैरप्यचिन्त्यप्रभावम्।
तत्पिण्डस्थं प्रणीतं जिनसमयमहाम्भोधिपारं प्रयातैः ॥१८८६॥

पिण्डस्थध्यानवर्णनकी प्रशस्ति—पिण्डस्थ ध्यानसे लेकर तत्त्वरूपवती धारणा तक इस ज्ञानीने अपने आपका जो चिंतवन किया उस चिंतवनसे उसके विषयकषायोंका भार कम हुआ। अन्य प्रकारके विकल्प जाल उसके शांत हुए। रह गया केवल आत्मा सम्बंधी विकल्प। सो यह विकल्प इस आत्मा सम्बंधी विकल्पके मार्गसे ही दूर होता है। इस मार्गसे ही चलकर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

निर्विकल्प अनुभव करता है। इस कारण इस प्रकरणमें इन धारणावोंका वर्णन किया, जिसका चित्त सीधा सहज ज्ञानस्वरूपके अनुभवमें नहीं चलता है, उस विशुद्ध ज्ञायकस्वरूपका सीधा ध्यान जो नहीं कर पाता ऐसा पुरुष इन धारणावोंका सहारा लेता है और विकल्पजालोंसे छुटकारा पाकर अपने निर्विकल्प स्वरूपका ध्यान करता है। इसे पिण्डस्थ ध्यान क्यों कहा गया है ? पिण्डस्थ ध्यानमें निर्दोष अमृतसे भीगी हुई चन्द्रमाकी किरणोंके समान वर्ण वाले सर्वज्ञ भगवान समान तथा मेरू गिरिके शिखरपर बैठे ऐसा इसने चिंतवन किया था जहां समस्त प्रपंच दूर होते हैं, समस्त ज्ञेय पदार्थोंके आकार जहाँ प्रतिबिम्बित हो रहे हैं, जहाँ देवेन्द्रोंका समूह भी पुज रहा है, जहाँ अतिशयका अधिक प्रभाव बन रहा है ऐसे आत्माका चिन्तवन किया जाय उसे जिनसिद्धान्तरूपी महासमुद्रके पार पहुंचाने वाले मुनीश्वरोंने पिण्डस्थध्यान कहा है। जिसका मन शान्त नहीं है, यत्र तत्र भटकता है उस मनको विषय कषायोंसे रोक लें और अपने यथार्थस्वरूपमें लगा लें इसका उपाय इस पिण्डस्थ ध्यानसे किया जा रहा है। मन कुछ न कुछ विचलित रहता है। मनको एक बन्दरकी तरह चंचल कहा गया है। जैसे बन्दर किसी जगह बैठे तो कभी हाथ फैलाता, कभी पैर, कभी गर्दन हिलाता, कभी सर खुजलाता, कभी इधर उधर देखता यों वह स्थिर नहीं बैठता, उसके अंग-अंग चलते रहते हैं, ऐसे ही यह मन चंचल है। कभी कुछ विचारता कभी कुछ। तो इस चंचल मनको किसी अच्छे काममें लगा दें तो इसकी चंचलता दूर हो। एक कथानक है कि एक राजाको देवता सिद्ध हो गया। वह देव आकर बोला—राजन् ! तुम हमें काम बतावो ? जो आज्ञा दोगे वह काम तैयार करके देंगे। अगर काम न बतावोगे तो हम तुम्हें मार डालेंगे। तो राजाने झट बताना शुरू किया महल बनावो। महल बनाकर झट तैयार कर दिया।.... राजन् काम बतावो ?...तालाब बनावो। तालाब बनाकर झट तैयार कर दिया।....राजन् काम बतावो।....एक सुन्दर बगीचा लगावो। लगाकर तैयार कर दिया।....राजन् काम बतावो ? यों अनेक काम बतानेपर राजा सोचने लगा कि यदि मैंने काम न बताया तो यह मार डालेगा, सो वह घबड़ाने लगा। अंतमें एक उपाय सूझा। राजाने कहा अच्छा एक ५० हाथका लम्बा लोहेका डंडा जमीनमें गाड़ दो। झट ५० हाथका लोहेका डंडा जमीनमें गाड़ दिया।....राजन् काम बतावो ?....एक ६० हाथकी लम्बी लोहेकी जंजीर लावो। झट जंजीर आ गयी।....राजन् काम बतावो ?....अच्छा—इस जंजीरका एक कोना इस डंडेमें बाँधो और एक कोना अपनी कमरमें बाँधो।....बांध लिया।....राजन् ! काम बतावो ?....अच्छा जब तक हम मना न करें तब तक इसमें तुम चढ़ो उतरो। लो चढ़ने उतरने लगा। अब तो वह जब थक गया तो राजासे कहता है—महाराज ! अब हमें क्षमा करो। हमको छोड़ दो, हम तुम्हें न खायेंगे। तुम जब भी हमारा स्मरण करोगे तो हम झट तुम्हारे पास हाजिर होंगे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ओर तुम्हारी मदद करेंगे। तो यह मन अति चंचल है, इसको अच्छे कामोंमें लगा दो—सामायिक पूजन, स्वाध्याय, सत्संगति आदिकमें, तो फिर इस मनकी चंचलता दूर हो जायगी। उस उपायमें पिण्डस्थ ध्यानमें इसे शांति आयगी और स्थिरता आयगी।

विद्यामण्डलमन्त्रयन्त्रकुहुकक्रूराभिचाराः क्रियाः।
सिंहाशीविषदैत्यदन्तिशरभा यान्त्येव निःसारताम् ॥
शाकिन्यो ग्रहराक्षसप्रभृतयो मुञ्चन्त्यसद्वासनाम्।
एतद्धयानधनस्य सन्निधिवशाद्भानोर्यथा कौशिकः ॥१८८७॥

पिण्डस्थध्यानके प्रतापसे अनेक आपदाओंका परिहार—जैसे सूर्यका उदय होनेपर उलूक (घू घू) भाग जाते हैं इसी प्रकार पिण्डस्थध्यान रूपी धनके समीप होनेसे ये सभी आपत्तियां बिसर जाती हैं। एक विद्यामंडल आपदा है। कोई किसीपर विद्या सिद्ध करके मंत्र डालकर उसे हैरान भी कर सकता है, पर पिण्डस्थ ध्यानीको दूसरेके द्वारा इस डाले गये मंत्र का कुछ असर नहीं होता। गृह राक्षस आदिक भी उसे नहीं सता पाते, सर्प सिंह दैत्य आदिक भी उसपर कुछ असर नहीं डाल पाते। एक णमोकार मंत्रमें ही इतना असर है कि दैत्य, गृहराक्षस आदिक पास नहीं आ पाते, फिर इस निर्बाध पिण्डस्थ ध्यानको ध्यानेसे ये सब आपत्तियां तो आ ही कहाँ सकती हैं? अनेक धारणावोंके पश्चात् अंतमें तत्त्वरूपवती धारणासे अपने आपको निर्मल विशुद्ध ज्ञानमात्र अनुभव करना है। इस ज्ञानानुभवमें ही यह सामर्थ्य है कि हमें कलंकसे छुटा देगा और आत्मीय आनंदका अनुभव करायेगा।

(पदस्थ ध्यानवर्णन प्रकरण ३८)

पदान्यालम्ब्य पुण्यानि योगिभिर्यद्विधीयते।
तत्पदस्थं मतं ध्यानं विचित्रनयपारगैः ॥१८८८॥

पदस्थ ध्यानका निर्देश—ध्यानोंमें ध्यान तो उत्तम ध्यान आत्माके सहज स्वरूपका ध्यान है, जो एक विशुद्ध ज्ञानानंद स्वरूप है, निराकुल है, ऐसा शाश्वत ज्ञानस्वरूपका ध्यान सर्वोत्तम ध्यान है, किन्तु इस ध्यानमें जिसका अभ्यास नहीं बना, मनकी चंचलताके कारण यत्र तत्र मन भटकता है ऐसा पुरुष मनको वश करनेके लिए पिण्डस्थ पदस्थ ध्यान भी किया करता है। जिसमें पिण्डस्थ ध्यानका तो वर्णन हो चुका, अब पदस्थ ध्यानका वर्णन करते हैं। पदके सहारे ध्यान बनाना। कोई मंत्र अक्षरोंका समूह उनके सहारे ध्यान बनाना, स्वरूप ध्यान करना, एकाग्र चिंतन करना—ये सब पदस्थ ध्यान हैं। पदोंमें अनेक वाक्य होते हैं, उनमें पदका स्वरूप बसा हुआ होता है। इन पदोंका ध्यान करते समय ध्यानी एक तो पदोंके विन्यास मुद्रापर भी ध्यान रखता है, दूसरे उन शब्दोंने पदोंका जो कुछ तत्त्व बताया है उस स्वरूपका ध्यान करता है, तो तत्त्वस्वरूपका ध्यान करते हुए पदोंके सहारे अपने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

चित्तको एकाग्र करे यह पदस्थ ध्यान है। ऐसा उन ऋषि संतोंने बताया है जिन्होंने नाना प्रकारके नयोंके परिज्ञानमें कुशलता प्राप्त की है। ये ध्यान प्रारम्भमें उपकारी बहुत हैं, पर अंतमें जब परिपक्वता होती है ध्यानकी, शुक्ल ध्यानकी पात्रता जगती है वहाँ शुक्ल ध्यान बनता है तब इन सहायक ध्यानोंकी आवश्यकता नहीं रहती। सीधे ही उस परमात्मस्वरूपका ध्यान कर लिया जाता है, लेकिन जब तक वह उत्तम पात्रता नहीं जगी तब तक इन पदोंके सहारे, इन मंत्रोंके सहारे इस स्वरूपका ध्यान करें और चित्तको एकाग्र बनायें।

(पदस्थ ध्यानवर्णन प्रकरण ३८)

ध्यायेदनादिसिद्धान्तप्रसिद्धां वर्णमातृकाम्।
निःशेषशब्दविन्यासजन्मभूमिं जगन्नुताम् ॥१८८६॥

पदस्थ ध्यानमें वर्णमातृकाका ध्यान—अनादिकालसे परम्परासे चले आये हुए जो वर्णोंका समूह है, जिसको विवेकी जगत नमस्कार करता है, जो समस्त शब्दोंके विन्यासके बतानेमें वाक्योंकी जन्मभूमि है ऐसे प्रत्येक वर्णोंका ध्यान करें। वर्ण उसे कहते हैं जो पदोंकी रचना करनेमें अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे। वर्णोंके समूहको पद कहते हैं और पदोंके समूह को वाक्य कहते हैं। जितने जो कुछ भी आगम हैं उनका लोगोंसे लोकव्यवहार है। जो कुछ भी परिज्ञान कला है, जितने प्रतिपादन हैं उन सबका मूल आधार वर्ण है, यह वर्ण अनादि कालसे सिद्ध है, किन्हीने बनाया नहीं। जो बोला जाय वह अक्षर उनकी मुद्रा और लय चाहे कोई कुछ बना ले, गुजरातीमें कुछ बंगाली, मद्रासी तथा कन्नड़ी आदिमें कुछ, पर जो उच्चारण चला आया है उसे तो कोई नहीं बदलता। वह तो बराबर उसी परम्परासे चला आ रहा है। चाहे कोई एक ऐसी विचित्र भाषाका भी बोलने वाला हो कि जिसकी लिपि है कुछ और बोला जाता है कुछ। सीधा सही सही इकाईका वर्ण नहीं होता। जैसे एक अंग्रेजी भाषा है ऐसी कि जो कुछ बोला जाता है वैसा सीधा लिखा नहीं जाता है। लिखा जायगा कुछ शब्दोंको मिला करके, अथवा जो लिपि बनायी गयी हैं उनमें उच्चारण स्वयंका कुछ और है, सभी अक्षर करीब करीब ऐसे हैं। एक भी अंग्रेजीमें अक्षर ऐसा नहीं है कि जैसा बोलो वैसा ही उस अक्षरका उच्चारण है। किन्हींका तो बहुत ही विचित्र उच्चारण है जैसे डब्लू लिखना है व बोलेंगे कुछ ऐसा विचित्र कि जो मेल ही नहीं खाता। सभी अक्षर उच्चारणके विरुद्ध हैं, पर जिसने लिपि बनायी होगी उसने कुछ तो सोचा ही होगा सुविधाकी बात। जो ए. बी. सी. डी. इस तरह बोलते होंगे उनको सुविधा अधिकसे अधिक यह हो सकती है कि किसी भी मनुष्यका या किसी भी पदार्थका संक्षिप्तमें अगर वर्ण बोला जाय तो वह कुछ न्यारापनसा लिए हुए बना रहे और बोलनेमें आसानी रहे। जैसे सुरेश चंद्र नाम है तो एस. सी. बोल दिया, और हिन्दी वाले क्या बोलें? (सु० चं०) तो कुछ सुविधा भी मिली, जिससे वर्णोंका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ऐसा उच्चारण किया है, पर ऐसी क्या विशेष सुविधा है, सो इसके विशेषज्ञ जो हों वे जानते होंगे। तो लय कुछ भी बनाया हो, मुखसे कुछ भी बोला जाय, पर जो वर्ण-विन्यास होगा वह सबका एक प्रकार होगा। जो कि हिन्दीमें अ से लेकर ह तक स्वर व्यञ्जनोंकी रचना है और उनमें जो उच्चारण है वह सभी मनुष्य बोलते हैं। चाहे कोई किसी भी भाषाका प्रेमी हो लेकिन उच्चारण वही निकलेगा क्योंकि जिह्वा, कंठ, तालू सबका एक तरह है और उनके दबावसे, स्पर्शसे जो शब्द निकलेंगे वे सबके समान निकलेंगे। जैसे हारमोनियमके जो भी बजाये जाने वाले स्वर हैं उनको कोई भी दाबे, चाहे जानकार हो अथवा न हो, स्वर एकसा निकलेगा, आवाजमें अंतर न होगा, अंतर क्रमका ही होगा, ऐसे ही ये वर्ण अनादि सिद्ध हैं, उनको किसी भी भाषामें बोला जाय पर उच्चारण वही सबमें होगा। तो उन अनादिसिद्ध वर्णोंको प्रथम धारण करें क्योंकि जितनी पद मात्रा हैं, जितने शास्त्र आगम हैं वे सब एक इन्हीं वर्णोंपर आधारित हैं।

द्विगुणाष्टदलाम्भोजे नाभिमण्डलवर्तिनि।
भ्रमन्तीं चिन्तयेद्ध्यानी प्रतिपत्रं स्वरावलीम ॥१८९०॥

नाभिमण्डलवर्ती अम्भोजमें स्वरावलीका चिन्तन—अपने शरीरके मध्य तीन स्थानों पर कमलकी कल्पना की गई है। एक नाभिकमल, दूसरा हृदय कमल और तीसरा मुख कमल। नाभिकमलमें सोलह पत्र (दल) हृदय कमलमें २४ दल और एक बीचमें कर्णिका और मुख कमलमें ८ दल, इस प्रकार तीन कमलोंकी कल्पना की गयी है। तो प्रथम नाभि-कमलमें नाभिकमलपर स्थित सोलह दल वाला कमल है, उसके प्रत्येक दलपर एक स्वरका चिंतन करें। स्वर सोलह होते हैं, अ आ (ह्रस्व दीर्घके भेदसे) यहाँ दो भेदोंमें अ को बताया है, ये स्वर हैं अर्थात् अपने आप ये बोले जा सकते हैं। क ख की तरह स्वरका सहारा लेकर जैसे क ख बोला जाता है इस तरह किसी अन्य वर्णका सहारा लेकर ये स्वर नहीं बोले जाते। इनका स्थान कंठ है, अ आ बोलते हुए कठपर जोर होता है और कंठसे यह ध्वनि निकलती है, पश्चात् इ ई, इनका तालू स्थान है। इ ई बोलते हुए कंठमें तो इतना बल नहीं देना पड़ता किन्तु तालूका स्पर्श होता है। तालूको छुवे बिना इ ई शब्द नहीं बोले जा सकते हैं। पश्चात् उ ऊ का ध्यान करें। इनका ओष्ठ स्थान है। ओठोंको मिलाये बिना उ ऊ शब्द नहीं बोले जा सकते। इसके बाद ऋ ॠ स्वर आते हैं, इनका मूर्धा स्थान है। तालू स्थान होता है। ऊपरके तालूसे टसा हुआ मूर्धास्थान होता है, उससे और ऊपर जहाँ जीभ लगाये बिना ऋ ॠ शब्द नहीं बोले जा सकते। जैसे ट ठ ड ढ ण ये शब्द भी मूर्धा हैं, तो ये मूर्धज हैं। इसके बाद लृ ॡ इनका दंत स्थान है। दंतोंमें जीभका स्पर्श हुए बिना ये शब्द नहीं बोले जा सकते। इसके पश्चात् ए ऐ—ये दो स्वर आये। कंठ और तालू इन दो से इनकी उत्पत्ति होती है। कंठमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बोले और तालूमें स्पर्श हो तो ये शब्द बोले जा सकते हैं। इसके पश्चात् ओ औ ये दो स्वर हैं, इनका कंठ स्थान है। कंठमें बोले और ओठोंका स्पर्श ये दो बातें एक साथ हों तो ओ औ शब्द बोले जाते हैं। इसके पश्चात् है अं अः। अं अनुनासिक है, और यह अनुनासिक शब्द क्या है उसकी कोई मुद्रा नहीं बनायी जा सकती। कोई एक बिन्दी रखी जाय, वह उसकी मुद्रा है पर उसको किसी स्वरका सहारा लेकर बोला जा सकता है, इसलिए चाहे अं कहो चाहे हं। तो किसी शब्दके साथ यह अनुनासिक चलता है। अः यह विसर्ग है। अः का स्थान भी कंठ है। इसमें अ के सामने दो बिन्दुवें ऊपर नीचे हैं। जैसे कि अ के आगे विसर्ग लगा दिया जाता है। यह स्वरका सहारा लेकर बोला जाता है। यों सोलह स्वरोंको उन सोलह दलोंपर चिंतन करें। ये सब शब्द जिनवाणीके आधारभूत हैं, इनसे आगमकी रचना होती है। जैसे आगम नमस्कारके योग्य है, शिरपर चढ़ाते हैं शास्त्रोंको, उपदेशोंको तो वे सब बातें और उपदेश वे सब शास्त्र इन ही वर्णोंसे बने हुए हैं। अतः ये सब वर्ण आगमके मूल हैं। इनको विवेकी पुरुष आदरसे नमस्कार करते हैं।

(पदस्थध्यानवर्णन प्रकरण ३८)

चतुर्विंशतिपत्राढ्यं हृदि कञ्जं सकर्णिकम्।
तत्र वर्णानिमान्ध्यायेत्संयमी पञ्चविंशतिम् ॥१८९१॥

हृत्कमलपत्रमें व्यञ्जनावलिका चिन्तन—इसके पश्चात् ध्यानी पुरुष अपने हृदय स्थान पर कर्णिका सहित २४ पत्रोंका ध्यान करे अर्थात् हृदयपर एक २४ दलका कमल है और बीचमें एक कर्णिका है। ये २५ स्थान हो गए, और २५ हैं व्यञ्जन। तो उन २५ व्यंजनोंको उन २५ स्थानोंपर चिंतवन करें। व्यञ्जन उन्हें कहते हैं कि जो स्वतंत्र रूपसे नहीं बोले जा सकते, किन्तु पूर्वापर कहीं भी स्वरका सहारा लेकर ही बोले जाते हैं। जैसे क कहा तो जैसे क लिखा करते हैं और बोला करते हैं वह क, क रूप नहीं है किन्तु जैसे क्व शब्द बोला तो क्वमें जो क लिखा हुआ है वह क्या क शब्दरूप है, उसे तो आधा क (क्) कहो, क्योंकि उस क के नीचे हलंत है। तो कोई भी आधा अक्षर बोला नहीं जा सकता है। उसके आगे अथवा पीछे कोई स्वर लगा हो उसके सहारे बोला जाता है। ऐसे उन २५ स्थानोंपर इन वर्णोंका चिंतवन करें। ये २५ वर्ण ५ वर्गोंमें पाये गए हैं—क ख ग घ ङ, इसे कवर्ग बोलते हैं। ये सबके सब कंठस्थानसे उत्पन्न होते हैं। च छ ज झ ञ, इन्हें चवर्ग बोलते हैं। यह च का समूह है। जैसे दूकानपर नाम लिखकर एण्ड कम्पनी लिख देते हैं। एण्ड कम्पनी मायने वर्ग। वह और उसका समूह। यों ही ये सब वर्ग हैं। ट ठ ड ढ ण, इसे टवर्ग बोलते हैं, ये मूर्धा स्थानसे उत्पन्न होते हैं। त थ द ध न, इन्हें तवर्ग कहते हैं, ये दंत स्थानसे उत्पन्न होते हैं। दाँतमें जीभ लगाये बिना इन शब्दोंको नहीं बोला जा सकता। प फ ब भ म, ये ५ पवर्ग हैं,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इनकी उत्पत्ति ओष्ठ स्थानसे है। ओंठसे ओंठ छुवे बिना ये शब्द नहीं बोले जा सकते हैं। इस तरह इन २५ अक्षरोंका हृदय कमलमें २५ स्थानोंपर ध्यान करें।

ततो वदनराजीवे पत्राष्टकविभूषिते।
परं वर्णाष्टकं ध्यायेत्सञ्चरन्तं प्रदक्षिणम् ॥१८९२॥

मुखकमलपत्रपर शेष वर्णाष्टकका चिन्तन—इसके पश्चात् मुखके स्थानपर आठ पंखुड़ियोंके कमलका चिंतवन किया है। इन ८ पत्रोंपर य र ल व श ष स ह—इन ८ वर्णोंका ध्यान करे। देखिये हिन्दी लिपिमें जो बोला जाता है वही लिखा जाता है। मुद्रा और उच्चारण दोनोंको एक प्रकारमें लिया गया है। य र ल व इन शब्दोंको अंतस्थ कहते हैं। ये शब्द न केवल स्वर रूप हैं, न केवल व्यञ्जन रूप हैं, किन्तु दो स्वरोंके मिलनेसे इनका उच्चारण बना है। जैसे य ई और अ मिलकर य उच्चारण बना है, तभी संधिमें इ के आगे अ अक्षर आये तो दोनों मिलकर य बन जाते हैं। ऋ और अ ये दो स्वर मिलकर र बन गया, लृ और अ मिलकर ल बन गए। इनकी संधि होती है। उ और अ शब्द मिलकर व शब्द बने हैं। ये अंतस्थ कहलाते हैं। मध्यमें स्थित हैं, श ष स ह इन्हें ऊष्मा कहते हैं। इन चार अक्षरोंको बोलते हुए कुछ गर्म हवा निकलती है, और शब्दोंके बोलनेकी अपेक्षा इन चार शब्दों के बोलनेमें कुछ वायुकी विशेषता और कुछ गर्मीकी विशेषता रहती है। इसलिए इन अक्षरों को ऊष्मा कहते हैं। इस प्रकार मुखकमलपर अन्तस्थ और ऊष्मा—इन ८ अक्षरोंका ध्यान करे। अपने देहके खास ध्यानके मुख्य स्थानको वर्णोंसे भर दिया है इस ज्ञानी योगीने।

इत्यजस्रं स्मरन्योगी प्रसिद्धां वर्णमातृकाम्।
श्रुतज्ञानाम्बुधेः पारं प्रयाति विगतभ्रमः ॥१८९३॥

पदस्थध्यानमें वर्णमातृकाके सहारे परमात्मतत्त्वका ध्यान—इस प्रकरणमें पदस्थ ध्यानका वर्णन किया जायगा। जैसे णमोकार मंत्र है, ओ३म् ही है, और भी अनेक प्रकारके मंत्र हैं उनके सहारे ध्यान करना यह है पदस्थ ध्यान। तो चूंकि पद सब वर्णोंसे ही बने हुए हैं इसलिए भक्तिपूर्वक उन वर्णोंका ध्यान इस स्थानपर किया जा रहा है। जो पुरुष इस प्रसिद्ध वर्णमालिकाका निरंतर ध्यान करता है वह योगी भ्रमरहित होकर श्रुतज्ञानरूपी समुद्रके पारको प्राप्त हो जाता है, अर्थात् इन वर्ण मंत्रिकाओंका ध्यान करने वाले मुनि श्रुतकेवली हो जाते हैं, विद्वान् हो जाते हैं, आगमकी पूजा करते हैं, शास्त्रोंका पूजन करते हैं। शास्त्रोंमें लिखे हैं वाक्य। वाक्योंसे बने हैं पद, पदोंमें गर्भित हैं वर्ण। तो प्रत्येक वर्ण ही तो पूज्य हुआ। पहिले समयमें लिखा हुआ कागज कोई नीचे नहीं डालता था, उसका अविनय मानते थे, चाहे कुछ भी लिखा हुआ हो। फिर कुछ समय बाद जिनमें कुछ धर्मकी बातें लिखी हों उनका विशेष आदर करते थे, धर्मकी बातोंके अतिरिक्त और कुछ लिखा हो तो उसे नीचे पड़ा रहने देते थे,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उसकी परवाह नहीं करते थे। अब थोड़ा-सा इतना रह गया है कि किसीका उपदेश हुआ, प्रवचन हुआ तो उसका तो उतना अधिक विनयभाव नहीं रहा, पर जिसमें भक्तामर स्तोत्र है, कोई पूजा पाठ है या अन्य कोई ऋषि प्रणीत शब्द हैं उनके विनयकी बात रह गयी है। ऐसे शब्द स्तोत्र नीचे नहीं पड़े रहना चाहिए और फिर अब तो उनकी भी अधिक कोई कदर नहीं रह गयी है। खैर जो करें सो ठीक है, पर यह शब्द विनयभाव और पूर्व परम्परा यह सूचित करती है कि प्रत्येक वर्ण पूजनेके योग्य है, क्योंकि वर्णोंसे ही ये समस्त शास्त्र रचे गए हैं, एक बात। दूसरी बात यह है कि एक एक वर्ण परमात्मतत्त्वको सूचित करता है, उन विशेषणोंकी याद दिलाता है, एक एक वर्ण समझिये कि वह ऐसा शब्द है कि जो परमात्मा भगवान अरहंत परमेष्ठी जैसे इन मिले हुए वर्णोंको बोलकर हम उन शब्दोंसे कुछ पूजन तत्त्व का ध्यान करते हैं तो ऐसे ही प्रत्येक वर्णसे कथित तत्त्वका ज्ञान होता है।

कमलदलोदरमध्ये ध्यायन्वर्णाननादिसंसिद्धान्।
नष्टादिविषयबोधं ध्याता सम्पद्यते कालात् ॥१८९४॥

पदस्थध्यानके प्रतापसे नष्टादिविषयबोधका अभ्युदय—इन वर्णोंका ध्यान करने वाला पुरुष कमलके पत्र और कर्णिकाके मध्यमें अनादि सिद्ध इन ३९ अक्षरोंका ध्यान करता है, सोलह स्वर और २५ व्यञ्जन और ८ अन्तस्थ और ऊष्माके वर्ण। इनका ध्यान करता हुआ योगी कितने ही कालके वस्तु सम्बंधी ज्ञानको प्राप्त करता है। इन वर्णोंका ध्यान करनेसे योगी ऐसा विशिष्ट ज्ञान प्राप्त कर लेता है कि जिसके बलसे यह अतीतकी बात, कोई चीज नष्ट हो गयी हो, गुम गयी हो ऐसी भी बातोंका ज्ञान कर लेता है। देखिये समस्त स्थानोंमें भावना की प्रधानता है, जितना जो कुछ मंगल है, कल्याण है, उद्धार है वह सब भावनाओंपर आधारित है। इसकी भावनामें एक एक वर्ण पूज्य है और उस आदर दृष्टिसे उन वर्णोंको अपने शरीरके उत्कृष्ट स्थानपर धारण करता है तो उससे चित्तकी एकाग्रता हुई, भीतरमें नम्रता हुई, कषायोंकी मंदता हुई। उसके ज्ञानका विकास होने लगता है। तो योगी पुरुष इन वर्णों का ध्यान करके ऐसा विकास प्राप्त कर लेता है कि जिससे कितने ही कालमें नष्टादि वस्तु सम्बंधी ज्ञानको प्राप्त कर लेता है।

जाप्याज्जयेत् क्षयमरोचकमग्निमान्द्यं,
कुष्ठोदरात्मकसनश्वसनादिरोगान्।
प्राप्नोति चाप्रतिमवाङ्महतीं महद्भ्यः,
पूजां परत्र च गतिं पुरुषोत्तमाप्ताम् ॥१८९५॥

मंत्रजाप्यसे रोगजय व उत्कृष्टावस्थालाभ—किसे वर्ण माला कहते हैं। जो मनुष्यकी रक्षा करनेमें माताकी तरह हो उसका नाम मातृका है। यह वर्ण इस प्रकार है। मनुष्यको

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जो उन्नति मिलती है, शान्ति मिलती है अथवा कुछ उत्कृष्टता जगती है तो उस समस्त उन्नति में कारण परिज्ञान है, और ज्ञान जितना भी होता है वह हम आप लोगोंका शब्दोंको लिए हुए होता है। जब कभी अकेले भी बैठे हों और ध्यान कर रहे हों तो भीतर ही भीतर अन्तर्जल्प उठ जाता है, हम ज्ञान कर जाते हैं। यद्यपि ज्ञानका और वचनोंके साथ कुछ सम्बंध नहीं है कि जितने भी ज्ञान हों वे सब शब्दोंको बोलकर ही उठा करते हैं। ऐसा नहीं है जैसे अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान—इन शब्दोंको उठाये बिना आत्मशक्तिसे जैसा पदार्थ है वैसा ज्ञान कर लेता है, पर हम आप मति श्रुत ज्ञानियोंका कुछ ऐसी अवस्था है कि हम ज्ञान करें तो उसके साथ शब्द भी उठते चले जाते हैं, और उतनी सी बातको ही लेकर किसी सिद्धांतने केवल एक शब्दको ही तत्त्व माना है, और कुछ तत्त्व ही नहीं है। सर्व जगत शब्दात्मक है। यहाँ भी हम आप सब लोगोंका ज्ञान उन्हीं शब्दोंको लिए हुए होता है, इसलिए शब्दात्मक इस जगतको माना है। कुछ ज्ञानोंमें ऐसी बात पायी जाती है कि वह ज्ञान जानता है तो कुछ शब्दोंको उठाकर जानता है, इसीलिए जब ज्ञान पूज्य है तो वे शब्द भी पूज्य हैं। तो उन वर्ण मात्रावोंका जाप करनेसे योगीने बड़े बड़े रोगोंको दूर कर लिया है। क्षयरोग, अरुचिपना, अग्निमंदता, कुष्ठ, उदर रोग, श्वास रोग आदिक अनेक रोगोंको एक वर्ण मात्रा के जापसे जीत लेता है। प्रयोग करे कोई तो उसको इसका अंदाज हो सकता है कि ध्यानका कैसा प्रताप है कि अनेक रोग ध्यानसे ही शांत हो जाते हैं। इन वर्ण मात्रावोंके जापसे और भी सिद्धियां होती हैं—जैसे वचनसिद्धता, महान पुरुषोंसे पूजाकी प्राप्ति, परलोकमें श्रेष्ठ गति ये सब इस योगी ध्यानीको प्राप्त होते हैं। तो वर्णमातृकाका ध्यान ऐसे दो तीन स्थानोंपर किया जाना बताया गया है, और दो तीन स्थानोंपर ही क्या, फिर तो यह समझिये कि इस देहको वर्णात्मक बना लिया है, जो जो देहके उत्कृष्ट स्थान हैं वे सब वर्णात्मक हो गए। देखिये इन वर्णोंकी कल्पना किसी भी स्थानपर नहीं की गई है। नाभिसे ऊपरका यह स्थान एक भक्ति दृष्टिमें उच्च माना गया है तो उन स्थानोंपर वर्णोंका ध्यान करें, जिसके अभ्याससे योगीका मन स्थिर हो और फिर वह पिण्डस्थ ध्यानमें अपनी प्रगति करे। वर्णोंके ध्यानका उपदेश करके अब मंत्रराजके ध्यानकी बात बतावेंगे, जहाँ अनेक प्रकारके मंत्र हैं, उनमें क्या प्रभाव है, और उनको क्या विधि है, इन समस्त वर्णोंके साथ इस अधिकारमें मंत्रोंके ध्यानकी बात कहेंगे।

अथ मन्त्रपदाधीशं सर्वतत्त्वैकनायकम्।
आदिमध्यान्तभेदेन स्वरव्यञ्जनसंभवम् ॥१८९६॥
ऊर्ध्वाधोरेफसंरुद्धं सपरं विन्दुलाञ्छितम्।
अनाहतयुतं तत्त्वं मन्त्रराजं प्रचक्षते ॥१८९७॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ह्रँ मंत्रराजका निर्देश—पदोंके सहारे तत्त्वका ध्यान करनेका प्रकरण चल रहा है। सर्वप्रथम एक मंत्रराजका वर्णन है। जिसका आकार केवल एक ह अक्षर और उसमें नीचे र मिला हुआ और ऊपर भी रेफ चढ़ा हुआ चन्द्राकारसे सहित यह मंत्रराज बताया जा रहा है जिसकी मुद्रा ह्रँ है। जिसका उच्चारण करना कुछ कठिन है और नहीं भी कठिन है। जो ऋषिजन वचन बल ऋद्धिके अधिकारी हैं वे तो इसे और इससे भी कठिन अनेक बीजाक्षरों को स्पष्ट बोल लेंगे और यथायोग्य इसको विद्या विशारद लोग बोल ही सकते हैं। यह समस्त पदोंका स्वामी है। इस मंत्रराजमें सिद्ध अरहंत आदिक सभी परमतत्त्वोंका स्वरूप गर्भित है। इन सबके वाचक अक्षरोंकी इसमें ध्वनि पायी जाती है। ध्यान तो एक आत्माके परम स्वभावका है। आत्माका परमस्वभाव ज्ञायक भाव परमतत्त्वके ध्यानमें आये उससे बढ़कर उत्कृष्ट और कोई ध्यान नहीं होता और इस ध्यानका ध्यान कराने वाला अरहंत सिद्धका स्वरूप है। अतएव अरहंत और सिद्ध परमेष्ठीका ध्यान भी एक अपूर्व ध्यान है। सो परमात्मतत्त्वका आत्मस्वभावका यह मंत्र संकेत करने वाला है इसलिए इसे महामंत्र कहते हैं। यह सब तत्त्वों का वाचक है, आदि मध्य और अन्तके भेदसे स्वर तथा व्यंजनोंसे उत्पन्न ऊपर और नीचे रेफ लगा हुआ तथा बिन्दुसे चिन्हित ह से सहित यह मंत्र है, इसे अनाहत मंत्र भी कहते हैं। जो किसी दूसरे मंत्रके द्वारा आहत (नष्ट) नहीं किया जा सकता उसे अनाहत कहा करते हैं। मंत्र शास्त्रमें और सभी मंतव्य वालोंके मंत्रमें ये जैन शासनके जो बीजाक्षर हैं, मंत्र हैं वे अद्भुत चमत्कार और प्रभाव रखते हैं। र और ह केवल इन दो अक्षरोंसे २४ तीर्थंकरोंका बोध होता है। ह्रँ यह शब्द चौबीस तीर्थंकरोंका संकेत करता है। र का अर्थ है २, और ह का अर्थ है ४। यह अक्षरकी गणनाके हिसाबसे इसका हिसाब बोलते हैं, तो ये मिलकर २४ अक्षर अंकोंको बताते हैं, चौबीस तीर्थंकरोंका स्वरूप इस ह्रँ में शामिल है। अर्द्धचंद्राकार इस बातका संकेत करता है कि यह आत्मा जब कर्ममलरहित होता है तो ऊर्द्ध गमन करके अर्द्धचंद्राकार जो शिल्प है उसमें यह रागादिक दोषोंसे मुक्त होकर अनंतकाल तक विराजमान रहता है। अनेक संकेत अनेक वाक्य बीजाक्षरोंमें हुआ करते हैं। अनादिकालसे प्रत्येक चतुर्थ कालमें भरत और ऐरावत क्षेत्रमें चौबीस तीर्थंकर होते चले आये हैं, और उन सब तीर्थंकर परम देवोंने जैन शासनका उपदेश अथवा वस्तुस्वरूपका किया है। जो पदार्थमें है, जो आत्मा का स्वरूप है उसका उपदेश ये चौबीसों तीर्थंकर अपनी दिव्यध्वनिमें करते आये हैं। तीर्थंकर २४ ही होते हैं, कम या अधिक नहीं होते हैं, यह भी एक प्राकृतिक बात है। इतने कालके अंदर कुछ कम एक कोड़ाकोड़ी सागर कालके अंदर ऐसे २४ समय होते हैं कि जिनमें (चतुर्विंशति) चौबीस तीर्थंकर देवोंका जन्म होता है और उनके ज्ञान कल्याणकके बाद उनसे धर्म परम्परा और उपदेश शासन चलने लगता है। परमात्मा केवल २४ होते हैं इस बातकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सूचना परमात्मा शब्दकी मुद्रासे भी मिलती है। आप लकीर खींचे बिना परमात्मा शब्द लिख दें हिन्दीमें जैसे "परमात्मा"। तो उनकी मुद्रा देखिये कैसी है? इसमें जो प लिखा है वह ५ की तरह मिलेगा, फिर जो र है वह २ की तरह है, आगे बड़ा मा (मा) लग जाता है वह ४।। की तरह बन जाता है। फिर आधा त (त्) ८ की तरह है और फिर बड़ा मा (मा) यह ४।। की शकल रखता है। तो जोड़ लो ५+२+४।।+८+४।।=२४ हुए। तो परमात्मा शब्दमें यह २४ की संख्या ही पड़ी हुई है। यह एक केवल कलासे निकालनेकी बात है। कोई कानून या युक्ति न बन जायगी, पर परमात्मा शब्द ही यह बतला रहा है कि तीर्थंकर २४ ही होते हैं, उनके जिन मंत्रराजका समावेश है वह एक बीजाक्षर रूपमें और एक बड़ी उपासनाके रूपमें स्मरण किया जाता है।

देवासुरनतं भीमदुर्बोधध्वान्तभास्करम्।
ध्यायेन्मूर्द्धस्थचन्द्रांशुकलापाक्रान्तदिङ्मुखम् ॥१८९८॥

देवासुरनत मंत्रराजके ध्यानका विधान—देव और असुर जिसे नमस्कार करते हैं और अज्ञानरूपी अंधकारके दूर करनेके लिए जो सूर्यके समान है ऐसे इस मंत्रराजका आत्म-हितैषी योगीजन ध्यान करते हैं। मोटे रूपमें तो यह सोच लीजिये कि मनुष्योंका ध्यान प्रायः करके कहाँ बना रहा करता है? यह जगत मोही है, और इसका ध्यान धन वैभव स्त्री पुत्र मित्र आदिकमें अधिकतर रहा करता है। बाहरमें चलकर देख लो, सड़कोंपर निरख लो, किसी के घर बैठकर देख लो, सर्वत्र यही दृश्य मिलेगा कि उनके चित्तमें धन ऐश्वर्य और परिवार जनोंकी महत्ता है, उनका ही ध्यान करते हैं। तो कोई इस मंत्रराजका ध्यान कर रहा हो तो इतना प्रभाव तो तत्काल ही है कि वह उसके ऐसे गंदे ध्यान विषय कषाय मोहसे मलिन ध्यान तो रहे नहीं, और जो मंत्रराजकी कुछ विशेषता समझते हों और उसके सहारे उस परमात्मतत्त्वका ध्यान कर रहा हो तो उसका ध्यान तो हितके लिए बहुत समर्थ होता ही है। यह मंत्रराज बड़े सुर असुरों करके वंदनीय है। अज्ञान अंधकारको हटानेके लिए सूर्यके समान है। आप शंका करेंगे कि न उसने कभी पढ़ा लिखा, न कभी किसी पाठशालामें गया, सम्भव है कि गया हो पहिले। पर कुछ समझा तो है ही, मगर एक मंत्रराजका ध्यान कर रहा है। इस स्वरव्यंजनयुक्त मंत्रराजका ध्यान कर रहा हो तो अज्ञान अंधकार कैसे हट जायगा? जब कुछ पढ़ेंगे, सीखेंगे, रटेंगे तभी तो अज्ञान मिटेगा। एक इस मंत्रराजका ध्यान करनेसे कैसे ज्ञान मिटेगा? तो समाधानमें मूल बात इतनी समझ लीजिये कि सीखनेसे रटनेसे यदि कुछ ज्ञानविकास भी होता है तो वह सब कछुवाकी चाल जैसा विकास है और एक विशुद्ध आत्मस्वभावका ध्यान, परमात्मस्वरूपका ध्यान, वीतराग स्वरूपकी भक्तिपूर्वक होने वाला जो परिणमन है, जो ध्यान है, स्थिरता है, आत्माका स्पर्श है, अनुभव है—इन विधियोंसे जो ज्ञान

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विकास होता है वह बडे वेगसे अनुपम विकास होता है। तो इसमें विशुद्ध भाव बना, ध्यान भी एक तत्त्वका हुआ तो यह ध्यान अज्ञान अंधकारको दूर करनेमें सूर्यके समान है। ध्यान करते समय उच्चारणकी कोई जरूरत भी नहीं रहती। जिन मंत्रराजका हम उच्चारण नहीं कर सकते न सही, उसकी मुद्राका अवलोकन आँखोंसे तो पहिले अवलोकन किया, फिर आँखें बंद करके मनसे विचारनेसे भी वह पूरी मुद्रा नजर आती है। बस उस मुद्राको निरखकर उसका ही ध्यान कर रहे हैं तो वह ध्यान है। ध्यानमें उच्चारणकी विशेषता नहीं है कि उसे उच्चारण करके ही बोलें, बल्कि उच्चारण करके मंत्रोंका जाप करनेसे उसमें कुछ बल कम हो जाता है, और बिना कुछ उच्चारण किये अपने आपमें स्थित होकर मनसे ही केवल ध्यान बनाया और उनके स्वरूप तक दृष्टि बनाया तो उस ध्यानमें बल विशेष होता है।

कनककमलगर्भे कर्णिकायां निषण्णं, विगतमलकलङ्कं सान्द्रचन्द्रांशगौरम्।
गगनमनुसरन्तं सञ्चरन्तं हरित्सु स्मर जिनवरकल्पं मन्त्रराजं यतीन्द्र ॥१८९९॥

मन्त्रराजकी महिमा व उसके ध्यानका अनुरोध—हे मुनीन्द्र ! इस मंत्रराजका स्मरण करो। इस प्रकरणको सुनते हुए यहीं ही आप बीच बीच उस मंत्रराजको सामने रखकर अपने चित्तसे विचार कर ध्यान करते जाइये तो यह एक उपदेशसे आज्ञा मान मानकर सुनने जैसी बात बनेगी। जब जो कुछ बात कही जा रही है और ध्यानके सम्बंधमें उस प्रकारका ध्यान बनाकर सुननेसे उस ध्यानके मतलबकी बात ज्यादा चित्तमें बैठती है। इस मंत्रराजकी मुद्रा है हँ। यह मंत्रराज स्वर्णमय कमलके मध्यमें कर्णिकापर विराजमान है ऐसा चिंतन करिये। ध्यान करना है अपने आपके चित्तमें। तो जिसका ध्यान किया जाय, जिस चित्तके आसनपर विराजमान किया जाय तो उस मंत्रराजका या स्वरूपका या परमात्माका जब जिसका ध्यान करें हम उसे किसी आसनपर विराजमान करें। वह आसन होना चाहिए कमलके ऊपर कमलासन—बहुत प्रसिद्ध आसन है, और उसका कारण यह है कि समवशरणकी रचना होती है तो, विहारके समय रचना होती है तो, किन्हीं भी भौगोलिक प्रसंगोंमें समारोह चलता है तो कमलकी रचना अधिकतर होती है और यह कमल कुछ गुणोंके कारण बहुत महिनीय दृष्टिसे देखा जाता है। कमलमें क्या क्या गुण हैं ? प्रथम तो उसका रूप अत्यन्त साधारण कम गुलाबी रंगको लेकर सफेदपर चलता है, जिसे पद्मलेश्या कह लीजिए। कोई कमल, श्वेत भी होते हैं, पर प्रायः करके कमल पद्मलेश्यासे रंजित होता है, यह एक बहुत अच्छी लेश्या है। इसका आकार प्रकार और इसके मध्यमें कर्णिका है, एक बहुत सुन्दर आसनसे बनाई हुई इसकी मुद्रा रहती है, और सबसे बड़ी विशेषता कमलमें है तो यह है कि जिससे हमें शिक्षा मिलती है कि जगतके अन्दर भी रहकर तुम जगतसे अलिप्त रहो। जैसे कि यह कमल पानीके अंदर पानीसे अलिप्त रहता है, पानीसे ही उत्पन्न होता, पानीमें ही रह रहा है और इस कमल

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

के पत्रमें पानी भी डाल दो तो भी वह लिप्त नहीं होता है। जैसे और पत्तोंमें पानी डाल दो तो वे पत्ते गीले हो जाते, चिपक जाते हैं, पर कमलके पत्तोंमें पानी डाल दो तो वे गीले नहीं होते, वैसेके वैसे ही सूखे रहते हैं, तो कमल-पत्रमें यह गुण वैसर्गिक बहुत महत्त्वकारी है कि जलके अन्दर रहकर भी कमल जलसे अलिप्त है। इसी प्रकार ज्ञानी पुरुषकी स्थिति होती है। कोई ज्ञानी गृहस्थीमें भी रहता हो तो वहाँ रहकर भी अलिप्त है। कोई ज्ञानी बहुतसे साधुवों संन्यासियोंके संगके बीच भी रहता हो तो वह वहाँसे भी अलिप्त रहता है। आसक्त नहीं रहता, उसके परद्रव्योंमें मोह नहीं है, क्योंकि उसके पूर्ण विवेक जग चुका है कि दुनियामें मोह किये जाने लायक वस्तु है क्या? कौनसा पदार्थ ऐसा है जिससे मोह करे, राग करे तो मेरे आत्माको कौन लाभ हो जायगा? कोई पदार्थ जगतमें ऐसा नहीं है।

संगकी कष्टकारिताका दिग्दर्शन—लोग नामवरीके लिए बहुत-बहुत दौड़ते भागते फिरते हैं, पर उससे भी क्या लाभ? लोग धनिक बनना चाहते हैं तो नामवरीके लिए, संतान वाला लोग क्यों बनना चाहते? नामके लिए। हालांकि इन सब बातोंमें कष्ट ही कष्ट है, धनिक बननेके लिए लोगोंको कितने-कितने श्रम करने पड़ते हैं, कितनी ही आकुलताएँ मचानी पड़ती हैं, कितनी ही व्यवस्थायें करनी पड़ती हैं, और संतान होनेमें भी खुदको क्या लाभ है? धनगार धर्मामृतमें बताया है कि संतानसे इसे कितना कष्ट उठाना पड़ता है? प्रथम तो जब बालक गर्भमें आता है तो वह उस स्त्रीके रूपको बिगाड़ देता है, पहिला आक्रमण तो यह हुआ उस संतानका। इसके बाद जब उस स्त्रीका गर्भ बढ़ा, ८–९ माहका वह बच्चा हो गया तो उस समय कितनी चिन्ता हो जाती है कि कैसे क्या होगा, बच्चा ठीक-ठीक उत्पन्न होगा या नहीं। तो यह दूसरा आक्रमण किया उस पुत्रने। गर्भसे निकलनेके बाद उसके मलमूत्रादिककी सफाई करनेका भी काम आ जाता है, उसकी बड़ी बड़ी चिन्ताएँ रखती है वह स्त्री। जब संतान और बड़ा होती जाती है तो उसकी सेवाके लिए, पढ़ाने लिखानेके लिए, उसे सुखी रखनेके लिए मां बाप कितनी चिन्ताएँ करते हैं? जब और बड़े हो गए, शादी भी कर दी तो अनेक प्रकारके झगड़े भी वह मचाता रहता है, अपनी पत्नीके स्नेहमें वह अपने मां बापको भी छोड़ देता है, कुछ भी उनकी परवाह नहीं रखता। तो कहाँ उस संतानसे सुख हुआ? वह संतान तो मां बापके लिए एक दुःखका ही कारण बन गया। पर इस जीवको मोह करनेकी प्रकृति पड़ी हुई है। इस कारण मोहमें वे सारे कष्ट भी इसे कष्ट नहीं मालूम पड़ते। अगर पुत्र कुपूत हो गया तब तो उसके पीछे क्लेश ही है। अगर पुत्र सपूत है तो उससे भी अधिक अशान्ति हो गयी, क्योंकि उसको प्रसन्न रखनेके लिए, राजी रखनेके लिए अनेक श्रम करने पड़ेंगे। तो जिस दृष्टिसे जो बात कही जा रही है उस दृष्टिसे ही सुनियेगा। जगतमें कौनसा पदार्थ ऐसा है जो मोह किए जाने लायक हो और जिससे आत्माकी भलाई हो जाय? लोग

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कष्टसे बहुत घबड़ाते हैं और प्रत्येक मनुष्यको चाहे वह कितना ही सुखकी स्थितिमें हो, कितना ही उसे आराम मिल रहा हो पर उसकी दृष्टि वहाँ ही जाती है जहाँ दुःख है। सुखपर दृष्टि नहीं जाती। जैसे किसी पुरुषके पास ९९ हजारका धन है तो उसकी दृष्टि इस धनपर न रहेगी कि चलो हमारे पास खूब धन है, अब और धन न चाहिए, बल्कि दृष्टि रहती है उस एक हजार पर। अभी तो हमारे पास १ हजार कम है, यह चिन्ता करके वह उस रखे हुए धनसे भी सुख न प्राप्त कर सकेगा। जो लोग और भी गरीब स्थितिमें हैं उनकी ओर ध्यान ही नहीं जाता कि ये भी तो अपने जीवनको गुजार रहे हैं, हम भी इनकी ही तरह जीवन गुजार लें। दृष्टि उसकी उससे अधिक धनिकोंपर रहा करती है कि हम क्यों न हुए ऐसे धनिक? यों धनिक बननेकी चिन्तामें वह वर्तमान धनसे भी सुख नहीं भोग पाता है।

ज्ञान ध्यानकी सम्हालमें आत्मसर्वस्वताका लाभ—यहाँ जगतमें कोई भी वस्तु मोह करने लायक नहीं है। अपने ज्ञानको सम्हालें, इसीमें अपना कल्याण है। यहाँका सारा वैभव तो यहीं नष्ट हो जायगा, पर आत्माका जो वैभव है सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र यह यदि प्राप्त कर लिया जाय तो अपना सच्चा साथी यह धर्म ही होगा। वैभव साथी नहीं हो सकता, परिवारके लोग साथी नहीं हो सकते। तब ध्यान किए जाने लायक बाहरमें कुछ भी पदार्थ नहीं है। अपने आपके स्वरूपका ध्यान जिस प्रकार बने वह यत्न कीजिए। अभी पिण्डस्थ ध्यान बताया था। अब यहाँ पदस्थ ध्यान बताया जा रहा है, तो यह भी आत्मध्यान की साधनाके लिए बताया जा रहा है। यह मंत्रराज मल और कलंकोंसे रहित है। मंत्रमें जिस तत्त्वका अंतर्भाव है परमात्मस्वरूप शुद्ध ज्ञानमात्र अरहंत सिद्ध स्वरूपका इसमें अंतर्भाव है। वह मल और कलंकोंसे रहित है, यह मंत्र भी मल और कलंकोंसे रहित है। शुद्ध स्वच्छ चन्द्रमाकी किरणोंके समान उज्ज्वल और आकाशमें गमन करते हुए जिनेन्द्र देव होते हैं उनकी तरह यह भी सब दिशावोंमें व्याप्त है, ऐसे जिनेन्द्र देवके सदृश इस मंत्रराजका भी स्मरण हे योगीजनों! करो। जो कुछ स्मरण करने योग्य है वह है परमात्मस्वरूप। दूसरी कुछ भी ध्यानमें देने योग्य बात नहीं है। गुरुवोंकी उपासना गुरुवोंकी सेवा वे भी इसी कारण हैं कि चूंकि गुरुका उपयोग परमात्मस्वरूपके ध्यानमें बसा रहता है तो यह भी उस ही से सम्बद्ध है। अतएव गुरुसेवा बताया है शास्त्रकी सेवा। पूज्य और ध्येय तो एक शुद्ध ज्ञानस्वरूप है वह परमात्माके सहारे विचारियेगा और कभी साक्षात् अपने आपमें विराजमान परमात्मस्वरूप का विचार करियेगा।

बुद्धः कैश्चिद्धरिः कैश्चिदजः कैश्चिन्महेश्वरः।
शिवः सार्वस्तथेशानः सोऽयं वर्णः प्रकीर्तितः ॥१९००॥

अनेक पुरुषों द्वारा बुद्ध हरि अज आदिके रूपमें परमात्मस्वरूपबोधक इस मंत्रराज

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

का प्रकीर्तन—जो मंत्र, जो अक्षर जैनशासनमें बताये गए हैं वे मंत्र अन्यत्र भी प्रचलित हैं। परमात्मस्वरूपमें और लक्ष्यमें अन्तर हो जाता है, किन्तु जो बात उपादेय है, ध्येय है, धर्मके अवतारमें जिसकी साधना करना उत्तम कहा गया है उसका प्रचार सर्व जगह है, पर स्वरूप बदल गया है तो यह जो अनाहत मंत्र बताया जा रहा है र्हं, इसको कितने ही लोग बुद्ध कहते हैं और शब्दार्थसे देखो तो बुद्ध मायने ज्ञानी, जो ज्ञानस्वरूप हो। कितने ही लोग इसे हरि कहते हैं। हरिका अर्थ है जो पापोंको दूर कर दे, सो जहाँका ध्यान इस मंत्रमें किया गया वह परमात्मस्वरूप ऐसा ही है, हरि ही है, सब कुछ बोलते जावो, कोई दोषकी बात नहीं है, गुणकी ही बात है। कितने ही शब्द बोलो, सबका यथार्थ स्वरूप ध्यानमें रखा जाय तो वे सब शब्द एक उत्तम ध्यानकी बात वाले हैं। इस ही महामंत्रको कितने ही लोग ब्रह्मा कहते हैं। ब्रह्माका अर्थ है जो अपने गुणोंमें बढ़े, जो अपने गुणोंकी सृष्टि उत्तम विधिसे करे उसे ब्रह्मा कहते हैं। प्रत्येक जीव अपने आपकी सृष्टिको ही करते चले जा रहे हैं, निरन्तर करते हैं, और उस सृष्टिका निरन्तर प्रलय भी करते हैं। नई अवस्था बनी, पुरानी अवस्था विलीन हो गई, इतनेपर भी स्वयं बराबर बना रहता है। तो यह जीव स्वयं शिव, ब्रह्मा और हरि इन तीनों रूप है। हरिका काम रक्षा करनेका है, शिवका काम प्रलय करना है और ब्रह्माका काम उत्पन्न करना है, इस तरह देखो तो यह जीव स्वयं अपने आपमें अपनी अवस्थाको उत्पन्न करता है, अवस्थाका ही विलय करता है और स्वयं बराबर बना रहता है। तो यह तत्त्व प्रत्येक पदार्थमें मौजूद है। उसको लोग भूल गए और उस तत्त्वकी मूर्ति इन देवतावोंके रूपमें मानने लगे। इस मंत्रराजको कितने ही लोग महेश्वर कहते हैं, महान ईश्वर, परम पवित्र आत्मा। कितने ही लोग इसे ईशान स्वरूप कहते हैं, मालिक, स्वामी। मंत्रराजमें ध्यान किया जाता है विशुद्ध परमात्मस्वरूपका, उसको भूल जाये तो केवल एक अक्षरके ध्यानमात्रसे ही सिद्धि नहीं बनती है, श्रद्धासहित परमात्मस्वरूपके लक्ष्यसे उसको ध्यानमें लेकर फिर मंत्रराज का अवलोकन करते हुए ध्यान करे तो यह ध्यान करनेकी एक विशिष्ट पद्धति है। जीवका उद्धार जीवध्यानसे ही सम्भव है, अतः खोटे ध्यानोंको छोड़ना और अच्छे ध्यानोंमें आना यह बात यदि बन सकी तो इस मनुष्यजीवनकी शोभा है और इसीसे मनुष्यजीवनकी सफलता है। ये सब बातें ज्ञानसाध्य हैं। अपना ज्ञानाभ्यास इसीके लिए चलें तो यह बहुत उत्तम और ऊँचा प्रोग्राम है। जिससे दुर्लभ समागम जो कुछ पाया है इसका हम सदुपयोग कर सकें।

मन्त्रमूर्ति समादाय देवदेवः स्वयं जिनः।
सर्वज्ञः सर्वगः शान्तः सोऽयं साक्षाद्व्यवस्थिताः ॥१९०१॥

मंत्रराजकी मुद्रामें जिनेन्द्रप्रभुके दर्शन—यह मंत्रराज हैं अक्षरमें निबद्ध ऐसा परम पवित्र भाववाचक है कि मानो यह ही स्वयं साक्षात् मंत्र मुद्राको धारण करके जिनेन्द्रदेव

Version 1

ही विराजमान हैं। स्थापना साकार वस्तुमें भी होती और निराकार वस्तुमें भी होती, जिसकी स्थापना की जानी है उस जैसा ही आकार हो उसमें भी स्थापना होती है। जैसे जिनेन्द्र भगवानकी स्थापना जिनेन्द्र मूर्तिमें है, जैसा उनका आकार प्रकार, जैसी उनकी नासा दृष्टि, जो मुद्रा वैसा ही आकार बनाकर उनकी स्थापना की गई है। तो कदाचित् जिस जगह न हो जिनेन्द्रमूर्ति तो पूजक लोग चावलोंमें ही जिनेन्द्रकी स्थापना कर लेते हैं। जो अवगम तिष्ठ आदिक बोलकर सर्वप्रथम चावल चढ़ाये जाते हैं वह स्थापना ही तो है। तो यह मंत्रराज ह्रँ ऐसा प्रतीक है कि कुछ साकारसा भी लगता, कुछ निराकारसा भी लगता ऐसी विलक्षण मूर्ति है जिसमें जिनेन्द्र भगवानका अवगम यह योगी कर रहा है। जो जिनेन्द्र सर्वज्ञ हैं, सर्वव्यापी हैं, शान्तमूर्तिके धारक हैं, प्रभु परमात्मा सकल लोकालोकके जाननहार होते हैं, सर्वज्ञ हैं। परमात्मा सर्वव्यापी है, तो उनका ज्ञान समस्त पदार्थोंमें व्याप कर रहता है। इसलिए वह सर्वव्यापी हैं और शान्तमूर्तिके धारक हैं। सो मानो जिनेन्द्र भगवान ही मंत्रमूर्तिको धारण करके साक्षात् विराजमान हैं, इस प्रकार प्रतीत भावों सहित इस मंत्रराजका चिन्तन करें। ध्यान तो एक ज्ञानस्वरूपका ही परमध्यान कहलाता है। ध्यान करना है, किसका ध्यान करना है? उसका उत्तर केवल एक ही है, ज्ञानस्वरूपका ध्यान करना है। अब उस ज्ञानस्वरूपका ध्यान चाहे हमें साक्षात्रूप भावसे बन जाय और चाहे परमात्माके चारित्रको, परमात्माके स्वरूपको उनकी मुद्राको निहारकर वहाँ निरखकर बने। किया जाना है ज्ञानस्वरूपका ध्यान। जिसने प्रभुको ज्ञानस्वरूप नहीं समझ पाया वह प्रभुको ही नहीं समझ पाया। प्रभु क्या है? एक ऐसा स्वच्छ ज्ञानपुञ्ज जिसमें रागद्वेष मोह रंच भी नहीं है, उस ही का नाम प्रभु है।

(पदस्थध्यानवर्णन प्रकरण ३८)

आत्मदर्शनके नाते प्रभुदर्शनकी अधिकारिता—प्रभुके दर्शन करनेके हम अधिकारी हैं क्योंकि मेरा स्वरूप एक ज्ञानमात्र है, एक मात्र औपाधिक जो विकारभाव है, जो मेरे स्वरूपके साथ संगत नहीं बैठता, असंगत है, जैसे जो निखारनेकी वस्तु हो, गेहूं चावल आदिक उनमें उनसे विरुद्ध कंकड़ आदिक मिले हों तो उनकी संगति नहीं बैठती है, मानो इसी प्रकार मेरे आत्मामें जो रागादिक भाव उत्पन्न होते हैं उनकी संगति मेरे आत्मामें नहीं बैठती है। यद्यपि यहाँ एक क्षेत्रमें एक प्रदेशमें ही यह विकार भाव चल रहा है, कोई यह स्वतंत्र द्रव्य नहीं है। आत्माका ही एक अशुद्ध परिणमन है, किन्तु स्वरूप दृष्टिसे जब निहारते हैं तो आत्माके स्वरूपमें रागादिक विकार संगत नहीं बैठ पाते। मैं भी ज्ञानपुञ्ज हूं। ज्ञानपुञ्ज प्रभुके स्वरूपमें निहारकर अपनी ज्ञानपुञ्जताका स्मरण होना ध्यानमें यह किया जाता है। जगतमें हम सब आत्मा स्वतंत्र हैं, अकेले हैं, सद्भूत हैं। हम आप अपना कैसे उद्धार कर लें, यही मात्र तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

एक समस्या है अपनी। यहाँ धर्म मजहब जाति कुल आदिका क्या प्रयोजन है ? सबसे मुख्य समस्या है मेरे आत्माका हित कैसे हो ? बस आत्माके नाते आत्माकी भलाईकी खोज की जा रही है। इसमें अन्य बाह्य साधनोंका प्रवेश नहीं है, अपने ही नातेसे अपना कर्तव्य निखारा जा रहा है। मेरा कौन साथी है ? कोई मददगार नहीं। केवल साथी है तो मेरा वह निर्विकल्प विशुद्ध ज्ञायकस्वरूप वह है शरण। उसका हम अनुभव कैसे करें ? उसके अनुभवके लिए हमें विकल्पजालोंका त्याग करना होगा। यह है बड़ा ऊँचा त्याग। मैं अमुक चन्द हूं, अमुक प्रसाद हूं, ऐसी पोजीशनका हूं, इस नगरका वासी हूं, अमुक जातिका हूं, अमुक कुलका हूं, अमुक मजहबका हूं, ये सारे विकल्प छोड़ देने होंगे तब निर्विकल्प स्वरूपका दर्शन प्राप्त किया जा सकता है, और उस आत्माके विशुद्ध स्वरूपका दर्शन यदि न प्राप्त किया जा सका तो धर्म और ढोंगोसे क्या सिद्धि होगी ? हालांकि यह भी एक मार्ग है, आज न सिद्धि हो, कल होगी, पर साक्षात् फल और धर्मपालनकी बात तो यही है, इतना ही विकल्प नहीं बल्कि एक बार यह भी विकल्प छोड़ दो, जो हम उपदेश सुनते, जो हम शास्त्र सुनते, जो हम अपने गुरुवोंकी सेवामें रहकर उनका हमने कुछ असर पाया वे सब विकल्प भी छोड़ दो, यह आत्मा ज्ञान-स्वरूप है, स्वयं अपने आप अपनेमें अपना प्रभाव बता देगा, और और अनुभव करा देगा कि धर्म क्या है, आनन्द क्या है, शान्तिका मार्ग क्या है ? तो ज्ञानस्वरूपका ध्यान होना ही वास्तविक ध्यान है। अब उस ज्ञानस्वरूपका ध्यान हम कर सकें उसके लिए कुछ अन्य भी ढंग बनाते हैं जिससे ऐसी पात्रता तो रहे कि हम धर्मके मार्गमें बने रहें। तो ऐसे प्रसंगमें यहाँ पदस्थ ध्यानका वर्णन चल रहा है और उस पदस्थ ध्यानमें सर्वप्रथम इस मंत्रराजके ध्यानकी चर्चा की गई है।

ज्ञानबीजं जगद्वन्द्यं जन्मज्वलनवार्मुचम्।
पवित्रं मतिमान्ध्यायेदिमं मन्त्रमहेश्वरम् ॥१९०२॥

ज्ञानबीज मन्त्रमहेश्वरके ध्यानका विधान—यहाँ इस मंत्रराजकी महिमा गायी जा रही है, उस महिमाको सुनकर यह अवधारण करना चाहिए कि ज्ञानस्वरूप प्रभुकी ही महिमा गायी जा रही है, उसे छोड़कर और कुछ भी गान करते रहें तो उसमें कोई तत्त्व नहीं रहता। ज्ञानस्वरूप अथवा प्रभुस्वभावको छोड़कर किसी भी अन्यका ध्यान न रहे, कुछ भी खटपट करके रहना उसमें लाभ नहीं मिलता, ज्ञानस्वरूपके ही ये सब प्रतीक बनाये गए हैं। इन अक्षरोंसे हमें ज्ञानस्वरूपका ही संकेत मिले तो ये सब मंत्रराज ध्यान फल प्रदान करते हैं, यह मंत्रराज ज्ञानका बीज है, जगतसे वंदनीय है, संसाररूपी अग्निके लिए अर्थात् जन्म संताप दूर करनेके लिए मेघके समान है। इस तरह ध्यान करें। विषय कषायोंसे जब ध्यान हटता है सो उस खोटे ध्यान हटनेका भी कोई प्रभाव होता है। तो मंत्रराजके ध्यानमें खोटे ध्यान तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हटे ही हुए हैं, वह प्रभाव तो स्वतः यह ही है, पर उसमें ज्ञानस्वरूपका संकेत बसाकर ज्ञान-स्वरूपकी भावना बनायें तो उसमें ध्यानका और अतिशय बढ़ जाता है। जब परखमें आया कि ओह इतना भी ध्यान जन्म संतापको दूर करनेके लिए, सांसारिक क्लेशोंको दूर करनेके लिए ये सब मेघके समान हैं।

सकृदुच्चारितं येन हृदि येन स्थिरीकृतम्।
तत्त्वं तेनापवर्गाय पाथेयं प्रगुणीकृतम् ॥१६०३॥

मंत्रराजकी अपवर्गपाथेयरूपता—इस मंत्रराज महातत्त्वको जिस पुरुषने एक बार भी उच्चारण किया, भक्ति और श्रद्धासे जिसका इसने जाप किया, जिसके हृदयमें स्थित किया उसने मोक्षके लिए मानो सम्बल प्राप्त कर लिया। एक सहायक कलेवा मानो प्राप्त कर लिया, आवश्यक वस्तुवोंका संचय उसने प्राप्त कर लिया। देखिये ध्यानमें ज्ञानपुञ्जकी बात न भूलिये। उसे भूल कर तो सब भूल है। यदि उसे स्मरणमें रखे तो सब रखा। प्रभुपूजा भी तब समझें जब ज्ञानपुञ्ज अर्थात् मात्र जाननस्वरूपका नक्शा अपने हृदयमें उतर आये। दर्शन सामायिक भी वही है कि मात्र जानन स्वरूप रहे, तो वह क्या स्थिति होती है, उस स्थितिका अनुभव बन जायगा। जैसे किसी दूसरेके दुःख दर्दको देखकर बहुत पीड़ित हो कोई, कोई जीव मारा ही जा रहा हो तो ऐसी घटनाको देखकर अपने आपमें एक ऐसी अनुभूति जगती है कि रोमांच कर देती है, रोंगटे खड़े हो जाते हैं। वह एक अनुभूतिकी बात कही जा रही है। जब ज्ञानपुञ्जकी अनुभूति होती है तो आत्मामें एक अद्भुत आह्लाद उत्पन्न होता है और एक मात्र लगन बन जाती है। तो ऐसे ज्ञानस्वरूपका ध्यान बने जिस कार्यमें वे सब कार्य आपके बहुत विशिष्ट धर्मपालनके कार्य हैं।

यदैवेदं महातत्त्वं मुनेर्धत्ते हृदि स्थितिम्।
तदैव जन्मसन्तानप्ररोहः प्रविशीर्यते ॥१६०४॥

मंत्रराजके हृदयस्थ होनेपर संसार प्रविशीकरण—जिस समय यह महातत्त्व मनुष्योंके हृदयमें ठहरता है उस ही काल संसारके संतानका अंकुर गल जाता है, अर्थात् यह मोह भाव सब टूट जाता है। सब सघनकी महिमा है। उस पुरुषको तो व्यवहारी जन एक अविवेकी जैसा देखेंगे कि जो धर्ममें चित्त बसाये, अन्य समागमोंसे, सांसारिक रंग ढंगोंसे विरक्ति किए हुए है, वैभवसे भी अनुराग नहीं रखता है, ऐसे पुरुषको देखकर व्यवहारी जन उसे अविवेकीसा महसूस करेंगे। लेकिन जो वैभवमें अनुरक्त है, उसे बहुत मेहनतसे संचित करता है वह कौनसा लाभ प्राप्त कर लेता है, जरा विश्लेषण करके सोचिये तो सही। इस सम्पदाके संचयमें पहिले भी संक्लेश संचित हो जाय तब भी संक्लेश, और यह मिटेगा तो जरूर। चाहे यह सम्पदा यहीं धरी रहे, हम चले जायें और चाहे हम ऐसे ही बने रहें जीवित और सम्पदा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

चली जाय। तो जब उस सम्पदाका वियोग होगा तब इसे क्लेश ही प्राप्त होगा। तो इस सम्पदाके समागमसे इसे कौनसा हित मिला ? जो मूर्छाभाव रखते हैं वे हैं अटपटे जीव, और जो अर्न्त धर्ममार्गका निर्णय करके इस ही मार्गमें लगते हैं वे हैं विवेकी सत् पुरुष। तो यह ज्ञानपुंज अथवा ज्ञानपुंजका प्रतीक यह मंत्रराज जिस मनुष्यके हृदयमें स्थिर रहता है ? उसके जन्मसंतानका अंकुर सब गल जाता है अर्थात् वह अब आगे जन्मधारण न करेगा। मोह ममतामें मत बढ़ो। कुछ इसमें तत्त्व नहीं निकलनेका। जिन्दगी व्यतीत हो जाती है अर्थात् बरबादी हो जाती है और अन्तमें बड़ा रिक्त होकर संक्लिष्ट होकर इस देहको छोड़ना पड़ता है, और जिसने ज्ञानकी आराधना की, ज्ञानस्वरूप जिसकी वासना धारणामें बन चुका है ऐसा जीव अपने आपको धीर वीर गौरवशाली अनुभव करता है और देह छूटनेके समय वह अपने आत्माको निहारकर वहाँ ही तृप्त रहकर प्रसन्नतापूर्वक आत्मनिर्मलतापूर्वक इस देहका परित्याग कर देता है।

स्फुरन्तं भ्रूलतामध्ये विशन्तं वदनाम्बुजे।
तालुरन्ध्रेण गच्छन्तं स्रवन्तममृताम्बुभिः ॥१९०५॥
स्फुरन्तं नेत्रपत्रेषु कुर्वन्तमलके स्थितिम्।
भ्रमन्तं ज्योतिषां चक्रे स्पर्द्धमानं शितांशुना ॥१९०६॥
संचरन्तं दिशामास्ये प्रोच्छलन्तं नभस्तले।
छेदयन्तं कलङ्कौघं स्फोटयन्तं भवभ्रमम् ॥१९०७॥
नयन्तं परमस्थानं योजयन्तं शिवश्रियम्।
इति मन्त्राधिपं धीर कुम्भकेन विचिन्तयेत् ॥१९०८॥

विविध स्वदेहोत्तमाङ्गोंमें—इस मंत्रराजका ध्यान किस विधिसे, किस तैयारीके साथ करें, इसका वर्णन इन चार श्लोकोंमें किया गया है। प्रथम तो ध्याता पुरुषको धीर होना चाहिए। जो अधीर है अस्थिर चित्त है वह ध्यानका पात्र ही नहीं है। धैर्यका धारक योगी पुरुष कुम्भक प्राणायामसे इस मंत्रराजको मोहकी लतावोंमें स्फुरायमान होता हुआ ध्यान करें। जैसे जो खेल दिखाने वाले अपने किसी मनके वश करनेका अधिकार प्राप्त करते हैं तो वे नाना प्रकारके कौतूहल एक लीला मात्रसे दिखाते चले जाते हैं, ऐसे ही देखिये जिस योगीने अपने ध्यानके द्वारा मनको वश किया है और जहाँ चाहे वहाँ मनको लगाये, जहाँ न चाहे वहाँसे मनको हटा ले, इसपर जिसका एकाधिकार हो गया है समझिये वह कितना महान् आत्मा है ? जीव तो मनके वश ऐसा विकट पड़ा हुआ है कि विवेक छोड़ देता है और यह मन जिस ओर ले जाना चाहता है उस ओर यह आत्मा भागता है। उस मनको जिसने वश किया और जिस ओर ध्यान लगाया जाता है, जहाँ ध्यान लगाया, जिस जगह उपयोगको लगाना चाहता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है, यह जिसके लिए सुगम हो गया है ऐसे योगीकी बात कही जा रही है। वह योगी किस किस प्रकारसे इस मंत्रराजका ध्यान करता है। जैसे साइंस वाले अपने यहाँ ऐसी मशीन तैयार करते हैं कि किस मशीनके भीतरका हृदय किस किस तरहसे वह मशीन कार्य कर रही है वह सब एक उस मंत्रपर जो एक बड़ी लाइटकी तरह है उसके मुखपर उसको नचाता हुआ उन किरणोंको बताता हुआ दिखता रहता है, यों ही जिसने अपने आपपर अधिकार पाया, इस मंत्रराजको जहाँ रखकर ध्यान करना चाहता है वहाँ ध्यान करता है तो इस ह्रँ अक्षरमें ज्ञान-स्वरूप जिनेन्द्र देव ऊर्ध्वगमन, शिलान्यास आदिक अनेक संकेतोंसे परिपूर्ण इस मंत्रराजमें कुम्भक वायुसे अपने उदरमें वायुको थामकर इस मंत्रराजको भौंहकी लतामें स्फुरायमान करता रहता है, भौंहें आँखोंके ऊपर दो होती हैं उन भौहोंपर मंत्रराजका ध्यान कर रहा है फिर मुखकमलमें निरख रहा है, फिर तालुवोंके छिद्रसे गमन करते हुए तथा अमृतमय जलसे झरते हुए यह ध्यान कर रहा है।

जिनबिम्बके दर्शन अवधारणकी एक दृष्टिप्रयोगविधि—कभी कभी आप मूर्तिको जिसकी मुद्रा बड़ी प्रसन्न है और शान्तरूप है, उस मूर्तिको आप टकटकी लगाकर कुछ समय तक ध्यानसे देखते रहें, और जब बहुत देखकर मनसा भरे अथवा कुछ अधिक देर हो जाय, पलक झेंपने जैसा अवसर आने लगे उससे कुछ पहिले आप उस मूर्तिको अपनी आँखोंमें पूरा पकड़कर (यह सब कल्पना की बात है) वहाँ विराजमान मूर्तिको आँखोंसे देखें और देखकर उस मूर्तिको पूरा आँखमें पकड़ लें और उसको अन्दर लाकर हृदय स्थानमें चूँकि अभी तो उस मूर्तिका मुख हमारी पीठकी ओर है जिसे हमने आँखोंमें पकड़ा और हृदयमें ले गए, अब वहाँ उनका मुख बदल दें, (यह सब क्रियाकी बात चल रही है) मुख बदलकर अपने आपकी तरफ हृदयमें विराजमान कर लें और उस मूर्तिको फिर भावोंसे इतनी बड़ी बना दें कि जो स्वयं है तो स्वयंके आकारमें फैला करके उस ज्ञानपुञ्जके संकेतका ध्यान करें और ध्यान करके जब मन खूब भर चुके, और मान लो ध्यान कर लिया तो अभी फिर उसे संकोच करके फिर उस मूर्तिका मुख पलट करके आँखोंमें ले जा करके धीरेसे उसको निकाल करके बेदीमें धरा दें, यह भी एक ध्यानकी क्रिया है। हालांकि वह मूर्ति कहीं आयी गयी नहीं है, मूर्तिकी जगह मूर्ति है, ध्यानीकी जगह ध्यानी बैठा है, पर यह एक ध्यानकी क्रिया है।

देहके विविध उत्तमासनोंपर मंत्रराजका स्थापनमें सुधास्वादन—जिस योगीका अपने आपके मनपर एकाधिकार हो जाता है उसकी क्रियाकी बात कही जा रही है। भौंहोंमें मंत्र-राजको स्फुरायमान करके उस पतली मुद्राकी तरफ यहाँसे इस भौंहसे इस भौंहपर, उस भौंह से इसपर उठा उठाकर उसे मुखके अन्दर प्रवेश करायें उसी जगहसे और तालूके छिद्रोंसे प्रवेश कर रहे हैं वह मंत्र वहाँ अमृतको झरा रहा है क्योंकि यह सन्तोष कराने वाली बूँद इसी तालू

Report any errors at vikasnd@gmail.com

से झरा करती है। आप कभी बड़े प्रसन्न बैठे हों तो आप एक गुटका लेंगे, कुछ गलेके नीचे अपने मुखकी चीज उतारेंगे। उसका स्वाद ऐसा अद्भुत होता है कि वह स्वाद आपको अच्छे भोजनमें नहीं मिलती। वर्णन चलता है कि देवतावोंके कंठसे अमृत झर जाता है। वहाँ जो झरता हो सो झरे, मगर आपका उपयोग विशुद्ध हो, हृदय निर्मल हो तो आपके मुखसे एक घूंट ऐसा स्वयं उतर आयगा कि उसमें आपको वह आनन्द मिलेगा जो अन्यत्र न मिलेगा। तो वह मंत्रराज तालू कंठसे अमृत झराता हुआ अब आया। अब उसे नेत्रोंकी पलकोंपर फिर स्फुरायमान करके केशोंमें स्थित करते हुए और अब गगनपर उसका विलास कीजिए तो ज्योतिषियोंके बीच भ्रमता हुआ, चन्द्रमाके साथ स्पर्धा करता हुआ, दशों दिशावोंमें भ्रमण करता हुआ, आकाशमें उछलता हुआ, कलंक समूहको छेदता हुआ, संसारके परिभ्रमणको दूर करता हुआ, उसको मोक्षस्थानमें प्राप्त करता हुआ, उस मोक्षलक्ष्मीसे उस ज्ञानलक्ष्मीसे मिलाप करता हुआ यह मंत्रराज है। इस तरह इतनी बातोंका उसमें ध्यान करें। देखो यह मंत्र भी है, तंत्र भी है। जिसको हिचकी आती हो उसको कुछ ऐसी बात कह दो कि वह कुछ आश्चर्यमें पड़ जाय तो वह हिचकी बंद हो जाती है। यह क्या है ? यह एक तंत्र है। तो यह मंत्र ध्यान कभी तंत्रका रूप भी रखता है कभी मंत्रका रूप रखता है। जब एक बाहरी प्रभावसे युक्त होता है तब तो यह तंत्र है और जब ज्ञानस्वरूपका ध्यान करता हुआ रहता है तब यह मंत्र है। तो ऐसे इस ह्रँ मंत्रराजको यह योगी अपनी इच्छानुकूल उत्तम उत्तम स्थानोंमें इसे रख करके इसका ध्यान करता है। यह स्थिरता उसे उस ज्ञानपुञ्जके स्मरणसे आयी जिसका कि इस मंत्रराजमें प्रतीकपना समझा। है ध्यान सबमें मुख्य उस ज्ञानस्वरूपका ही। स्वयं आत्मा ज्ञानस्वरूप है और केवल जाननहारके रूपमें मात्र एक ज्ञानप्रकाश है, तन्मात्र मैं हूं, इस रूपमें अपने आपको निरखे तो यह ज्ञानस्वरूपका अनुभव करता है। ऐसे ज्ञानका जो अनुभव है उस ही को आत्मानुभव कहते हैं। उसकी शरणमें आयें। बाहरमें कुछ भी सारभूत शरण चीज नहीं है, यही है वैभवकी बात। यह वैभव सभीको पुण्योदयके अनुसार प्राप्त हो जाता है, प्राप्त हो जाय पर उससे लाभ नहीं है, हानि कुछ भी हो। तो बाहरी विकल्पजाल हटाकर एक इस ज्ञानपुञ्जका और ज्ञानपुञ्जके प्रति इस मंत्रराजका ध्यान योगी जन करते हैं।

अनन्यशरणः साक्षात्तत्संलीनैकमानसः।
तथा स्मरत्यसौध्यानी यथा स्वप्नेपि न स्खलेत् ॥१६०६॥

मंत्रराजके दृढ़ ध्यानकी योगसाधना—धर्मध्यानमें संस्थानविचय नामक भेदके ४ अंग हैं—पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत, जिसमें पदस्थ धर्मध्यानका वर्णन चल रहा है। मंत्र पदके सहारे अथवा मंत्राक्षरके सहारे तत्त्वका ध्यान करना पदस्थध्यान है। इसमें सर्वप्रथम ह्रँ मंत्रराजका वर्णन किया जा रहा है। इस मंत्राक्षरसे कुम्भककी साधनाके साथ-

http://sahjanandvarnishastra.org/

साथ अर्थात् श्वासको हृदयमें नाभिमें रोकनेके अभ्यासके साथ-साथ इस मंत्रराजका ध्यान करें, इसे प्रथम भौंहोंपर फिर मुखमें प्रवेश करते हुए फिर तालूसे अमृत झराते हुए, फिर भ्रू-लतावों पर, फिर केशोंपर, फिर आकाशमें, फिर दशों दिशावोंमें इस तरहसे सर्वत्र विचरते हुए इस अक्षर मंत्रराजका ध्यान करे और अन्तमें संकुचित होकर मोक्ष स्थानमें विराजा है इस प्रकार ध्यान करें। मंत्राक्षरोंमें कोई बीजभूत रहस्य होता है जिन रहस्योंका परिचय बड़े ऋद्धिधारी ऋषीश्वरोंको होता है, पर साधारण रूपसे जितना कि उचित ग्रन्थोंमें लिखा जाता है उतना उस अक्षरका अर्थ समझें और उस अर्थके लक्ष्यसे परमतत्त्व जो ज्ञानस्वरूप है, उसका ध्यान बनायें।

ज्ञानस्वरूप अन्तस्तत्त्वके ध्यानकी प्रशस्तता—ध्यान तो सीधा एक आत्माके ज्ञानस्वरूपका ही प्रशस्त है। यह ध्यान आये तो सब मंत्र आ गये, यह ध्यान न आया तो मंत्रोंके विवादमें फंसे रहनेसे भी लाभ कुछ नहीं उठा पाया। जीवनमें हमारे करने योग्य काम है क्या? कौनसा वह एक काम है जो हमें अपने जीवनमें कर लेना चाहिए? इसका उत्तर तो आत्मानुभव आता है, अर्थात् मेरेको करनेका वास्तविक काम तो आत्मानुभव है, वह जिस किसी भी स्थितिमें मिले वह सब मंजूर है। गरीबी आये, अपमान हो, कोई भी मत पूछे, कुछ भी नाम मत आये, कैसी भी स्थिति आये, पर आत्मानुभव करना यही सर्वोपरि आत्मा का सारभूत काम है। किसी भी अवसरपर आवश्यक कामोंमें कुछ भी फुरसत पायी जाय उस अवकाशमें लाभ उठायें आत्मानुभवके उद्यमका, और प्रथम तो बात यह है कि सर्व कामों के करते हुए भी ज्ञानी पुरुषको बीच बीच जब चाहे आत्मानुभवकी बात भी जग सकती है। सही एक मात्र कार्य अपनको करनेको पड़ा हुआ है। यह ऐसा कार्य है कि जिसमें मनुष्यको तृप्ति होती है, परम आनन्द झरता है और इससे ऊब नहीं आती। उत्साह यही होता है कि यह आत्मानुभवकी स्थिति मुझसे छूटे नहीं, बराबर बनी रहे, यह बात अगर पा सके तो समझो सब कुछ पा लिया। इस असार संसारमें अभी तक रुलते चले आ रहे हैं, कोई शरण नहीं है, किन्तु आत्मानुभव मिले तो समझिये कि हमको सर्वस्व मिल गया। मैं हूं, यह हूं, सर्वस्व यही हूँ, यहाँ कोई कमी नहीं, परिपूर्ण हूँ। यह अपनेमें अपने रूप परिणमता रहता है, इसको कहीं बाहर कुछ काम ही नहीं है, खेदका नाम भी नहीं है, यह निराकुल है, आनन्दमय है, ज्ञानमात्र है ऐसा अनुभव जगे तो हमने सब कुछ पाया। तो उस ही अनुभवके लिए ये सब एक साधन बनाये गए हैं, चित्त नहीं इस परमार्थ ज्ञानस्वरूपमें लगता है और बाहर बाहर भ्रमण करता है तो उस बाहर भ्रमण करते हुए चित्तको थामनेसे लिए ये सब और-और आकारके ध्यान बताये गये हैं।

ह्रँ मंत्रराजके दृढ़ ध्यानकी प्रेरणा—ह्रँ मंत्रराजका वर्णन चल रहा है। इस मंत्रका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ध्यान अनन्य शरण होकर साक्षात् उसमें ही एक मनको मिलान कर ऐसा स्मरण करता है यह योगी ध्यानी कि फिर स्वप्नमें भी उस ध्यानसे विचलित नहीं होता है। जिसको विशुद्ध तत्त्वकी धुन होती है उसका संस्कार पवित्र होता है। उसे स्वप्न भी आयगा तो देव, शास्त्र, गुरुसे सम्बंध रखता हुआ आयगा। कहीं तीर्थपर जा रहा है, कहीं मूर्तिके दर्शन कर रहा है, कहीं मानो तीर्थंकर भगवान ही चलते हुए मिल रहे हैं, ऐसे ऐसे धर्म सम्बंधी स्वप्न आयेंगे। जिसका हृदय विशुद्ध है, विषय कषायोंमें आसक्ति नहीं है, चिन्ता और शोकसे दूर है, जो सदा अपने आपको एकाकी जानकर प्रसन्न रहता है, गृहस्थ भी हो और उसपर घरके लोगोंका भार भी हो, उनकी सेवा भी करता हो किन्तु जब उसके चित्तमें यह निर्णय है कि जितने भी जीव हैं सबके साथ कर्म लगे हुए हैं, उनका भाग्य उनके साथ है, वे स्वयं परिपूर्ण हैं एवं स्वरक्षित हैं, संसारमें वे अपने कर्मानुसार ही साधन प्राप्त कर सकेंगे। उनका उदय अच्छा है तो क्या मैं उनका पालन करता हूँ, मैं क्या धन कमाता हूँ, उनका पुण्योदय है तो यहाँ यह सब बात बन रही है। यदि उनके पापका उदय है तो कोई क्या कर सकेगा ? जैसा उनका उदय है वैसा उनको होता है। वे स्वयं कर्मबन्धनसे लिप्त हैं। सांसारिक बातें उनके उदयके अनुसार हैं, मुझपर भार क्या ? मैं क्यों भार मानूँ ? उसका एक यह निर्णय पहुंचता है तो वह अपने को निर्भार अनुभव करता है, प्रसन्न देखता है। अपने आपमें एक अद्भुत आनन्दका अनुभव कर सकता है तो ऐसा ध्यान करें कि फिर स्वप्नमें भी उस तत्त्वसे स्खलित न हों।

इति मत्वा स्थिरीभूतं सर्वावस्थासु सर्वथा।
नासाग्रे निश्चलं धत्ते यदि वा भ्रूलतान्तरे ॥१९१०॥

मंत्रराजका नासाग्रपर निश्चल धारणा—ऐसे महामंत्रके ध्यानका विधान जानकर योगीके सर्व अवस्थावोंमें स्थिर स्वरूप इस मंत्रराजको नासिकाके अग्रभागमें अथवा भौंह लता के मध्यमें इस निश्चल रूपको धारण करें। एक तो यह बीजाक्षर है, दूसरे इसको किसी स्थानपर निश्चल ठहराये है अर्थात् मन एक ही जगह उसे दिख रहा है तो इसमें मनकी स्थिरता होती है। विषयकषायोंके उपयोग हटते हैं तो उस वीतरागताकी स्थितिमें इसे स्वयं अपने आपमें बसे हुए ज्ञानानन्द स्वरूपका अनुभव जग लेता है। चित्तको एकाग्र बनानेका महान फल है। अस्थिरता इस जीवनमें भी दिखा देती है और इससे परलोक भी ठीक नहीं बनता है। गम्भीर रहना, धीर रहना, स्थिर रहना, वचन कम बोलना, बहुत आवश्यक समझा जाय, और यह भी आवश्यक समझ लीजिए कि इस समय मैं न बोलूँ तो कुछ यह काम बिगड़ जायगा। काम क्या ? धर्मपालन और आजीविका इनके सिवाय और काम क्या है ? जब हम ऐसा जान जायें कि इस समय मेरे न बोलनेसे एक बहुत अनर्थ हो सकता है तो कुछ बोलें ? मगर जहाँ तक सम्भव हो वहाँ तक मौन रहें, कम बोलें। अपनेमें धीरता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बढ़ायें, गम्भीरता बढ़ायें तो आत्माके तत्त्वका अनुभव करनेका पात्र बन सकते हैं। जो हर बातमें अस्थिरसा रहता है, व्यर्थ बकवाद करता रहता है, लड़ाई झगड़ेकी बात करता रहता है, जरा जरासी बातमें गुस्सा आ जाता है, अरे ऐसी दृष्टि कहीं धर्मपालनमें सहायक हो सकती है ? यहाँ पड़े हुए हैं, जन्म मरणके दुःख भोग रहे हैं, अहंकारके लायक यहाँ कुछ भी स्थिति नहीं है। यही तो क्षोभ है, कहीं बड़ी क्षोभ है, कहीं जरा हल्की क्षोभ रह गयी, किन्तु इस हल्के क्षोभका विश्वास तो नहीं कि यह क्षोभ आगे कम हो जायगा। अरे आज इस मनुष्यभव में हैं, कुछ विपदायें कम हो गयी हैं, मनुष्य भवके बाद कुछ भी तो बन सकता है यह जीव। अहंकारके लायक क्या बात है ? ऐसा जानकर अपने वचनोंको वश करना चाहिए और दूसरों से बोलें कुछ तो ऐसे हित मित प्रिय वचन बोलें कि जिससे खुदको भी शान्ति रहे और दूसरे को शान्ति प्राप्त हो। अशान्ति और क्षोभका वातावरण न बन जाय। एक बात। दूसरी बात—कदाचित् कोई क्षुब्ध हो रहा है, आपेसे दूर हो रहा है तो यह जानकर कि यह अज्ञानी है, इसको अपने धर्मकी कुछ सुध नहीं है, अपनी कोई चेष्टा कर रहा है, उसे देखकर खुद क्षोभ नहीं करने लगता। यह भी एक बड़ी तपस्या है कि ऐसा क्षुब्ध वातावरण भी निरख-कर अपने आपमें समता और शान्ति बनाये रहें। तो धीरता गम्भीरता जीवनमें आये तब तो इन ध्यानोंकी पात्रता रहेगी अन्यथा बातें तो करेंगे बड़ी और पल्ले नहीं है कुछ, यह स्थिति रहेगी। जैसे अनेक अज्ञानी लोग धर्मकी कुछ ऊपरी बातें सी करके (प्रथम तो वह भी विधि पूर्वक नहीं) अपने आपको एक धर्म कर लिया और मैं धर्मात्मा हूं, यों अपने आपमें मद और अहंकार उत्पन्न कर लेते हैं। तो बड़ी गम्भीर समस्या है इस मानवजीवनमें। इसे यों ही अधीरतामें न व्यतीत कर देना चाहिए। धीर रहें। तो महामंत्रके ध्यानका महत्त्व जानकर यह योगी सब अवस्थाओंमें बड़ी स्थिरतासे इस मंत्राक्षरको स्थिर रूपसे अपनी नासाके अग्र भागपर धारण करें अथवा भौंह-लतावोंके बीचमें नासिका मूलके अग्र भागपर चिन्तवन करें।

तत्र कैश्चिन्न वर्णादिभेदैस्तत्कल्पितं पुनः।
मन्त्रमण्डलमुद्रादिसाधनैरिष्टसिद्धिदम् ॥१९११॥

मन्त्रमण्डलमुद्रादिसाधनसाधित मंत्रराजकी इष्टसिद्धिदता—यह मंत्रराज एक है, पर इसे भिन्न-भिन्न आसनसे रहकर भिन्न-भिन्न मुद्रायें धारण करके भिन्न-भिन्न प्रकारोंमें रहकर इसका जाप किया जाय तो यह विभिन्न इष्टसिद्धि फलोंको देने वाला होता है। सबसे महान अभीष्ट फल तो शान्ति है। क्लेशोंसे मुक्ति पाना है। इससे बढ़कर जगतमें और अभीष्ट क्या हो सकता है ? धनी हो गये तो क्या हो गया ? वह कोई अभीष्ट चीज नहीं है। इस जीवको उन्नत बनाने वाली अथवा आगे अब दुःख न आये ऐसी अधिकार दिलाने वाली बात तो नहीं है। दुनियाके मोही जीवोंने, संसारमें भटकने वाले इन मनुष्योंने यदि इस मायामयी देहका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

नाम जान लिया और मेरे नामका जस बखान दिया तो इस जीवनका क्या हुआ ? बाहरमें कुछ भी अभीष्ट चीज नहीं है, परम अभीष्ट वस्तु तो एक आत्माकी शान्ति क्लेशोसे मुक्ति, विशुद्ध भावोंका वर्तना, ज्ञानस्वरूपमें मग्न रहना, आत्मीय विशुद्ध आनन्दका अनुभव करना यह है परम अभीष्ट । इसके अलावा अन्य कुछ इस जीवको अभीष्ट नहीं है, हितकारी नहीं है । मोहमें चाहे किसीको भी इष्ट मान ले । कोई लोग स्त्रीको बड़ी इष्ट मानते हैं । उसके गुण ही चित्तमें समाये रहते हैं और ऐसे समाये रहते हैं कि उनकी निगाहमें प्रभुमें भी गुण नहीं है । प्रभु कैसा है, क्या है उसकी सुधि भी नहीं है ऐसे स्त्री पुत्र आदिकके गुण उसके हृदयमें समाये रहते हैं । वे सब एक मलिन भाव हैं, धोखा भरी बातें हैं । परम अभीष्ट तो आत्माका एक विशुद्ध आत्मीय आनन्दका अनुभव है, उसकी सिद्धि तो बिना कुछ चाहे, बिना विकल्पके केवल परमतत्त्वके ध्यानके लक्ष्यकी ही होती है । पर ये मंत्रराजकी विशेषताएँ हैं कि इसके ध्यानके कारण अनेक सांसारिक इष्ट सिद्धियोंकी सिद्धि भी प्राप्त होती है ।

अकारादि हकारान्तं रेफमध्यं सबिन्दुकम् ।
तदेव परमं तत्त्वं यो जानाति स तत्त्ववित् ।।१६१२।।

मन्त्रस्थ परमतत्त्वके ज्ञाताकी तत्त्ववेदिता—अब एक दूसरे अनाहत मंत्रकी बात कह रहे हैं । उसकी मूर्ति है अर्हं, अकार जिसकी आदिमें है, हकार जिसके अन्तके है, रेफ जिसके बीचमें है और बिन्दु सहित है । वह है यह अनाहत मंत्र, जो परमतत्त्वका वाचक है । अर्हं मायने योग्य और अर्हंमें अर्हन्तका स्वरूप गर्भित है ऐसे इस अर्हं परमतत्त्वका जो जानकार है, इसके मर्मको जो जानता है, वही तत्त्ववेदी है, तत्त्व क्या है ? तत्त्व तो सभी हैं । जितने पदार्थ हैं उन पदार्थोंका जो जो स्वरूप है वे सब तत्त्व हैं । लेकिन मेरे लिए धर्मभूत शरणभूत परमार्थ तत्त्व क्या है जिसका सहारा लें कि संसारसे पार हो जायें ? वह तत्त्व है बस यही सहज ज्ञानस्वरूप । वही अर्हं पद है, यही परमतत्त्व है । जो कोई इसका स्वरूप जानता है वह तत्त्ववेदी है । परमतत्त्व तो वह ज्ञानस्वरूप है, जो समस्त तरंगोंसे रहित है जिसमें न राग है, न द्वेष है, न मोह है, न कर्तृत्व है, न भोक्तृत्व है, और यहाँ तक कि राग और वैराग्य का भी विकल्प नहीं है, ऐसा जो एक सहज ज्ञानस्वरूप है वह है परमतत्त्व । जो उसे जानता है वह है वास्तविक ज्ञानी । पर प्राग पदवीमें जिनका किंचित् वश नहीं होता, अपने चित्तके वश करनेके लिए जो पदस्थ ध्यानका सहारा ले रहा है उस प्रसंगमें कहा जा रहा है कि अर्हं यह शब्द ब्रह्मका वाचक है ना, इसमें परमेष्ठीका स्वरूप है ना, और इसे बताया है कि यह सिद्ध चक्रका उत्तम बीज है पूजामें, पूजकपर प्रस्तावनामें रुचि बढ़ती है, ऐसे उस अनाहत मंत्रको यह योगी ध्याता है और उसमें अपना चित्त लीन करता है ।

http://sahjanandvarnishastra.org/

सर्वावयवसम्पूर्णं ततोऽवयवविच्युतम् ।
क्रमेण चिन्तयेद्ध्यानी वर्णमात्रं शशिप्रभम् ॥१९१३॥

सर्वावयवसम्पूर्ण व अवयववर्जितरूपसे मंत्रराजका चिन्तन—इस मंत्रको अपने उपयोग के समक्ष रखकर सर्व अवयव सहित ध्यान करें और फिर कभी एक एक अवयव रहित ध्यान करें। कभी निरवयव ध्यान करें, कभी केवल अ का ध्यान, कभी केवल ह का ध्यान, कभी वर्णोंको छोड़कर केवल एक बिन्दुका ध्यान, फिर पूरे मंत्रका ध्यान। कुछ भी ध्यान करें, सभी का ही ध्यान करें पर स्थिरतासे ध्यान करें और उस ध्यानको जल्दी-जल्दी न बदलें। किसी अवयवका ध्यान करें तो वह भी बहुत देर तक। जब उस ध्यानमें ऊब आ जाय तब अन्य हिस्सेका ध्यान करने लगें, पर जानकर जल्दी जल्दी छोड़ छोड़कर इसका ध्यान करें यह विधि नहीं है। जैसे धर्मकी बात हम मंदिरमें सीखते हैं। धर्म करनेकी बात तो मकान और दूकान पर है, मंदिरमें आकर प्रभुके गुणोंका स्मरण करके, स्तुतियां पढ़कर, अपने लिए शिक्षाकी भावनाकी बात पढ़कर यहाँ हम शिक्षा लेते हैं, विषय कषायोंमें मेरा चित्त न जाय। विषय-कषायोंके जहाँ मौके मिलते हैं वहाँ अपने चित्तको थामें तो धर्मपालन तो वहाँ किया। जो बात मंदिरमें बोल गए थे उसके पालनका मौका तो घरमें, दूकानमें मिला। लेकिन इतनेसे ही धर्मपालन न समझ लेना कि मंदिरमें आये, खूब पूजा की, खूब गुण गाया, खूब भजन बोला, और मंदिरसे बाहर निकले तो फिर वैसेके वैसे ही हो गए, वैसी ही कषायें, वैसी ही क्रूरता, वैसा ही कपट बना हुआ है, तो यह बतावो कि वहाँ धर्म किया कहाँ? वहाँ तो एक अपने आपको धोखा ही दिया। इसी तरह ध्यानकी बात सुनिये। जो बात ध्यान करना है तो प्रथम तो ध्यानार्थीको धीरता और गम्भीरता रखना चाहिए तब उसका ध्यान जम सकता है। अपने चित्तमें उठने वाली अधीरताको तिलाञ्जलि दे दें।

ध्यानसाधनार्थ आत्मप्रतिबोधन—आत्मकी दया तो विशुद्ध ज्ञान और आनन्दकी बर्तनामें है। अपने आपको जैसा कि यह एकाकी है, केवल है ऐसा प्रतीतिमें लिए रहे। किसी की बात सुनकर जो चित्तमें क्षोभ जगता है उसका कारण क्या है कि हममें ज्ञान नहीं समाया हुआ है, हममें अभी कर्तृत्व बुद्धि जगी हुई है। इसको यों कह लो। क्षोभ जो आया है वह अज्ञानभावमें आया है, ऐसा ज्ञानबल बनावें कि दूसरेकी बात सुनकर अथवा दूसरेकी परिणति देखकर अपने आपमें क्षोभ न जगे। संसार है, अनेक पुरुष हैं, अज्ञानी जन हैं ऐसे ऐसे अज्ञानी जन हैं कि उन्हें बार-बार समझाया जानेपर भी चित्तमें बात नहीं बैठती। अपनी प्रकृति वे नहीं छोड़ते। ऐसे विकट भी अज्ञानी हैं, जिनके प्रति आचार्यने यह उपदेश दिया है कि ऐसों को तो समझाना भी न चाहिए, उसमें अपना समय बरबाद करना है और अपना उपयोग बिगाड़ना है। जैसे ये बिना समझाये समझ नहीं सकते ऐसे ही ये समझाये जानेपर भी समझ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नहीं सकते। फिर उनके लिए प्रतिबोधनका उद्यम करना व्यर्थ है। इसलिए उस उद्यमसे दूर होकर मैं अपने आपमें बर्तता हूँ। यह वर्णन किया है अध्यात्मयोगियोंने। धीरता किस प्रकार आये वह अभ्यास करिये। ये सब बातें सत्संगति और जैन ग्रन्थोंका स्वाध्याय किए बिना नहीं जग सकतीं। विशुद्ध परिणतिकी बात है, उनमें उद्यम करिये। केवल धन ही धन तो सब कुछ नहीं है, और धनको कमाता कौन है? उदय अनुकूल है तो आता है, नहीं अनुकूल है तो रहा सहा भी चला जाता है। जो हमारे आधीन बात नहीं, जो मेरे लिए सारभूत बात नहीं उसमें तो हमारा उद्यम हो और जो मेरे लिए सर्व कुछ हितरूप है, सारभूत है उसके लिए कुछ भी अपना यत्न नहीं होता। सारभूत बात, करने योग्य काम तो केवल आत्मतत्त्व का अनुभव है, उसका जिसके निर्णय हो चुका वह इस पदस्थ ध्यानको करता हुआ अपनी अनुभूति लेता रहता है। तो यह योगी इस अनाहत मंत्रको पूर्णरूपसे अथवा उसके एक एक अवयवके रूपसे ध्यान करता हुआ अन्तमें केवल उसे बिन्दु मात्र ध्यानमें रह जाय ऐसा अपना ध्यान बनायें। जैसे कोई बालक अपने पिताकी गोदमें खेलता है तो सर्व तरह खेलता है। कभी पड़कर, कभी खड़ा होकर, कभी बैठकर उसमें वह बालक अपना अधिकार समझता है। उसको ऐसा प्रेम मिला है, उसको ऐसी स्वाधीनता मिली है, तो यों ही समझिये कि जो मंत्राक्षरोंके ध्यानमें कुशल है वह पुरुष इस मंत्रराजका भी ध्यान नाना लीलावोंसे करता है, अपने शरीरके किसी उत्तम स्थानपर धारण करके करता है, कभी विश्वकी सभी दिशावोंमें यहाँ वहाँ सर्वत्र चलाता हुआ, ठहराता हुआ ध्यान करता है, कभी पूर्ण अक्षरों सहित ध्यान करता है तो उसी मंत्रका कभी एक एक अक्षर एक एक भागसे ध्यान करता हुआ रखता है। तो यह इस अर्हं मंत्रको क्रमसे एक एक अवयवका चिन्तन करते हुए चूँकि सबसे अन्तमें बिन्दु है न तो सर्व अवयव छूटकर केवल बिंदु मात्रका ध्यान रह जाता है इस लीलामें इस योगीके।

बिन्दुहीनं कलाहीनं रेफद्वितयवर्जितम्।
अनक्षरत्वमापन्नमनुच्चार्यं च चिन्तयेत् ॥१६१४॥

बिन्दुरहित, कलारहित व रेफद्वितयवर्जितरूपसे अनक्षरताको प्राप्त मंत्रराजका बिना उच्चारण किये ध्यानका अनुरोध—फिर इस मंत्रराजका बिन्दुरहित भी ध्यान करे। जैसे एक एक भागका ध्यान छोड़कर केवल बिन्दुपर ध्यान रह गया था अब बिंदुरहित और अर्द्ध चंद्राकार रहित, दोनों रेफोंसे रहित, जहाँ अक्षर न हो, उच्चारण भी न किया जाय ऐसा कुछ चिन्तन करें। यह ध्यान करने वालेकी लीला है। सर्व अवयवोंको छोड़कर एक भी अवयव चित्तमें न रहे, इस तरह उस मंत्रराजका ध्यान करें। जिसने अपना चित्त वश किया है, ये सब बातें सुलभ होती हैं। जिसका चित्त कहीं विषय कषायोंमें पड़ा है, वैसा ही संस्कार बना है उसको तो ये सब बातें अटपटीसी लगती हैं। योगी पुरुष अपने चित्तको एकाग्र करके इस

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अनाहत मंत्रके सहारे इस मंत्रराजके सहारे अपना ध्यान एक जगह लगाते हैं और उस ही स्वरूपमें उस परमतत्त्वका लक्ष्य और स्मरण करते हैं और उस उस ही ज्ञानस्वरूपको उपयोगमें लेकर अपनेको तृप्त करते हैं।

चन्द्रलेखासमं सूक्ष्मं स्फुरन्तं भानुभास्वरम् ।
अनाहताभिधं देवं दिव्यरूपं विचिन्तयेत् ॥१९१५॥

दिव्यरूप अनाहत देवका विचिन्तन—अर्हं इस मंत्रमें ज्ञानस्वरूप परमात्मतत्त्वकी स्थापना की है। व्यवहारमें इस मंत्रमें समस्त तीर्थंकर और समस्त अरहंत गर्भित हैं और सिद्धस्वरूप गर्भित है। इस मंत्रराजमें और इसमें स्थापित होनेमें ज्ञानस्वरूप परमदेवका ध्यान करते हुए में इतने सूक्ष्मसे सूक्ष्म रूपसे ध्यान करें कि चन्द्रमाकी रेखाके समान कान्तिमान किन्तु सूक्ष्म इस तत्त्वका दर्शन हो। अक्षरोंकी····में इस अनाहत मंत्रका अति सूक्ष्म रेखा और कान्तिका दर्शन हुआ, और उस विशुद्ध ज्ञानस्वरूपको एक शीतल कान्तिमान चन्द्रकी अत्यन्त पतली रेखाके तुल्य साधारण प्रकाशमय वह आत्मस्वरूप दृष्टिमें आया। यह अनाहत देव कैसा है कि सूर्यके समान देदीप्यमान है। जैसे सूर्य बड़े स्पष्ट रूपसे पदार्थोंके प्रकाशमें कारण होता है और उस प्रकाशमें पदार्थ स्पष्ट दिखते हैं इसी प्रकार इस मंत्रके सहारे अनाहत देवके ध्यानमें अपने आपमें ही एक सूर्यके समान अत्यन्त तेजस्वी ज्ञायक स्वरूप दिखता है। जिसने आत्मस्वरूपका परिचय किया है वह किसी भी कौतूहलसे, किसी भी ध्यान पद्धतिसे अपने आपके स्वरूपकी ओर आता है। ज्ञानी जनोंको आत्मस्वरूप इतना स्पष्ट है कि जब वे आत्माको जानते हैं तो यह है आत्मा। यह के रूपमें साक्षात् अनुभव पूर्व दर्शन होता है। यह अनाहत देव स्फुरायमान दिव्यरूपका धारक है। उस अनाहत देवका जो किसी से आहत नहीं हो सकता, किसीसे नष्ट नहीं हो सकता, ऐसा ही जो विशुद्ध ज्ञायकस्वरूप है उसका चिन्तवन योगीजन किया करते हैं।

अस्मिन्स्थिरीकृताभ्यासा सन्तः शान्तिं समाश्रिताः ।
अनेन दिव्यपोतेन तीर्त्वा जन्मोग्रसागरम् ॥१९१६॥

अनाहत देवके अभ्यासकी स्थिरतासे इसी दिव्यपोत द्वारा संसारसे तरण—इस अनाहत नाम देवके स्वरूपमें जिन्होंने अपना अभ्यास किया है ऐसे सत्पुरुष इस दिव्य जहाजके द्वारा, इस अनुपम ज्ञान प्रयोगके द्वारा इस जन्मरूपी घोर समुद्रसे तिरकर शान्तिको प्राप्त हो गए हैं। शान्तिका उपाय ज्ञानस्वरूपका अनुभव है, अन्य और कुछ उपाय नहीं है। बाहरी पदार्थोंका संचय करके इस जीवको शान्ति प्राप्त हो ही नहीं सकती। जब तक परपदार्थोंका विकल्प है तब तक उसे अशान्ति ही है। एक तो अशान्ति प्राकृतिक यों है कि अपने आधारको छोड़कर यह उपयोग बाहर गया है, और फिर दूसरी बात यह है कि जिस बाह्य वस्तुमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उपयोग गया है वह बाह्य वस्तु क्षणिक है, नष्ट होगी। तब यह उपयोग वहाँ स्थिर न रहकर फिर अन्यत्र चला जाता है। अर्हं मंत्रमें आत्मतत्त्वकी स्थापना है और परमात्मदेवकी स्थापना है। जैसे निराकार अथवा साकार रूपमें अन्य वस्तुवोंकी स्थापना होती है इसी प्रकार इस मंत्रमें एक वाचकताके भी नाते उनमें वे शब्द भरे हैं जो शब्द परमात्मस्वरूपके वाचक हैं। अतएव यह मंत्र परमात्मस्वरूपको बताने वाला है। तो मंत्रका ध्यान और परमात्मस्वरूपका ध्यान—इन दोनोंको योगी पुरुष आधार आधेय बनाकर कर रहे हैं। मंत्र तो द्रव्यसे शब्दरूप है और भावसे ज्ञानरूप है। योगी जन ज्ञानरूपकी उपासना परमार्थसे करते हैं और इस ज्ञान रूपको बताने वाला जो वाचक शब्द है उसकी उपासना वह व्यवहारसे करता है। तो मंत्रके सहारे आत्मतत्त्वका ध्यान और आत्मतत्त्वकी स्थापना इसमें है, इसमें मेरी ही बात कही गयी है ऐसा जानकर इस मंत्रराजकी मुद्राका भी ध्यान यह चित्तकी एकाग्रताके लिए कारण है, इसलिए मंत्रका ध्यान करें और इस तत्त्वका ध्यान करें। इस अनाहत देवमें जिसने अपना अभ्यास बनाया है वह सत्पुरुष इस ही ध्यानबलसे यह ज्ञानदर्शन सामान्यात्मक आत्मा मैं हूं, इस प्रकारकी प्रतीतिके बलसे अपने आपमें विशुद्ध आनन्दका अनुभव करते हुए योगी पुरुषोंने इस जन्मरूपी संसारसागरसे तैरकर शान्ति प्राप्त की है।

तदेव च पुनः सूक्ष्मं क्रमाद्वालाग्रसन्निभम्।
ध्यायेदेकाग्रतां प्राप्य कर्तुं चेतः सुनिश्चलम्॥१९१७॥

मंत्रराजका अति सूक्ष्म तत्त्वके रूपमें एकाग्रतासे ध्यानका आदेश—फिर बड़ी एकाग्रताको प्राप्त होकर चित्तको निश्चल करनेके लिए उस ही अनाहतको क्रमसे सूक्ष्म सूक्ष्म ध्याता हुआ बालके अग्र भागके समान सूक्ष्म रूपसे उस मंत्रका ध्यान करें। मंत्रकी जो मुद्रा है लिपिमें, उस मुद्राको सूक्ष्म सूक्ष्म करते हुए जैसे कि अक्षर कोई मोटे होते हैं ना, कोई अक्षर उससे पतले होते हैं, कोई और भी पतले होते हैं, तो यहाँ उस ही एक अर्हं मंत्रको जो कि स्पष्ट और मोटी मुद्रामें बना हुआ है उसको सूक्ष्म सूक्ष्म ध्याता हुआ इतना सूक्ष्म ध्यावे कि उसकी रेखा एक बालके अग्र भाग समान अत्यन्त पतली हो। इस प्रकार अत्यन्त सूक्ष्म रूपमें उस अनाहत मंत्रको ध्याता हुआ यह अपने उपयोगसे अति सूक्ष्मताग्राही बनावे। चित्त की एकाग्रताके लिए यह सब प्रयोग है। यों तो चित्तकी एकाग्रताके लिए अन्य भी प्रयोग होते हैं, जैसे अनेक पुरुष किया करते हैं। किसी आकारका चिन्तवन किया। एक पशुका आकार ही सामने रखकर ध्या रहे हैं अथवा कोई मोटा गोल बिन्दु सामने रखकर ध्या रहे हैं, उसको एक दृष्टिसे निरख रहे हैं और उतने काल तक निरखते हैं और एकाग्रतासे निरखते हैं कि वह शून्य यद्यपि काले रंगमें है फिर भी बहुत चिरकाल तक देखते रहनेसे उसका रंग अपने ध्यान में पलटकर श्वेत भी हो जाय, ऐसे अनेक उपाय हैं चित्तको एकाग्र करनेके लिए, परन्तु यहाँ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वह उपाय बताया जा रहा है कि जिससे चित्तकी एकाग्रता भी हो और वहाँ शरणभूत सार-तत्त्व जो परमात्मस्वरूप है उससे सम्बंधित भी हो।

अध्यात्मलक्ष्यसे बहिर्गत पुरुषोंके ध्यानकी निष्फलता—केवल चित्त ही एकाग्र करना है, इतना ही लक्ष्य जिन योगियोंका होता है वे चित्तको एकाग्र तो कर सकते हैं, प्राणायामकी साधना बहुत काल तक बना सकते हैं, किन्तु लक्ष्य उनका परमात्मतत्त्वका न होनेसे वासना संस्कार उनका सांसारिक लिप्सावोंसे भरा बना रहता है। एक इसी तरहकी घटना है कि एक योगी प्राणायामके बलपर श्वासस्थानके आधारपर वह समाधि लगाया करता था। समाधिका अर्थ है कि नाक और मुंह बन्द करके बहुत समय तक बैठा रहना। तो राजाके सामने उस योगीने अपनी समाधि लगायी। लक्ष्यको वह भूला हुआ था। एक तो राजाके सामने समाधि लगायी। इसकी क्या जरूरत थी, पर लक्ष्य उसका आत्मस्वरूपके परिचयका न हो सका था। तो समाधि लगाया, घंटों तक समाधि लगानेका उसके अभ्यास था। तो समाधि लगानेसे पहिले ही उसने सोच रखा था कि इस समाधिमें हम उत्तीर्ण हो जायेंगे तो फिर हम राजासे क्या इनाम मागेंगे? जो उसे इनाम मांगना था, वह पहिले ही विचार लिया। अब राजाके आगे समाधि लगाया तो समाधि लग चुकनेके बाद एकदम वह बोला कि लावो राजन् काला घोड़ा। उस राजाका एक काला घोड़ा ही विचार लिया था कि इस परीक्षाकी उत्तीर्णताके फलमें हम राजासे यह घोड़ा लेंगे सवारीके लिए। तो लक्ष्य जिसका भटका हुआ रहता है, आत्मतत्त्वका नहीं बन पाता है तो उनकी समाधि और ये तपश्चरणके कार्य ये सब मुक्ति फलको प्रदान नहीं कर सकते हैं, इसी कारण यहाँ चित्तकी एकाग्रताका उपाय बतानेके साथ साथ यह भी देखिये कि उपाय भी कौनसा दीखा कि जिससे परमात्मस्वरूपका सम्बंध है और उसके ध्यानकी पात्रता रहे।

मंत्रराजके स्थूल मुद्राके ध्यानसे हटकर सूक्ष्म ध्यानमें आनेका आदेश—अनाहत मंत्र में चित्तको एकाग्र करनेके लिए चित्तकी एकाग्रताको प्राप्त होकर चित्तको निश्चल बनानेके लिए इस मंत्रराजका इस अनाहतका इतना सूक्ष्म चिन्तन करें कि बालके अग्र भागके समान सूक्ष्म हो, यह तो एक मंत्राक्षरकी बात कही। आत्माके सम्बंधमें भी जो मनुष्य अपने आत्माके निकट आना चाहता है उसकी यह पद्धति होती है कि स्थूलका आलम्बन छोड़े और सूक्ष्मका आशय बनाये। इस एक सामान्य युक्तिको सर्वत्र घटा लीजिए। पहिले तो इस देहसे अपनेको न्यारा बनावें, देह है सूक्ष्म, आत्मा है सूक्ष्म। तो इस सूक्ष्म तत्त्वको छोड़कर इस सूक्ष्म आत्म-तत्त्वमें आयें, और उस आत्मामें भी रागद्वेष आदिक जो विकार उठ रहे हैं वे भाव तो हैं बड़े स्थूल, जो जाननेमें आयें, उपदेशमें आयें, व्यवहारमें आयें—वे सब भाव हैं स्थूल, और उन भावोंको पतला करके अर्थात् उन विकार भावोंकी दृष्टि हटाकर एक अपनेको ज्ञानरूपमें चिंतन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

करे तो यह अपनेको सूक्ष्म कर दिया। अब उस वर्तमान ज्ञानको भी यह ज्ञान स्थूल तक रहा है। ये भाव भी स्थूल हैं, मोटे हैं, बताये जा सकते हैं, कभी किए जा सकते हैं। तो उन रागादिक विकारोंसे भी हटकर और सूक्ष्म ज्ञान भाव तक आया था। अब उस परोक्ष ज्ञानसे भी हटकर, इस वर्तमान जानकारीसे भी हटकर एक ज्ञानस्वभावपर दृष्टि दें, सहज स्वभाव पर दृष्टि दें। यह सहज स्वभाव, यह ध्रुव ज्ञानतत्त्व तो परोक्ष ज्ञानोंने इन वस्तुवोंके ज्ञानोंसे सूक्ष्म है क्योंकि इन ज्ञानोंमें तो यह पदार्थ झलकता है। ये ज्ञान मोटे हैं बजाय उस ज्ञानके जिस ज्ञानमें आत्माका त्रैकालिक सहज ज्ञानस्वरूप झलकता है। यों ध्यानार्थी स्थूलसे हटकर सूक्ष्ममें आता है, और अपने आपको अति सूक्ष्म रूपमें ध्यान करता है, और साधन उपाय जो मंत्रका जाप है सो मंत्र मुद्रासे भी करके अति सूक्ष्म कर लेता है और उस सूक्ष्मरूपमें इस अनाहत मंत्रका ध्यान करता है।

ततोऽपि गलिताशेषविषयीकृतमानसः।
अध्यक्षमीक्षते साक्षाज्जगज्ज्योतिर्मयं क्षणे ॥१६१८॥

शुद्ध तत्त्वके ध्यानके प्रतापसे ज्योतिर्मय परम अध्यक्षत्वकी प्राप्ति—इसके पश्चात् गल गए हैं समस्त विषय जिनमें, ऐसे मन वाले होते हुए मनको स्थिर करने वाले योगी उसी क्षणमें ज्योतिस्वरूप साक्षात् जगतका प्रत्यक्ष अवलोकन कर लेता है। साक्षात्की विशालता गम्भीरता और व्यापकता होती है। स्थूल तत्त्व चाहे पुद्गलमें देख लीजिए और चाहे आत्मा में निरख लीजिए। आत्मामें स्थूल तत्व हैं रागद्वेष क्रोध कषाय आदिक भाव। ये स्थूल यों लगते हैं कि दूसरोंको मालूम पड़ता है, अपने आपको भी बोझ-सा लगता है और झट ज्ञानमें आ जाता है यह है स्थूल। और सूक्ष्म तत्त्व पुद्गलमें है आयु अथवा उसकी रूप आदिक शक्तियां। जिनपर दृष्टि जानेसे भाररहित एक अनुपम आनन्दको उत्पन्न करता हुआ ज्ञान बनता है। तो जैसे आत्मामें सूक्ष्मसे सूक्ष्म तत्त्वका ग्रहण होनेसे आत्माका उपयोग स्वच्छ बन जाता है और उस स्वच्छताके प्रतापसे इस ज्ञानस्वरूपमें इतनी शक्ति बढ़ जाती है कि फिर सारे विश्वको यह साक्षात् जानने लगता है।

सिद्धयन्ति सिद्धयः सर्वा अणिमाद्या न संशयः।
सेवां कुर्वन्ति दैत्याद्या आज्ञैश्वर्यं च जायते ॥१६१६॥

ध्यानसे ऋद्धिसिद्धि—इस अनाहत मंत्रके ध्यानसे ध्यानी पुरुषको अणिमा आदिक सर्व सिद्धियां प्राप्त होती हैं। देखिये शक्तिका विकास संयमसे होता है। जो उपयोग हमारे चारों ओर फैल रहा है, जिस किसी भी पदार्थमें बस कर, जिस किसी भी पदार्थको इष्ट मानकर उस ही के सुधारमें, बढ़ावमें उपयोग लग रहा है उस उपयोगको संयत कर देवें। बाहरी पदार्थोंसे हटाकर अपने आपके स्वरूपमें लीन कर देवें तो इस संयमनसे ज्ञानमें वह शक्ति प्रगट होती है कि फिर प्रत्यक्ष केवलज्ञान द्वारा समस्त विश्वको स्पष्ट जानने लगता है। ऐसे उपयोग

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

से यदि अणिमा आदिक सिद्धि प्राप्त हो जाय, दैत्य आदिक सेवा करने लगें, उनकी आज्ञा सर्वोपरि बने, ऐश्वर्य वैभव भी एक आदर्श बने तो इस फलकी प्राप्ति होनेमें क्या सन्देह ? अर्थात् कोई सन्देह नहीं है। इस मंत्रके ध्यानके प्रतापसे सर्व सिद्धियां इस योगीको प्राप्त होती हैं।

क्रमात्प्रच्याव्य लक्ष्येभ्यस्ततोऽलक्ष्ये स्थिरं मनः।
दधतोऽस्य स्फुरत्यन्तर्ज्योतिरत्यक्षमक्षजम् ॥१९२०॥

अलख निरञ्जन परमात्मतत्त्वके ध्यानसे अनुपमलाभ—अब यह योगी क्रमसे लक्ष्यसे अपने आपको छुड़ाकर अलक्ष्यमें लगाता है, मनको लक्ष्यसे हटाकर अलक्ष्यमें लगाता है। लक्ष्य मायने जो कुछ दिखनेमें आ सकता है, जो अपनी दृष्टिमें आ सकता है, लक्ष्यमें आया है, लगाने योग्य पदार्थ है, उन पदार्थोंसे अपने उपयोगको छुड़ाकर लक्ष्यमें पहुंचता है अलखनिरञ्जन। जैसे लोकव्यवहारमें लोग कहते हैं और किसी मित्रसे मिलनेके समय इन शब्दोंसे उसका स्वागत करते हैं। उस अलक्ष्यमें चित्त पहुंचता है। प्रथम तो योगी अपने लक्ष्यको स्थिर बनाता है, यह मन, यह उपयोग यत्र तत्र विचरता था, उस मनको स्थिर करनेके लिए इस योगीने निज स्वरूपका जो कि ध्रुव है, लक्ष्य बनाया। लक्ष्य बनाकर उस लक्ष्यकी स्थिरताके सहारे अपने फैलते हुए मनको अपने आत्मस्वरूपमें परमात्मतत्त्वमें लगाता है, और इसमें सिद्धि प्राप्त होनेके पश्चात् मनकी एकाग्रता बनायी। अब यह योगी सर्व लक्ष्योंसे भी मनको हटाकर उस अलक्ष्यमें पहुंचता है जो अलक्ष्य है, इन्द्रिय द्वारा लगाया नहीं जा सकता। केवल अनुभवगम्य उस अलक्ष्यसे मनको स्थिर बनाना है, तब उस ध्यानीके अन्तरङ्गमें ऐसी ज्ञानज्योति प्रगट होती है जो इन्द्रियके अगोचर है। यों अब लक्ष्यसे भी परे करके अपने आपको वह योगी अलक्ष्यस्वरूपमें पहुंचा रहा है।

इति लक्ष्यानुसारेण लक्ष्याभावः प्रकीर्तितः।
तस्मिन्स्थितस्य मन्येऽहं मुनेः सिद्धं समीहितम् ॥१९२१॥

लक्ष्यके अनुसार चलकर अलक्ष्यमें स्थित होने वाले मुनिकी समीहत सिद्धि—जैसे नय विभागमें बताया गया है कि प्रथम तो व्यवहारनयका अवलम्बन करें और व्यवहारनयके अवलम्बनसे आश्रयसे एक निश्चयनयके विषयका बोध बनायें, फिर निश्चयनयका परिचय होने पर व्यवहारकी प्रवृत्तियोंसे, व्यवहारनयकी तरंगोंसे अपने आपको छुड़ाकर निश्चयनयमें ले जाय और फिर निश्चयनय व्यवहारनयसे परे नयपक्षसे अतिक्रान्त एक ज्ञानस्वरूपमें अपनेको ले जायें, अनुभवमें अपनेको पहुंचायें, निश्चयका भी परिहार कर दें तो जैसे पहिले विषय कषायोंके अनेक स्थलोंसे हटनेके लिए व्यवहारनयका आलम्बन किया था, पश्चात् व्यवहारनय की तरंगोंसे भी मुक्त होनेके लिए अब निश्चयनयका आलम्बन किया, पर आत्मानुभव इस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निश्चयनयसे भी परे है, सूक्ष्म है तो उस अनुभवके लिए अब इस निश्चयनयका भी परिहार कर देते हैं। इसी प्रकार योगी पुरुषोंको पहिले तो अपना लक्ष्य बनाना चाहिए। मुझे करना क्या है, प्रत्येक मनुष्य अपने आपमें यह भाव लादे हुए है कि मुझे यह करना है। मुझे करना क्या है ? इसका उत्तर यह आने लगे कि आत्मानुभव करना है, और करनेके लिए अन्य क्या काम सारभूत है ? अन्य किसी कामसे मेरा पूरा न पड़ सकेगा। हाँ निर्णय करके दुर्लक्ष्योंसे हटकर एक लक्ष्यमें आना है, मुझे इस आत्माकी साधना करना है। रागद्वेषसे हटकर केवल ज्ञानज्योति मात्र अपनेको अनुभवना है, तो दुर्लक्ष्यसे हटकर पहिले यह लक्ष्यमें आये, अब उस लक्ष्यसे भी हटकर याने लक्ष्यके अनुसार प्रवृत्तिके माध्यमसे लक्ष्यका भी अभाव करके उस अलक्ष्यमें जो स्थिर रहा करते हैं ऐसे मनुष्योंसे वाञ्छित कार्योंकी सिद्धि होती है। आचार्यदेव कहते हैं कि जिनका उपयोग लक्ष्यसे भी हटकर अलक्ष्य ज्ञानस्वरूपमें पहुंच गया है उनको समस्त इष्ट कार्योंकी सिद्धि हो गयी, ऐसा मैं मानता हूँ, क्योंकि मनुष्योंको चाहिए क्या ? निराकुलता। यदि यह निराकुलता विषयोंके भोगोंसे प्राप्त होती तो यह भी सम्भावना कर ली जाती कि विषयोंका सेवन करना धर्म है और मोक्षका मार्ग है, लेकिन विषयोंके साधनोंमें निराकुलता किसे हुई है ? कभी हो ही नहीं सकती। तो जब बाह्य पदार्थ बाह्य हैं, भिन्न हैं, अध्रुव हैं तो उनके सहारे आत्माको कुछ लाभकी बात नहीं मिलती है। तो वहांसे हटकर एक लक्ष्यमें आयें और लक्ष्यके अनुसार लक्ष्यकी पूर्ति कर रहे हैं, तो इस ही प्रसंगमें अनायास ही ऐसा अन्तःप्रयास बनेगा कि अलख निरञ्जन निज ज्ञायक स्वरूपमें यह आत्मतत्त्व स्थिर रह सकेगा।

एतत्तत्त्वं शिवाख्यं वा समालम्ब्य मनीषिणः।
उत्तीर्णा जन्मकान्तारमनन्तं क्लेशसंकुलम् ॥१६२२॥

कल्याणमय परमात्मतत्त्वके आलम्बन द्वारा जन्मकान्तारकी उत्तीर्णता—यह अनाहत तत्त्वके रूपमें कहा गया है इस ही का नाम शिव तत्त्व है, कल्याणस्वरूप तत्त्व है। इस अनाहत तत्त्वका अवलम्बन करके बुद्धिमान लोग अनन्त क्लेशोंसे युक्त संसारसे पार हो गए हैं। अपना ध्यान बनानेके अनेक उपाय हैं, जिस किसी भी बातसे आत्माकी विशुद्धि बढ़े, सहज ज्ञानस्वरूपका अवलोकन बने वे सब उपाय प्रशंसनीय हैं। उन्हीं उपायोंमें इस प्रसंगमें पदस्थ ध्यानका उपाय कहा जा रहा है। पद होना चाहिए। वह अनेक अक्षरोंसे भरपूर पद हो या प्रयोजनभूत कुछ वर्णोंसे वह पद बना हो, उसका वाच्यभूत अर्थ कुछ थोड़ासा अपनी बुद्धिके अनुसार सब समझ लेना चाहिए। तो वह तत्त्व जो आत्मामें सारभूत है एक मंत्र मुद्राके रूप में ध्यान किया जानेके लिए ज्ञानीका कदम बढ़ रहा है। तो उस मंत्रका भी ध्यान करें और मंत्रमें जिसकी बात कही गई है उस परमतत्त्वका भी ध्यान करें। यह परमतत्त्व शिवस्वरूप

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है और शिवको उत्पन्न करने वाला है। शिव मायने सुख आनन्द। छहढालामें मंगलाचरणमें पंडित दौलतराम जी ने उस ही शिव तत्त्वका ध्यान किया है कल्याणस्वरूप तत्त्वका, जिसका आश्रय लेनेसे यह जीव संसारके दुःखोंसे मुक्त हो जाता है। क्या है वह तत्त्व ? रागद्वेषरहित ज्ञानस्वभाव। प्रत्येक आत्मामें ज्ञान स्वभाव है और वह स्वभाव रागद्वेषरहित है, वीतराग स्वरूप है, वह स्वयं आनन्दरूप है और आनन्दकी प्राप्तिका कारणभूत है, ऐसे शिवस्वरूप उस वीतराग विज्ञान भावको नमस्कार किया गया है। अपने आपका वह स्वरूप जो अन्य पदार्थोंसे न रोका जाय, ऐसे स्वरूपका ध्यान ही सर्वोपरि ध्यान है। तो उस स्वरूपका ध्यान करके यह जीव, संसारसमुद्रसे पार हो जाता है। यहाँ तक यह मंत्रराज और अनाहत मंत्रके ध्यानकी विधि बतायी है, अब आगे ॐ प्रथम मंत्रके ध्यानकी विधि बतायेंगे।

स्मरदुःखानलज्वालाप्रशान्तेर्नवनीरदम्।
प्रणवं वाङ्मयज्ञानप्रदीपं पुण्यशासनम् ॥१६२३॥

पुण्यशासनरूप प्रणवमंत्रके स्मरणका आदेश——हे मुनि ! तू प्रणव नाम अक्षरका स्मरण कर, क्योंकि यह प्रणव नामका अक्षर दुःखरूपी अग्निकी ज्वालाको शान्त करनेके लिए घनके समान है, जैसे कितनी ही बड़ी ज्वाला हो, मेघ बरस जाये तो अग्नि शान्त हो जाती है, इसी प्रकार कोईसा भी क्लेश हो प्रणव मंत्रका श्रद्धा सहित भावपूर्वक ध्यान किया जाय तो क्लेश मिट जाते हैं। प्रणव मंत्र है ॐ। यह ॐ मंत्र समस्त प्रतिपादनोंका प्रकाश करनेके लिए दीपकके समान है। ॐ में कितनी बातें गर्भित होती हैं, जो जो भी पूज्य हैं, देव हैं, गुरु हैं, शास्त्र हैं, और जो जो भी प्रतिपादन हैं सब ॐ में गर्भित हैं। ॐ मंत्र मंत्रराज है, यह पुण्यका शासन है, पवित्र शासन है, ॐ मंत्रमें पंचपरमेष्ठी गर्भित हैं। समस्त श्रुत गर्भित हैं। जितने भी ज्ञान हैं व शब्दोंका ज्ञान होता है उन समस्त शब्दोंका प्रतिनिधि ॐ है। ॐ मंत्रका ध्यान करके मुनिराज समस्त संसारकी ज्वालाको शान्त कर देते हैं। इस ॐ का यदि बड़ी गम्भीर ध्वनिमें उच्चारण किया जाय तो यह ॐ उच्चारण किए जानेकी स्थितिमें आत्मामें एक विचित्र आल्हाद उत्पन्न करता है, रोमांच हो जाता है। विषयकषायोंकी वासनासे यह हटकर अपने आत्मतत्त्वमें लग जाता है, ऐसा ॐ मंत्र प्रणव मंत्र है और इस सब मंत्रका प्रतिनिधि है। जितने मंत्र बोले जाते हैं सब मंत्रोंमें सर्वप्रथम ॐ लगा होता है। ऋद्धिबल, मंत्रबलमें सबसे पहिले ॐ लगा होता है। तो ॐ सब मंत्रोंका प्रतिनिधि है, सर्व ज्ञानोंका प्रतिनिधि है, और जितने भी पूज्य आत्मा हैं देव, गुरु, शास्त्र सबका प्रतिनिधि यह ॐ अक्षर है।

यस्माच्छब्दात्मकं ज्योतिः प्रसूतमतिनिर्मलम्।
वाच्यवाचकसम्बंधस्तेनैव परमेष्ठिनः ॥१६२४॥

प्रणव मंत्रसे ज्योतिका प्रसव व परमेष्ठिवाच्यवाचक सम्बन्ध——इस प्रणव मंत्रसे ज्यो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

निर्मल शब्दरूप ज्योति उत्पन्न होती है अर्थात् ज्ञान उत्पन्न होता है। और परमेष्ठीका वाच्य वाचक सम्बन्ध भी इसी प्रणवसे होता है। याने प्रणवमंत्र तो वाचक है और पंचपरमेष्ठी वाच्य हैं। ॐ की मुद्रा भी अनेक मर्मोंको बताती है। ॐ अक्षरमें समस्त पूज्य आत्मावोंके पदोंके प्रथम प्रथम अक्षर उसमें गर्भित हैं और कभी ॐ शब्दको यदि कोई काठका बनाये और छोटे-छोटे भाग बनावे। जितनी पहिले टेढ़ लगती उतना एक हिस्सा काठका बना लिया फिर ऊपर उठाया, जो जहाँ बनाया वे सब हिस्से थोड़े-थोड़े करके यदि काठका ॐ बन जाय तो उन टुकड़ोंसे समस्त अक्षर लिख जाते हैं। ॐ की ऐसी मुद्रा है कि ॐ अक्षरमें जो बनावट है उसके छोटे छोटे काठके भागांश हों तो उनसे किसी भी अक्षरको बनाया जा सकता है, ऐसी ॐ की मुद्रा है। तो इस प्रकार भी ॐ शब्द समस्त शास्त्रोंका प्रतिनिधि हुआ। जितने शब्द हैं वे सब ॐ की, मुद्रामें गर्भित हैं और ॐ शब्दमें पाँचों परमेष्ठियोंके नाम आ जाते हैं। इसके अतिरिक्त ॐ में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र भी आते हैं। ॐ में ७ तत्त्व ९ पदार्थ भी आते हैं। भावनाएँ, संयम, साधन, तपश्चरण, सब कुछ इस ॐ में गर्भित हैं, सबका प्रतीक यह ॐ है। ॐ शब्दका अर्थ हाँ भी होता है, स्वीकार करना भी होता है। प्रकृतिसे देखो प्रायः करके पुरुष जब भोजन करके तृप्त होता है तो डकार आती है तो ॐ के उच्चारण की आती है। शरीरमें जितने ये अंश बने हुए हैं ये सब ॐ की मुद्रापर बने हुए हैं। नाक पर देखो, आँखमें देखो, कानमें देखो तो छोटे-छोटे भाग ये सब ॐ की मुद्रापर हैं। यह सारा शरीर ॐ रूप दिखता है। तो ॐ में इतना ही क्या, समस्त लोक भी बसा हुआ है। ऊर्ध्व लोक अधो लोक और मध्यलोक इस ॐ शब्दमें बसे हुए हैं और वैसे अक्षरोंको मिलाकर भी देखलो अधोलोकका अ लिखा, ऊर्ध्व लोकका ओ लिखा और मध्य लोकका म लिखा। ओम बन गया। तो ॐ शब्दमें तीनों लोक गर्भित हैं, ॐ शब्दमें पांचों परमेष्ठियोंके नाम भी गर्भित हैं। अरहंतका अ, सिद्धका दूसरा नाम है अशरीर। तो सिद्धका अ, आचार्य का आ, उपाध्यायका उ और मुनिका म, इन सबको मिला दीजिए तो इसका ओम बन जाय इस प्रकार यह प्रणव मंत्र परमेश्वरका वाचक है और ॐ के उच्चारणमें पंचपरमेष्ठियोंके स्वरूपका दर्शन होता है।

दत्कञ्जकर्णिकासीनं स्वरव्यञ्जनवेष्टितम्।
स्फीतमत्यन्तदुर्धर्षं देवदैत्येन्द्रपूजितम् ॥१९२५॥
प्रक्षरन्मूर्द्ध्न संक्रान्तचन्द्रलेखामृतप्लुतम्।
महाप्रभावसम्पन्नं कर्मकक्षहुताशनम् ॥१९२६॥
महातत्त्वं महाबीजं महामन्त्रं महत्पदम्।
शरच्चन्द्रनिभं ध्यानी कुम्भकेन विचिन्तयेत् ॥१९२७॥

http://sahjanandvarnishastra.org/

महाबीज ॐ महामन्त्रकी विशेषतायें ध्यानविधि—ध्यानोंमें जब विशेष ध्यानकी धुन बनती है तो वह कुम्भक प्राणायाम भी प्रायः बनता है। ध्यान निश्चल और अत्यन्त एकाग्र रूपसे कुम्भक हुआ करता है। वैसे रेचक अथवा पूरक ये भी ध्यानमें बाधक नहीं हैं। अभ्यास करनेसे ये भी अपनी मंदगति लिए हुए होते हैं, फिर भी इन तीनमें कुम्भककी विशेषता है, पूरक नाम है जब श्वास लेते हैं, श्वासको भीतर लेना इसका नाम पूरक है, और श्वासको भीतर रोक लेना इसका नाम कुम्भक है और फिर धीरे-धीरे स्वरको फेंकना इसका नाम रेचक है। कुम्भक वायुके समय अर्थात् न श्वास ली जा रही हो, न श्वास फेंकी जा रही हो, किन्तु स्थिरतासे वायुको रोककर बैठे हुए हों तो उस समय ध्यानकी विशेषता होती है। ध्यान करने वाला संयमी पुरुष हृदय कमलकी कर्णिकामें स्थिर और स्वर व्यञ्जन अक्षरोंसे बेढ़ा हुआ यों इस मंत्रराजका ध्यान करे। किसी पहले हृदयकमलकी कर्णिकापर ॐ शब्दका ध्यान कर रहा है योगी और वह स्वर व्यञ्जन अक्षरोंसे बेढ़ा हुआ है, उसके चारों ओर हृदयकमलकी पत्रिकाओंपर स्वर व्यञ्जन चल रहे हैं, क्योंकि समस्त स्वर व्यञ्जन मुद्रा इस ॐ में आ गयी है। यह ॐ मंत्र उज्ज्वल है। मुद्राको भी देखो—लिखा हुआ देखो तो इस ॐ में स्वच्छ रूपमें एक साथ कुम्भक वर्णके रूपमें इसे निरखें, और इस ॐ का ध्यान करें, जो ॐ अत्यन्त दुर्धर है, जिसका ध्यान बड़े अभ्यास द्वारा साध्य है, देव और दैत्य द्वारा पूजित है, देव भी पूजा करते हैं, मनुष्य भी पूजा करते हैं, योगिराज भी पूजा करते हैं। इस ॐ मंत्रको बड़े महायोगी भी चावसे, आत्महितकी अभिलाषासे ध्यान किया करते हैं। यह ॐ मंत्र छोड़ते हुए मस्तिष्क पर स्थित चन्द्रमाकी रेखाके अमृतसे गीला है यों ध्यान करें। यह ॐ मस्तिष्कपर लिखा हुआ है। ध्यानी पुरुष अपने आपके शरीरके अंगोंमें विचार कर रहा है। अभी हृदय कमलकी कर्णिकापर ॐ की मात्रा निरखकर ध्यान कर रहा था, अब यह मस्तिष्कके ऊपर चन्द्रमाकी कलाकी तरह यह रेखावत् लिखा हुआ ध्यानमें आ रहा है, जो दिखते हुए चन्द्रमाके अमृतके समान गीला है, आद्रित है, जिसमेंसे अमृत झर रहा है इस तरहका चिंतवन करें। महाप्रभाव सम्पन्न, कर्मरूपी वनको दग्ध करनेके लिए अग्नि समान ऐसे इस महातत्त्व, महाबीज, महामंत्र, महापदस्वरूप तथा शरदके चन्द्रमाके समान गौर वर्णके धारक ॐ को कुम्भक प्राणायामसे चिन्तवन करें।

ॐ के नादमें महाप्रभाव—ॐ को अगर एक ध्वनिसे कोई लगाकर उच्चारण करे, ॐ की धुनि बनाकर बढ़ता रहे तो इस ॐ के उच्चारणके समय ही आत्मामें एक नवीन भाव उत्पन्न होता है। मंदिरमें दर्शनके समय अथवा जाप, सामायिकके समय इस ॐ शब्दको एक ही ॐ को धीरेसे बहुत देर तक गम्भीर मंद आवाजसे बोलियेगा तो इस ॐ शब्दके उच्चारण में ही बहुत बड़ा प्रभाव भरा हुआ है। यह ॐ मंत्र कर्मसमूहको जलानेके लिए अग्निकी तरह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बताया है। जैसे अग्नि ईंधनको जलाकर खाक कर देती है इसी प्रकार यह प्रणव मंत्रका ध्यान कर्मसमूहको जलाकर नष्ट कर देता है। यह महामंत्रका प्रतिनिधि ॐ प्रणव मंत्र महातत्त्व है। इन शब्दोंमें मूल स्तुति गायी गई जिसका अर्थ आ गया। जो वाच्य बनता है उसपर दृष्टि जानेसे अक्षरकी महिमा जानी जाती है, कौन शब्द कैसा अर्थ बतला रहा है उसका स्वरूप जाननेसे उस अक्षरकी महिमा बढ़ती है। जैसे कोई परमात्माका स्वरूप जानता हो और जब वह परमात्मा शब्द बोलता है अथवा सुनता है तो उसके चित्तमें इस परमात्मा शब्दका भी आदर होता है। जिस ध्वनिको सुनकर परमात्मस्वरूप पहिचान गया है वह ध्वनि भी पूजित होती है। यह प्रणव मंत्र महातत्त्व है और महाबीज है। सभी मंत्रोंमें यह पूजा मंत्रके रूपमें आदिमें रहता है। कभी मध्यमें भी ॐ बोला जा सकता है। प्रायः करके ॐ आदिमें आया करता है। यह महाबीज है, समस्त स्थितियोंका कारण है और समस्त ज्ञानोंका बीज है। इसके ध्यानसे ज्ञानका विकास भी होता है, शान्तिका भी विकास होता है। यह महामंत्र है। इस ॐ मंत्रको प्रायः सभी सिद्धान्त वाले मानते हैं। जैन भी मानते हैं और सनातनी भी मानते हैं और अन्य-अन्य लोग भी मानते हैं। यह ॐ इतना प्रसिद्ध और पूज्य मंत्र था कभी कि सभी इस एकके भक्त थे। इस ॐ से जो अर्थ निकलता है, जिस पदार्थका संकेत होता है उस पदार्थका ज्ञान रहा नहीं, किन्तु यह चित्तमें बना रहा कि ॐ महामंत्र है, इसके ध्यानसे सकल सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है, तो लोग इस ॐ के भक्त हो गए, और प्रायः सभी सिद्धान्त इस ॐ शब्दको बड़ी पूज्यदृष्टिसे देखते हैं। यह ॐ महान मंत्र है, ॐ महान पद है।

ॐ महामंत्रमें पञ्चपरमेष्ठियोंकी प्रतिष्ठा—इस ॐ शब्दमें और क्या-क्या गर्भित है? अरहंतके स्वरूपको बताया। अरहंतका स्वरूप महान पद तो है ही, जिस पदको प्राप्त करके जीव उत्कृष्ट शान्तिका अनुभव करता है। समस्त मलिनताएँ जहाँसे हट गयीं, किसी भी परकी ओर दृष्टि नहीं रही, किसी भी जीवको हितरूप नहीं माना, किसी भी जीव अथवा अजीवसे मेरा कल्याण होगा ऐसी ज्ञानीकी श्रद्धा नहीं रहती। ऐसा जानकर जिन महापुरुषोंने परद्रव्योंसे उपेक्षा की और अपने आत्मस्वरूपका ध्यान किया वे जीव इस अरहंत पदको प्राप्त करते हैं। तो अरहंत महापद है, सिद्ध परमेष्ठीका भी महापद है। जहाँ अष्ट कर्म नहीं हैं और केवल आत्मस्वरूप ही जहाँ प्रकाशमान है, ज्ञानानन्दका जो एक पुञ्ज है वह सिद्ध परमेष्ठी है। यह सिद्ध पद सर्वपदोंसे उत्कृष्ट और उच्च पद है। यह ॐ मंत्र आचार्य, उपाध्याय और मुनियोंका भी वाचक है। यह भी महान पद है। संसारकी वस्तुवोंसे उपेक्षा हो जाना, और अपने आपके ज्ञानस्वरूपके ज्ञानकी धुनि बन जाना यह जिस स्थितिमें होता है वह स्थिति महान पद है। मुनियोंके और काम क्या हैं? एक आत्मानुभवका ही काम उनके बना रहता है, दूसरी कोई बात नहीं, कोई संग नहीं, कोई परिग्रह नहीं, वस्तुमात्र भी नहीं जो इतना भी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विकल्प करना पड़े कि कैसी है वह वस्तु। अब पहिचाना है इतना तक भी विकल्प न उत्पन्न हो, इसके लिए एक निर्ग्रन्थ पद धारण किया जाता है। जहाँ समस्त सांसारिक वस्तुवोंसे उपेक्षा हो जाय और अपने आपके आत्मस्वरूपकी दृष्टि बन जाय तो वह महान पद है ही। तो आचार्य और उपाध्याय मुनिका भी महान पद है। उन सब पदोंका वाचक यह ॐ मंत्र है, इसलिए ॐ भी महान पद है, यह ॐ शरदकालीन चन्द्रमाकी तरह वर्णका धारक है। इस प्रकार ॐ मंत्रको कुंभक प्राणायामसे ध्यान करें। मंद चालसे पहिले श्वासको लिया गया था श्वास लेना, श्वास रोकना और श्वास बाहर फेंकना, ये तीन अवस्थाएँ होती हैं। तो कुंभक प्राणायामके द्वारा इस ॐ का चिन्तवन करें।

सान्द्रसिन्दूरवर्णाभं यदि वा विद्रुमप्रभम्।
चिन्त्यमानं जगत्सर्वं क्षोभयत्यभिसंगतम् ॥१६२८॥
जाम्बूनदनिभं स्तम्भे विद्वेषे कज्ज्वलत्विषम्।
ध्येयं वश्यादिके रक्तं चन्द्राभं कर्मशातने ॥१६२९॥

प्रयोजनवश ॐ महामंत्रकी विविध ध्यानविधि—यह प्रणव अक्षर यदि गहरे सिन्दूर के वर्णके समान चिन्तनमें लाया जाय अथवा लाल मूँगेके समान चिन्तवनमें लाया जाय तो यह जगतको क्षोभित करता है। इस ॐ शब्दको ही भिन्न-भिन्न रंगोंमें ध्यान करनेसे भिन्न-भिन्न फल होते हैं। कितना बड़ा यह आश्चर्य है। तो जब कोई सिन्दूर वर्णके समान लाल रंगका इस ॐ का चिन्तवन करता है तो यह जगतको क्षोभित करता है, खुदको भी क्षोभित करता है। इस प्रणवको स्वर्णके समान पीला चिन्तवन किया जाता है। किसी कार्यको थामना, किसी कार्यको निभाना ऐसे उद्देश्यमें ॐ को पीले रंगमें चिन्तवन किया जाता है और जब द्वेषका प्रयोग हो तो उसमें कज्जलके समान काला ठथा वश्यादि प्रयोगमें लाल रंगका चिन्तवन करे और कर्मोंके नाश करनेमें चन्द्रमाके समान श्वेत वर्ण चिन्तवन करे। इससे ज्ञानीका प्रयोजन कुछ नहीं रहता। पर मंत्रके ध्यानमें ऐसी-ऐसी विधियोंसे ध्यान करनेसे ऐसे-ऐसे कार्य सिद्ध होते हैं या कार्य बनता है उसका इसमें वर्णन किया जा रहा है। इसका कारण यह नहीं है कि कोई द्वेषका प्रयोग करे और काले रंगमें ॐ का चिन्तवन करने लगे। ऐसा करनेकी बात नहीं कही जा रही है किन्तु ऐसा माहात्य बसा हुआ है इस मंत्रके ध्यानमें कि इस इस रूप रंगका ध्यान किया जाय तो ऐसे-ऐसे विभिन्न फल प्राप्त होते हैं। इसका प्रतिपादन यहाँ किया जा रहा है तो जिस ॐ में भिन्न-भिन्न प्रकारके रूप रंगका ध्यान करनेसे विभिन्न फल प्राप्त होते हैं तो उस मंत्रराजका प्रभाव समझ लीजिए कि कितना अचिन्त्य प्रभाव है? यदि कोई उज्ज्वल ज्ञानज्योतिके रूपमें इस ॐ का चिन्तन करता है तो वह मोक्षमार्गमें निर्विघ्न बढ़ता हुआ मोक्षको प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार ॐ मंत्रका वर्णन किया जा रहा है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ॐ की मुद्रामें मोक्षमार्गका शिक्षण—एक बात, और ॐ की मुद्रामें देखो कि ॐ में अलग-अलग दो आकार हैं। पहिला आकार तो है अ की तरह, ३ की तरह, अनेक गुड़ेरी लग करके पहिला आकार बनता है, उसके बाद आकार है शून्यका। तो ये दो आकार किसके प्रतीक हैं ? ३ का आकार बहुतोंका प्रतिपादक है, नाना दृष्टि और आश्रयोंका प्रतिपादक है। ३ का हिस्सा व्यवहारनयका संकेत करता है, जैसे कि व्यवहारनयमें अनेक बातें होती हैं इसी प्रकार इस ॐ के भागोंमें भी ३ का भाग तो व्यवहारनयका समर्थन करता है और उसके आगेका भाग जो केवल शून्यके रूपमें है वह निश्चयका समर्थन करता है। जिस शून्यमें कहीं भी आदि अन्त नहीं है, गोल है तो वहाँ किसी जगह आदि है और किसी जगह अन्त है। तो यह गोल बिन्दु निश्चयका प्रतिपादक है। एक ओर रहा व्यवहार और सामने रहा निश्चय और बीचमें जो डंडा है वह इन व्यवहार और निश्चय दोनोंको अलग-अलग कर रहा है। कोई व्यवहारको ही माने, कोई मात्र निश्चयको ही माने तो इससे उसे सिद्धि न होगी। प्रमाण एक साधक है। तो व्यवहारनय, निश्चयनय और बीचमें आया प्रमाण। अब इसके ऊपर है गोल चन्द्रमाकी तरह। तो वह गोल चन्द्र अनुभूतिका द्योतक है। अनुभवका कोई आकार अगर बनाना चाहे कुछ सोच समझकर तो वह दोजके चन्द्रकी तरह एक कला बनेगी, यह अनुभूतिका प्रतीक है और उस कलाके ऊपर जो शून्य रखा हुआ है वह सिद्ध भगवानका प्रतीक है। जैसे इसमें ये आदि मध्य और अंत नहीं है इसी प्रकार सिद्धके ज्ञानमें भी आदि मध्य और अंत नहीं है। यहाँ ॐ के पहिचाननेकी विधि बता रहे हैं कि भाई व्यवहारनयका आलम्बन लो, फिर निश्चयनयका आलम्बन लो, फिर एक अनुभूति उत्पन्न होगी, उस अनुभव के बीच यह परमतत्त्व जो ध्यानमें है उसकी सिद्धि होती है। इस तरह ॐ की मुद्रामें उपदेश भी भरा हुआ है। इस ॐ की मुद्रामें समस्त श्रुत द्वादशांगकी वाणी भी भरी पड़ी हुई है, क्योंकि सभी शब्द इस ॐ शब्दसे उत्पन्न होते हैं, इसकी मुद्रासे निकले हुए और सभी अक्षरों का यह प्रतिनिधि है। इस प्रकार इस ॐ शब्दको योगी पुरुष इस आत्महितके अभिप्रायसे श्वेत वर्णमें कान्तिमय स्वरूपमें इसका ध्यान करते हैं। यह ॐ शब्द मोक्षका सौख्य है, यों प्रणव मंत्रका आदर करें और जैसे णमोकार मंत्रका जाप करते हैं या ॐ मंत्रका जाप करते हैं इस प्रकार केवल ॐ ॐ शब्दका भी जाप चलता है और वह जाप पंचपरमेष्ठियोंके स्वरूप को ध्यानमें लगाता हुआ चला करता है। इस ॐ शब्दमें आत्माके स्वरूपका संकेत होता है यह सर्वके द्वारा पूजनीय है। इस प्रकार यह प्रणव मंत्र सर्व मंत्रोंमें प्रधान है, सर्व मंत्रोंमें पूज्य है। इसका ध्यान करके विषयकषायोंसे दूर हों और अपने आपमें सनातन बसे हुए इस ज्ञायकस्वरूपका अनुभव करें।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

गुरुपञ्चनमस्कारलक्षणं मन्त्रमूर्जितम् ।
विचिन्तयेज्जगज्जन्तुपवित्रीकरणक्षमम् ।।१९३०।।

पञ्चगुरुनमस्कारमंत्रके विचिन्तनका आदेश—अब तक दो मंत्रोंका ध्यान करना बताया है—एक अनाहत मंत्र जिसकी मुद्रा है ह्रँ, और दूसरा प्रणवमंत्र जिसकी मुद्रा है ॐ। इन दो अक्षरों वाले मंत्रका ध्यान उनके महत्त्वको उनके विषयको बताते हुए कहा है। अब इसके पश्चात् पंचपरमेष्ठियोंके नमस्कार मंत्रका ध्यान करना बताते हैं। पंचगुरुवोंका नमस्कार जिसमें आ गया है ऐसा यह महामंत्र जगतके जंतुवोंके पवित्र करनेमें समर्थ है, इस प्रकार ध्यान करें। यह जीव विषयकषायोंसे पतित है और दुःखी है। जब इसके उपयोगमें किसी परवस्तुके प्रति प्रेम जगता है तो उसे वही वस्तु सर्वस्व मालूम होती है, यही हितरूप है ऐसा प्रतीत होता है। यह जीवपर कितनी बड़ी विपदा छायी है कि जो भिन्न वस्तु हैं, अहित रूप हैं, जिनका संसर्ग इस जीवको अनेक कर्मोंके बंध करानेका कारण है, वह असार चीज इसे बहुत प्रिय लगी, यह कितना बड़ा भारी उत्पात है इस जीवपर ? कहाँ तो इसका पवित्र ज्ञान और आनन्दमय स्वरूप है और कहाँ आत्मा अज्ञान रागद्वेष लगे चले जा रहे हैं, ऐसी स्थिति वाले ऐसे इस दयनीय जीवको रक्षा करनेमें समर्थ है तो पंचगुरुका स्मरण समर्थ है, इसी कारण पंचगुरुके नमस्कार मंत्रका बड़ा महत्त्व बताया है। कठिनसे कठिन विपदाएँ भी हों तो इस णमोकार मंत्र का श्रद्धापूर्वक ध्यान करनेके प्रतापसे उन विपदाओंमें शिथिलता आ जाती है। जगतमें किसकी शरण गहें कि जीवको सच्चा रास्ता मिले और शान्ति मिले ? पंचगुरुके सिवाय अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और मुनि, इनके सिवाय कोई जीव ऐसा नहीं है कि जिसकी शरण गहें तो शान्ति प्राप्त हो सके। जिसे अपनी खुद सुधि नहीं है, शरीरको ही यह मैं आत्मा हूं ऐसा माना करते हैं। ऐसे स्त्री पुत्र कुटुम्ब मित्र जनोंसे प्रीति रखने में क्या हित है ? वे स्वयं अरक्षित हैं, वे स्वयं कर्मोंके प्रेरे हैं, आज मनुष्य-भवमें आये, आगे कहाँ जायेंगे, वे स्वयं कर्मोंके सताये हुए हैं, उनकी शरण गहनेमें इसे लाभ कुछ न मिलेगा।

पञ्चगुरुकी पतितपावनता व शरण्यता—पंच परमेष्ठियोंके स्वरूपकी ओर देखिये, साधु पुरुष अपने ज्ञानस्वभावके ध्यान करने की धुनिमें रहा करते हैं और इसी कारण पर-वस्तुवोंसे उनका वैराग्य बना रहता है, ऐसे पवित्र आत्माके निकट बैठनेसे, उनकी सेवा करनेसे, उनके गुणोंका परिचय करनेसे आत्मामें शान्ति प्राप्त होती है। साधुवोंसे ऊपर है पद अर-हंतका। अरहंत भी गुरु कहलाते है। जो शिक्षा दें सो गुरु हैं, और इस प्रसंगमें तो साधुको भी गुरु कहा है जिसके स्मरणसे हमें सत्पथ मिलता है। वे साधु भी हमारे परम गुरु हैं, अथवा गुरुके मायने है बड़ा। मेरे हितके लिए साधकतम ये पंचपरमेष्ठी हैं। अरहंतदेव

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सशरीर परमात्मा हैं, उनका परमौदारिक शरीर है। वह शरीर सहित होकर भी सर्वज्ञ वीतराग हैं, जिनके चरणोंमें जिनकी वैराग्यतासे आकर्षित होकर स्वर्गके देव अपने स्थानको खाली करके यहाँ आते हैं। उनका जो असली देह है वह नहीं आता है, देवोंका वैक्रियक शरीर यहाँ आता है। तो शरणभूत हैं पंचगुरु, और उनका ध्यान करने वाले पवित्र हो जाते हैं। विषय कषायोंसे रहित केवलज्ञानकी धुनि रखने वाले ये आत्मा हैं ऐसी उनकी ओर दृष्टि जाय तो अपने आपमें भी पवित्रता बढ़ती है। तो यों पंचगुरु जगतके जीवोंको पवित्र करनेमें समर्थ हैं, तो उनका वाचक जो णमोकार मंत्र है इस मंत्रका भी यदि श्रद्धापूर्वक ध्यान किया जाय तो यह पवित्र करनेमें समर्थ है। ऐसे इस पंचगुरु नमस्कार मंत्रका ध्यान करे।

स्फुरद्विमलचन्द्राभे रत्नाष्टकविभूषिते।
कञ्जे तत्कर्णिकासीनं मन्त्रं सप्ताक्षरं स्मरेत् ॥१९३१॥
दिग्दलेषु ततोऽन्येषु विदिक्पत्रेष्वनुक्रमात्।
सिद्धादिकं चतुष्कं च दृष्टिबोधादिकं तथा ॥१९३२॥

णमोकार मंत्रके ध्यानके विधानमें अरहंतका ध्यान—एकाग्रताके लिए णमोकार मंत्रका ध्यान करनेकी पद्धति यह है कि अपने हृदय-कमलमें ८ पांखुड़ीका कमल चिंतवन किया जाय और उसके बीच कर्णिका है, तब ये ९ स्थान हो गए। उस कमलको एक देदीप्यमान, कान्तिमान स्वरूपमें चिन्तवन करें, मुर्झाया हुआ नहीं, और उस कर्णिकापर णमो अरहंताणं इस मंत्रकी स्थापना करें, यह सप्ताक्षरी मंत्र है, इसमें ७ अक्षर हैं। देखिये—णमो अरहंताणंमें जो वाच्य होता है अरहंत, उनके स्वरूपका यदि यथार्थ परिचय करें तो ऐसा लगेगा कि सभी परमतत्त्व अरहंतसे लगे हुए हैं। न अरहंत होते तो सिद्धकी बात कैसे मालूम होती? जितना उपदेश है सारा उपदेश अरहंतकी मूल परम्परासे चला आया है। तो सिद्धाणं का महत्त्व हमें अरहंतसे होता है। अरहंत सशरीर परमात्मा हैं, आजके समयमें तो नहीं, पर उन अरहंतदेवका दर्शन यहाँपर भी हो सकता है। उनका शरीर परमौदारिक है। विदेह क्षेत्र में तो अरहंत सदा रहते हैं। तो कितना बड़ा सौभाग्य है कि साक्षात् अरहंतके दर्शन हों, भगवंतके दर्शन हों। जिनको श्रद्धा है उनका चित्त कहता है कि अरहंतका दर्शन करके मैंने सब कुछ पा लिया। अब क्या पानेको रहा, इसके आगे अन्य कोई भी सारभूत चीज है। तो उस हृदय-कमलके बीचमें कर्णिकामें णमो अरहंताणंका चिन्तवन करें। णमो अरहंताणं शब्द भी है और णमो अरिहंताणं शब्द भी है और अलग-अलग विषयमें इनका महत्त्व भी अलग-अलग है। अरहंताणंका अर्थ है पूज्य, योग्य और अरिहंताणंका अर्थ है—कर्म शत्रुवोंका हनन करने वाला। जो किसी प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष बैरीके द्वारा सताया हुआ हो और वह इस सप्ताक्षरी मंत्रका उच्चारण करे तो उससे उच्चारण होगा णमो अरिहंताणं। इन्होंने घातिया कर्म

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रूपी अरिको नष्ट किया और यह ध्यानी सताने वाले इस अरिसे हटना चाहता है और जब कोई मुक्तिका अभिलाषी अपनेको साताख्प शान्तरूप बनाये रखनेके लिये जब सप्ताक्षरी मंत्रका उच्चारण करता है तो उसका उच्चारण होता है णमो अरहंताणं । तो उस कर्णिकाके बीचमें णमो अरहंताणं मंत्रकी स्थापना करें ।

कर्णिकाके बाहर आठ पत्रोंका अष्ट मंत्र—कर्णिकासे बाहर जो ८ पत्र हैं, वे ८ पत्र ८ दिशावोंमें फैले हैं ऐसा ध्यानमें लायें । ४ दिशायें और ४ विदिशायें । तो चार दिशावोंमें जो ४ पत्र हैं उनपर णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोयेसव्वसाहूणं इस मंत्रका स्थापन करें । इसके बाद बीचोंबीचमें एक-एक पत्र जो अभी रीते हैं इनपर क्रम से—सम्यग्दर्शनाय नमः, सम्यग्ज्ञानाय नमः, सम्यक्चारित्राय नमः और सम्यक्तपः नमः, इन चारका ध्यान करें । चार दिशावोंमें जो मंत्र हैं वे तो साधक और सिद्ध हैं । किसकी साधना करना है और किसकी साधना करके वे सिद्ध हुए हैं । ये चार मंत्र दिये गए हैं बीच-बीचमें । जो भव्य जीव आत्मा और अनात्मतत्त्वका यथार्थ दर्शन करते हैं, विश्वास रखते हैं, परद्रव्यों से भिन्न निज आत्माकी प्रतीति रखते हैं उनका यह सम्यग्दर्शन रूप परिणमन उनकी शान्ति की वृद्धिमें कारण है । कोई पुरुष किसी वैभव आदिकमें विघ्न आनेपर उस विघ्नकर्तापर तीव्र रोष लाता है और कोई उस विघ्नकर्तापर रोष नहीं लाता, उपेक्षा कर जाता, ज्ञाता हो जाता, ऐसा होना था सो हो गया, इसमें मेरा क्या बिगाड़ ? तो ये दो तरहके पुरुष हैं जिनमें एकको तो ममता है, मूर्छा है बाह्य वस्तुसे, अतएव उसका जो विघ्न करता है उसे शत्रु दिखता है, वह अनिष्ट लगता है और जो यथार्थ ज्ञानी है, जिसने यह निर्णय किया है कि यह वैभव समस्त पर है, यह किसी भी हालतमें रहे, रहे, इससे मेरा कोई सुधार बिगाड़ नहीं है । तो ऐसे परद्रव्योंके प्रति जो उपेक्षाभाव रखते हैं वे धीर रहते हैं, शान्त रहते हैं । जिन्होंने आत्मा के सम्यक् स्वरूपको अपने उपयोगमें लिया है वे यह हूं मैं आत्मा, यही जो ज्ञानमात्र है, विलक्षण है, सबसे निराला है, सर्वोत्कृष्ट है, ऐसा यह ज्ञानस्वरूप आत्मा 'यह मैं हूं' इस प्रकार आत्मस्वरूपमें ही आत्मीयताकी प्रतीति लेकर जो इस निज तत्त्वका ध्यान करते हैं वे पुरुष इस शान्ति पथके पथिक हैं । जो अपने इस विशुद्ध उपयोगको चिरकाल तक बनाये रखनेके लिए उद्यम करते हैं, अपने आपमें अपनेको लीन करते हैं उनका यह परिणमन है सम्यक्चारित्र, और अन्तरङ्गमें चैतन्यस्वरूपकी दृष्टि बनाकर अपने चैतन्यभावमें स्थापना और व्यवहारमें जो आत्मसाधनाके साधक हैं ऐसे तपश्चरणसे तपना यह है सम्यक् तप । ऐसे तपमें जो प्रवृत्ति रखते हैं वे ज्ञानी संत पवित्र हैं । तो इस प्रकार हृदय-कमलमें इस नमस्कार मंत्रका विस्तार बनायें । इसमें ६ पर्यायें हैं णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, सम्यग्दर्शनाय नमः, णमो आइरियाणं, सम्यग्ज्ञानाय नमः, णमो उवज्झायाणं, सम्यक्चारित्राय नमः, णमो लोयेसव्वसाहूणं,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

सम्यक्तपसे नमः। इस प्रकार ६ मंत्र स्थापित हैं। यहाँ किस अर्थको बताना है— उस अर्थकी धुनसे यह अब योगी अपने आपको पवित्र उन्नत और वीतराग बनाता है जिसके प्रतापसे सर्वज्ञता प्रगट होती है।

श्रियमात्यन्तिकीं प्राप्ता योगिनो येऽत्र केचन।
अमुमेव महामन्त्रं ते समाराध्य केवलम् ॥१६३३॥

णमोकार महामंत्रके ध्यानका फल आत्यन्तिकी श्री का लाभ—इस लोकमें जितने योगियोंने मोक्ष लक्ष्मीको प्राप्त किया है उन सबने एक इस महामंत्रकी आराधना करके ही प्राप्त किया। सभी इस णमोकार मंत्रके आराधक हैं, एक तो कुछ विस्तारपूर्वक है सो मुद्रामें भी महान है और फिर इस मंत्रका जापकर पंचपरमेष्ठियोंके विशुद्ध स्वरूपमें ध्यान करनेका इसमें अवकाश मिलता है, और मंत्र तो बीजाक्षर है। जैसे ॐ ॐ ॐ जप रहे हैं, जो जानकार हैं वे भले ही समझ तो रहे हैं कि ॐ में पंचपरमेष्ठी गर्भित हैं, पर ॐ बोलनेके साथ पंचपरमेष्ठियोंका स्वरूप विशद्‌ रूपसे ध्यानमें आ जाय तो यह वहाँ ज्ञान होता है और णमोकार मंत्र के स्मरणमें चूँकि एक-एक पद स्पष्ट रूपसे ध्याया जा रहा है तो जितनी देरमें यह एक पद बोला उतनी देरमें उस पद वाले पवित्र आत्माका चित्रण अपने उपयोगमें बराबर मिल सकता है। जब णमो आइरियाणं बोला तो आकाशमें समवशरणके बीच विराजमान, चतुर्मुख रूपसे विराजमान, जिसके चारों ओर देव देवांगनाएँ नृत्यगान करते हुए भागतेसे आ रहे हैं, जिस समवशरणमें मनुष्योंका समूह और पशुपक्षियोंका भी समूह पहुंच रहा है ऐसा समवशरण, उसके बीच विराजमान अरहंतदेव यह सब एक निमित्त मात्रमें सारा चित्रण हो सकता है। णमो आइरियाणं इतना स्मरण किया कि वह सब समवशरण विभूति सहित मध्यमें विराजमान अरहंतदेवका चित्रण हो जाता है। णमो सिद्धाणं बोला तो उतनेमें ही जितना समय इस मंत्रमें लगा यह पंचाक्षरी मंत्र है। उतनी देरमें लोकाकाशके अन्तमें तनुवातवलयमें अनन्तानन्त सिद्ध विराजे हैं ऐसा सर्व सिद्धिका चित्रण अपने उपयोगमें लिया जा सकता है, तो इस प्रकार यह णमो सिद्धाणं बोलनेमें सिद्धका स्वरूप शरीररहित केवल ज्ञानपुञ्ज निर्विकार—जो स्वरूप है वह ध्यानमें लिया जा सकता है। इसी प्रकार जब णमो आइरियाणं बोलें तो आचार्य देव कोई कहीं विराजमान हैं, उनके समीप कुछ मुनिजन बैठे हैं, उनको दीक्षा प्रायश्चित्त आदिकका भी आदेश किया जा रहा है, ऐसी घटनाका चित्रण णमो आइरियाणं शब्द बोलकर तुरन्त किया जा सकता है। जब णमो उवज्झायाणं कहा तो ११ अंग १४ पूर्वके पाठी अथवा कुछ कम भी पाठी, किन्तु आचार्यके द्वारा जिन्हें उपाध्याय पद दिया है उन उपाध्यायोंका चित्रण तुरन्त हो सकता है। किसी जगह एक उपाध्याय विराजे हैं और सर्व साधुवों को पढ़ा रहे हैं, उनको मर्मकी बात बता रहे हैं, ऐसा चित्रण णमो आइरियाणं शब्द बोलते

http://sahjanandvarnishastra.org/

ही किया जा सकता है, और णमो लोएसव्वसाहूणं इतना यह दीर्घ मंत्र जिन क्षणोंमें बोला जाता है उन क्षणोंमें अनेक जगहोंके तपस्वी साधुवोंका चिंतन किया जा सकता है। कोई नदी के तीरपर शीतकालमें विराजा है और आत्मध्यानमें यत्न कर रहा है। कोई ग्रीष्मकालमें पर्वतकी शिखरपर विराजा है, कोई गुफामें बैठा है, कोई कितने ही दिन और महीनोंका उपवास किए हुए है। कुछ मुनि जन लम्बे उपवासके बाद चर्याको भी निकले तो उस समय उन्हें भोजन आदिकका अलाभ हो जाय, न मिले भोजन, तिसपर भी बड़ी समता रखे हुए अपने आवश्यक कार्यमें सावधान रह रहे हैं आदिक अनेक प्रकारके मुनियोंका चित्रण णमो लोएसव्वसाहूणं पद बोलनेके बीचमें किया जा सकता है। इसी कारण इस मंत्रको महामंत्र कहते हैं, जिसका विषय महान है, जिसकी विधि महान है, जिसकी मुद्रा महान है ऐसे णमोकार मंत्रका योगी पुरुष ध्यान करते हैं।

प्रभावमस्य निःशेषं योगिनामप्यगोचरम्।
अनभिज्ञो जनो ब्रूते यः स मन्येऽनिलार्दितः ॥१९३४॥

णमोकार महामंत्रके ध्यानका अतुल प्रभाव—इस महामंत्रका पूर्ण प्रभाव योगी मुनीश्वरोंके भी अगोचर है। परमेष्ठियोंके स्वरूपके विचार सहित जिस कालमें यह मंत्र बोला जाता है तो आल्हाद आनन्दके कारण इसके अन्दर एक अद्भुत प्रसन्नता जगती है और वह प्रसन्नता रोमांचकारीके रूपमें बाहर प्रगट होती है। स्वरूपका चिन्तन हो साथमें तो इस मंत्र के चिन्तवनका प्रभाव बहुत अधिक बढ़ जाता है, और इन अक्षरोंमें ऐसी ही पूज्यता है कि न भी हो किसीको विशेष स्वरूप परिचय, पर श्रद्धा जबरदस्त हो तो इन मंत्राक्षरोंके ध्यानसे ही बहुतसे संकट दूर हो जाते हैं। अंजन चोरने एकदम ही तो कोई उपाय न जानकर कि हम बच न सकेंगे तो एक इस ही आराधनामें लग गया। १०८ डोरीके झूलेपर बैठा हुआ था, नीचे तलवार आदिक हथियार छेदन भेदनके लिए खड़े कर दिए गए थे, उस स्थितिमें उस अंजन चोरको लरी काटनेकी हिम्मत न आयी। उसने यह भी समझ लिया कि हम अब किसी भी स्थितिमें बच नहीं सकते, आगे पीछे पुलिस है, पकड़ लेगी, नीचे गिरे तो शस्त्रोंसे भिद जायेंगे। सो तुरन्त ही वहाँ ध्यान करने बैठ गया। उच्चारण भी सही-सही न आता था—बस ताणं ताणं ताणं, सेठ बचन परमाणं, ऐसा जाप वह जपने लगा। तो श्रद्धा उसकी दृढ़ थी, उस श्रद्धामें उसका दिल मजबूत था तो उस समय वह लरीको काटता गया और उसको आकाशगामी विद्या सिद्ध हो गयी। आकाशमें ही अधर बना रहा, शस्त्रोंपर नहीं गिरा। फिर उसने चैत्यालयोंकी वंदना की, भाव और बढ़े, निर्ग्रन्थ मुनि बना, पार हो गया। अधिकसे अधिक पाप करने वाले पुरुष भी करते क्या हैं आखिर? एक भावोंमें विकार ही तो किया, और क्या किया, वही पाप है, और जिस कालमें भाव विशुद्ध हो जाय, आत्माका सहज ज्ञान-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

स्वरूप उपयोगमें आ जाय तो पर्याय तो एक समयमें एक रहेगी। जिस समय इस ज्ञानीके उपयोगमें विशुद्ध ज्ञानतत्त्व समाया है उस समय पापकी बात एक भी नहीं है तो सारे पाप खतम हो गए या नहीं ? विशुद्ध भावोंमें यह सामर्थ्य है कि समस्त पापोंको कुछ ही क्षणोंमें ध्वस्त कर देता है। अब कितने ही पाप किए अञ्जन चोरने, जो सभी व्यसनोंमें लगा हुआ था ऐसा महाव्यसनी विकारों वाला अब इस समय निर्विकार स्वरूपका ध्यान कर रहा है। तो इस परमतत्त्वके ध्यानसे आत्मा निष्पाप होता है, और णमोकार मंत्रमें उस ही परमतत्त्वकी छाया है, कहीं अल्पविकास है, कहीं पूर्ण। तो इन परमेष्ठियोंके नमस्कार मंत्रसे सर्व प्रकारके संकट दूर होते हैं। ऐसा इसका प्रभाव योग भी पूर्ण रूपमें बता नहीं सकते, और फिर जो इसके न जानने वाले हैं वे कहें कि मैं इसका प्रभाव बतानेमें समर्थ हूं, तो आचार्यदेव कहते हैं कि मैं तो ऐसा समझता हूं कि उसको वायुरोग तीव्र है इसलिए वह बकवाद करता है।

अनेनैव विशुद्धयन्ति जन्तवः पापपङ्किताः।
अनेनैव विमुच्यन्ते भवक्लेशान्मनीषिणः ॥१९३५॥

णमोकार महामंत्रके प्रभावसे प्राणियोंका विशोधन—पंच नमस्कार मंत्रकी चर्चा चल रही है कि यह पंच नमस्कार मंत्र अथवा णमोकार मंत्र गुरु पंच नमस्कार मंत्र है। इस मंत्र के द्वारा ही ऐसे जीव विशुद्ध हो जाते हैं जो पापसे मलिन हैं जिसके चित्तमें विषय वासना क्रोधादिक कषायें जगती हैं और इन विषयकषायोंके परिणामोंसे जो मलिन हुए हैं ऐसे जीवों को भी इस मंत्रका ध्यान विशुद्ध कर देता है। क्योंकि इस मंत्रमें ज्ञान और वैराग्यकी मूर्तिका स्मरण किया गया है। साधु हैं सो वे ज्ञान और वैराग्यकी मूर्ति हैं। साधु नाम किसका ? केवल शरीरका भेष देखकर साधुता नहीं जानी जाती, किन्तु यह आत्मा कैसा विशुद्ध ज्ञान-स्वरूपकी धुनि वाला है और परद्रव्योंसे इसकी ममता हट चुकी है, उपेक्षा भाव आ गया है, सो वे ज्ञान और वैराग्यकी मूर्ति हैं। आत्माका नाम साधु है, और अरहंतदेव तो ज्ञान और वैराग्यकी प्रगट मूर्ति हैं, परिपूर्ण ज्ञान और परिपूर्ण वीतरागता अरहंत देवके है सो वे भी ज्ञान और वैराग्यकी मूर्ति कहलाते हैं, सिद्ध भगवान शरीररहित हैं, केवल आत्मा ही आत्मा रह गया है, वह ज्ञान वैराग्यकी परममूर्ति हैं, पंच नमस्कार मंत्रमें ज्ञान और वैराग्यको नमस्कार किया गया है। जब कभी ज्ञान भाव हृदयमें आता है, वैराग्यभाव उपयोगमें समाता है तो उस समय विषय और कषायोंके भाव दूर हो जाते हैं। यही विशुद्धि है। णमोकार मंत्रसे विशुद्धि कैसी जगती है, बुराइयां कैसे दूर होती हैं उसको एक शब्दमें यहाँ बताया है कि नमस्कार मंत्रमें जिसे नमस्कार किया गया है वह है ज्ञान और वैराग्यकी मूर्ति। तो ज्ञानमात्र और वीतराग आत्माके गुणोंका जब स्मरण होता है, ज्ञानका और वैराग्यका जब स्मरण होता है तो उस कालमें उनकी विशुद्ध परिणति है और उनके विषयकषायोंके आक्रमण विफल हो

जाते हैं। इस तरह यह णमोकार मंत्र पापोंसे लाञ्छित जीवोंको भी विशुद्धता उत्पन्न करता है।

णमोकार महामंत्रके प्रतापसे प्राणियोंका भवक्लेशसे छुटकारा—इस ही मंत्रके प्रताप से बुद्धिमान जीव संसारके क्लेशोंसे छूटते हैं। जैसे कि सर्व ओरसे पता है कि इस जगतमें अन्य कुछ भी शरण नहीं है। जिसकी शरण जावो वहींसे लात लगती है, मायने धोखा मिलता है। परिवार जनोंके बीचमें मोह करके बसो तो वहाँ भी सारे जीवनभर दुःख ही दुःख भोगना पड़ता है। अन्तमें वे कोई साथी नहीं होते। जिनके पीछे अनेक पाप किए, जिनके पालन पोषणके लिए, जिनको खुश रखनेके लिए जीवन भर अथक परिश्रम किया वे मरनेपर कोई साथ नहीं जाते। वह मरकर नरकमें जाता है, और इसे ज्ञान हो जाय जैसे नरकोंमें ज्ञान हो जाता है, अवधिज्ञान हो जाय तो वह विचार कर लेता है कि अहो! जिनके लिए मैंने इतने पापकर्म किए वे सब कोई यहाँ नहीं आये। वस्तुतः मनुष्य दूसरेके लिए पाप नहीं करता, यह खुदके लिए पाप करता है। यह तो एक कहने भरकी बात है कि हम आजीविका करते हैं, कमाई करते हैं तो हम दूसरोंके लिए पाप करते हैं। हमारा इसमें क्या खर्च? हमें तो सिर्फ दो रोटी चाहिएँ और तन ढाकनेके लिए दो कपड़े चाहिएँ और तो हमारा कुछ भी खर्च नहीं है, हमने तो जो भी पाप किए वे परिवार जनोंके लिए किये। तो यह कहना उसका ठीक नहीं। अरे उसने तो अपनी शांतिका उपाय मोह करनेको समझा था, मोह करके जो भी पाप कमाये उनका फल खुदको ही भोगना पड़ेगा। ऐसे पापपंकसे पंकित जीव भी इस मंत्रके ध्यानसे विशुद्ध हो जाते हैं और संसारके संकटोंसे मुक्ति पा लेते हैं।

(पदस्थध्यान वर्णन प्रकरण ३८)

असावेव जगत्यस्मिन् भव्यव्यसनबान्धवः।
अमुं विहाय सत्त्वानां नान्यः कश्चित्कृपापरः ॥१९३६॥

महामंत्रकी भव्यव्यसनबान्धवता—भव्य जीवोंको आपत्तिके समय यही मंत्र इस लोक में मित्र है। सभीकी प्रायः यह प्रकृति है कि जब कभी कोई आपत्ति आती है तो वह परमात्माका स्मरण करता है, राम राम, अरहंत सिद्ध कहते हैं अथवा णमोकार मंत्र पढ़ते हैं, तो उस समय इस मंत्रके स्मरणसे ज्ञान और वैराग्यके कारण चूँकि उनका उपयोग टला है इस कारण उन्हें शान्ति प्राप्त होती है। इससे पुण्यरस बढ़ता है और पापरस घटता है। नवीन पुण्य बँधता है और पुराने पाप नष्ट होते हैं। तो आपत्तिके समय यही मंत्र बंधुत्वका काम करता है। यही मंत्र है, इसके अतिरिक्त अन्य भावोंमें यह सामर्थ्य नहीं है। जो भी दुःखी हैं वे अपने भावोंसे दुःखी हैं। उन दुःखोंको दूर करनेके लिए ऐसे अच्छे भाव बनाना है कि जिससे वे दुःख मिट जायें। खोटे भावोंकी जगह शुद्ध भाव लायें, मोह भरे ज्ञानकी जगह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

निर्मलताका ज्ञान लायें तो वे सारी आपत्तियां शान्त हो सकती हैं। सबका रक्षक एक यह महामंत्र है। योगीजन भी सर्व कुछ वैभव छोड़कर जंगलमें रहकर इस ही मंत्रका ध्यान करते रहते हैं और इस मंत्रमें जिनका स्वरूप बताया गया है उस स्वरूपका ही ध्यान करते हैं। वह स्वरूप अपने ही स्वरूपके समान है। सो उस स्वरूपके गुणस्मरणके द्वारा अपने आपके स्वरूप तक पहुंचते हैं। यही काम करने योग्य भी है। गृहस्थ लोग तो अन्य पचासों प्रकारके काम करते हैं पर एक इस कामसे दूर रहते हैं। इतना जीवन गुजर गया, आप ही विचार कर लीजिए कि क्या कभी इस करने योग्य कार्य की ओर भी ध्यान दिया है ? अब अमुक काम करना है, अब अमुक काम करना है यही बात चित्तमें बसाये रहे। अनेक काम कर डाले इस जीवनमें, पर एक इस करने योग्य कार्यको नहीं किया। ज्ञानी ध्यानी योगी जनोंका तो केवल एक यही कार्य करनेको रह गया है सो उनका लक्ष्य उसी कार्यका रहता है, वह कार्य है आत्मानुभवका कार्य। यही कार्य वे योगी जन किया करते हैं। यह मैं ज्ञानमात्र आत्मा हूं ऐसा दृष्टिमें लेकर उस आत्माको अपने उपयोगमें चिरकाल तक बनाये रहना, यही काम केवल है उनके सामने। यह आत्मानुभवका काम कोई तो साक्षात् कर लेते हैं। दृष्टि दी अपने में अपना स्वरूप निरखा और सब कुछ प्रत्यक्ष जानते रहते हैं। कभी पंचनमस्कार मंत्रमें पंचपरमेष्ठियोंके स्वरूपका स्मरण किया और उस गुणस्मरणके माध्यमसे अपने आपके स्वरूप को दृष्टिमें लेते रहते हैं, यों केवल एक ही काम साधुवोंको करनेको पड़ा हुआ है—आत्मानुभव करना। तो यह कोई काम नहीं पड़ा, एक ऐसी परिणति बनाये रहने की बात उनके पड़ी रहती है। तो यह महामंत्र सब जीवोंका रक्षक है, सर्वप्रकारकी आपत्तियोंमें यह मंत्र रक्षक है। साधुवोंको तो एक विशुद्ध आत्मानुभव बनाये रहनेकी ही धुनि रहती है। केवल आत्मीय सहज आनन्द बना रहे यही उनकी धुनि रहती है। मेरे आत्मीय सहज आनन्द बना रहे उनकी केवल यही वाञ्छा रहती है। उनकी इस वाञ्छाकी पूर्ति होती है इस मंत्रके ध्यानसे। तो इस मंत्रके ध्यानसे जो जिस बातको चाहता है उसको उस ही बातकी सिद्धि होती है।

एतद्व्यसनपाताले भ्रमत्संसारसागरे।
अनेनैव जगत्सर्वमुद्धृत्य विधृतं शिवे ॥१९३७॥

महामंत्रकी उद्धारकता—इस ही मंत्रके प्रतापसे यह जीव, जो कि व्यसनोंके बनमें घूम रहा था, दुःख भोग रहा था, जो कि संसारसागरमें डूब रहा था उस जीवको वहाँके दुःखसे निकाल करके मोक्षमें धारण कराता है यही मंत्र। इस मंत्रके ही प्रतापसे लोग आपत्तियोंसे छूटकर शिवसुखमें पहुंच जाया करते हैं। जरा इतने बड़े समस्वरसे विशुद्ध परिणाम सहित और पंचपरमेष्ठियोंके स्वरूप स्मरण सहित णमोकारमंत्रका कोई ध्यान करे या सम

स्वरसे उच्चारण करे तो उस उच्चारणके समय ही बड़े-बड़े पाप व्यसन दूर हो जाते हैं और अन्तरङ्गमें विशुद्धज्ञानकी जागृति होने लगती है, तो यह महामंत्र जीवको संसारसे उद्धार करके मोक्ष सुखमें पहुंचा देता है, इससे बढ़कर और कोई लाभकी बात नहीं है। सदाके लिए संसारके संकट छूट जायें, यह जन्म मरणका चक्र मिट जाय तो इससे भी बढ़कर कुछ और सारभूत बात हो सकती है क्या ? जिसको लोग बड़ा भला समझते हैं, समारोह मनाते हैं, बच्चा पैदा हो तो लोग बड़ी खुशी मनाते हैं पर यह नहीं जानते कि पैदा होना तो इस जीव के लिए कलंक है। जो भी जीव पैदा हो वह कर्मोंको बाँधता है और संसारमें रुलता है तो यह तो उस जीवके लिए एक कलंककी बात है। जरा इस बातका भी तो स्मरण करो कि यदि यह मैं आत्मा केवल आत्मा ही आत्मा होता, शरीरसे बँधा हुआ न होता, रागादिक विभाव मेरे साथ न होते, अन्य किसी भी प्रकारका सम्बन्ध न होता तो फिर किसी भी प्रकार का कोई कष्ट न था, आनन्द ही आनन्द था। सम्यग्ज्ञानके जगने पर उस आनन्दकी बाट जोहता रहता है ज्ञानी, इस कारण वह प्रसन्न रहा करता है, दुःख नहीं मानता है। कुछ भी हो जाय बाहरमें, धनका घाटा अथवा किसी इष्टका वियोग व अनिष्टका संयोग, तो इन सभी स्थितियोंमें वह ज्ञानी पुरुष उसका मात्र ज्ञाताद्रष्टा रहता है, यह जानता है कि ये सर्व चीजें मेरी नहीं हैं, मेरे स्वरूपसे बिल्कुल पृथक् बातें हैं। इनसे मेरे आत्माका कुछ भी नाता नहीं है। यह तो संसार है, जो था, सो है और सो ही रहेगा। इस संसारका सही स्वरूप अपने ज्ञानमें आ जाय, ज्ञानप्रकाश जग जाय, अपने आपके स्वरूपकी संभाल करले तो अपना उद्धार हो जायगा। तो इस मंत्रके प्रतापसे जीव दुःखोंके आतापसे निकलकर संसारसागरमें जो यह डूब रहा था उससे निकलकर मोक्षमें पहुंच जाता है, यह इस मंत्रका प्रताप है। मंत्र जपा, स्वरूप का स्मरण किया, ज्ञान और वैराग्यका भाव अपने चित्तमें समाया, सर्व पदार्थोंसे उपेक्षा हुई, अपने आपको ज्ञानमात्र अनुभव किया, केवल ज्ञानमात्र मैं हूं यही अनुभव मेरे चिर काल तक रहे तो इसके प्रतापसे यह आत्मा केवल रह जाता है, ज्ञानमात्र रह जाता है। तो इस महान संसारके संकटोंसे सदा मुक्त हो जानेकी बात इस णमोकार मंत्रसे हुई। तो णमो-कार मंत्रके प्रतापसे बड़े-बड़े व्यसन और संसारके संकट नष्ट हो जाते हैं।

कृत्वा पापसहस्राणि हत्वा जन्तु शतानि च।
अमुं मन्त्रं समाराध्य तिर्यञ्चोऽपि दिवं गताः ॥१६३८॥

महामंत्रके प्रसादसे तिर्यञ्चोंका भी स्वर्गमें उपपाद—पशु पक्षी भी जो कि हजारों पाप करते रहते हैं, सैकड़ों जंतुवोंको मार डालते हैं, अर्थात् ऐसे हजारों पाप करके भी, सैकड़ों जंतुवोंको मार करके भी अन्तमें जब उन्हें ज्ञान जगता है और इस णमोकार मंत्रकी आराधना उन्हें मिलती है, जिस रूपमें भी हो आखिर पशु पक्षियोंके भी मन है और वे उतनी बात सोच

सकते हैं जितनी कि यह मनुष्य अपने स्वानुभवके लिए आवश्यक समझता है, सो वे पशु पक्षी भी इस मंत्रकी आराधना करके स्वर्गमें जन्म लिया करते हैं। जीवन्धर कुमारने एक कुत्तेको मरते हुए देखा था। कुछ लोग यज्ञ कर रहे थे, कुत्ता आया और उन लोगोंने उसे असगुन समझकर खूब पीटा, वह यज्ञ विधिवत् हो रही थी, तो उस मरते हुए कुत्तेको जीवन्धर कुमार ने णमोकार मंत्र सुनाया था। उन शब्दोंके निमित्तसे उसका ऐसा कुछ शुभभाव हुआ कि वह मरण करके देव गतिमें गया। यही तो बतलाया है कि सम्यक्त्वके प्रतापसे, सदाचार सम्यग्ज्ञानके प्रतापसे पशु पक्षी भी देवगतिको प्राप्त कर लेते हैं और मिथ्यात्वके प्रतापसे, अन्याय दुराचारके प्रतापसे, खोटे भावोंके कारण देव भी मरकर एकेन्द्रिय हो सकते हैं और पशु पक्षी भी हो सकते हैं। दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चारइन्द्रियके जीवोंमें जन्म नहीं होता देवोंका। या एकेन्द्रिय बनेंगे या पञ्चइन्द्रिय बनेंगे। वे विकलत्रय नहीं होते। तो सम्यग्ज्ञानकी ऐसी अपूर्व महिमा है। इस जीवका शरण है तो केवल सम्यग्ज्ञान ही शरण है, अन्य कुछ भी तत्त्व शरण नहीं है इस जीवका। खूब निरख लो। जैन शासनमें सर्व विधियां बतायी गयी हैं। सर्वज्ञानों से परिपूर्ण है जैन श्रुत। ऐसा जिन आगम जो वीतराग ऋषियोंको बड़े अनुभवसे प्राप्त हुआ जो स्वरूप है उसका चित्रण है, दिग्दर्शन है, पर इन ग्रन्थराजोंसे हम आप लाभ न उठायें तो यह कितनी भूलभरी बात है। इस ज्ञानस्वरूपकी भावनामें हम अधिक समय न लगायें, व्यर्थ की गप्प-सप्पमें ही अपना सारा समय लगाते रहें तो यह कितनी असंगत बात होगी? समय तो गुजरता ही जा रहा है, जो भी समय गुजर चुका, आप अनुभव भी कर रहे होंगे कि उस ४०—५० अथवा ६० वर्षका जीवन कैसे गुजर गया, यों ही शेष रहा समय भी गुजर जायगा, कुछ पता न पड़ेगा। गुजर जानेके बाद फिर यहाँकी कौनसी चीज अपने पास रहेगी सो तो विचार कीजिए। जिन परिजनोंके पीछे इतना परेशान हो रहे हैं, जिस वैभवके पीछे रात दिन होड़ लगा रहे हैं, जिस नामवरीके पीछे रात दिन बेचैन रहा करते हैं वे कोई भी चीजें साथ न रहेंगी। जीव तो मरकर अकेला ही किसी गतिमें चला जायगा। यहाँका कुछ भी साथ न ले जायगा। हाँ जो पुण्य व पापकर्म किए उनका ही फल साथमें ले जायगा। इस जीवका यहाँ कोई भी शरण नहीं है। हाँ अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु—इन पंचपरमेष्ठियोंका शरण ही इस जीवका वास्तविक शरण है। इस जीवको अपने उद्धारके लिए चाहिए क्या? इसे तो वह साधन मिले जिस साधनके द्वारा यह अपने कैवल्यकी प्राप्ति करे। तो वह सब मार्ग भरा हुआ है इस णमोकार मंत्रमें। इसमें सभी ज्ञान गर्भित हैं, इस कारण णमोकार मंत्रके प्रतापसे यह जीव यद्यपि बहुतसे पापोंसे मलिन होता आया है फिर भी इस मंत्रके ध्यान के प्रतापसे उन पापोंसे व्यसनोंसे छूटकर यह जीव उत्तम गतिमें जन्म लेता है अथवा मुक्त होता है।

http://sahjanandvarnishastra.org/

शतमष्टोत्तरं चास्य त्रिशुद्धया चिन्तयन्मुनिः ।
भुञ्जानोऽपि चतुर्थस्य प्राप्नोत्यविकलं फलम् ॥१९३९॥

योगशुद्धिपूर्वक चिन्तन करने वाले मुनि आहार करते हुए भी उपवास जैसे तपकी सिद्धि—मन वचन कायको शुद्ध करके अर्थात् मनसे सर्व प्राणियोंका हित सोचना, वचनोंसे हित मित प्रिय वचन बोलना, और अपने आपमें अपनी विशुद्धि बढ़े ऐसा मन, वचन, कायको प्रवर्तना, इसका नाम है योगसिद्धि । तो इन तीन योगोंको सिद्ध करके इस मंत्रका १०८ बार चिन्तवन करे, तो वह मुनि आहार करता हुआ भी एक उपवासके पूर्ण फलको प्राप्त होता है । उसका मतलब यह है कि णमोकार मंत्रका ध्यान बनाये रहे तो अपने ज्ञानके निकट है । एक व्यवहारदृष्टिसे लिखा है कि एक उपवासका फल है मंत्र जापसे । पर उसका कोई इसी लक्ष्यको बनाकर १०८ बार जाप करे कि हमको तो इससे एक उपवासका फल मिल जायगा तो यह बात ठीक नहीं है । अपने मन, वचन, कायको शुद्ध करके स्वपर-हितका अभिप्राय रखने वाले योगीके जब पंचपरमेष्ठीके गुणस्मरण पूर्वक मंत्रका ध्यान होता है उससे एक उपवासका क्या, अनेक उपवासका फल मिलता है । १०८ बार जाप करनेकी बात इसलिए कही गयी है कि जीवको १०८ प्रकारके पाप लगते हैं—वे किस तरह ? समरम्भ, समारम्भ और प्रारम्भ । तीन पाप तो ये हैं । पाप कार्यका चिन्तवन करके मनमें संकल्प बनाना कि मैं इसे करूँगा, यह समरम्भ है, पापके साधनोंको जुटा लेना, संचय कर लेना जिससे कि पाप लगे वह समारम्भ है, और पापके कार्यको करने लगना यह प्रारम्भ है । ये तीन पाप तो हुए, और ये तीनों पाप मनसे भी किए जाते, वचनसे भी किए जाते, और कायसे भी किए जाते तो ये कुल ९ भेद हो गये । मनसे समरम्भ, मनसे समारम्भ और मनसे प्रारम्भ, वचनसे समरम्भ, वचनसे समारम्भ और वचनसे प्रारम्भ, कायसे समरम्भ, कायसे समारम्भ और कायसे प्रारम्भ । यों ९ भेद हो गए । इनको करना, कराना और अनुमोदना करना इन तीन भेदोंसे ९ × ३ = २७ भेद हो गए । इन २७ प्रकारके पापोंको कोई क्रोधवश करता है, कोई मान, माया अथवा लोभवश करता है तो ये २७ × ४ = १०८ भेद हो गए । तो ये १०८ प्रकारके पाप मेरे नष्ट हों ऐसा उद्देश्य बनाकर मंत्रका १०८ बार जाप करते हैं, और बहुत ही विशुद्ध भावोंसे जाप करते हैं तो उससे एक उपवासके फलकी ही प्राप्ति नहीं होती है बल्कि मुक्तिफलकी प्राप्ति होती है । यो णमोकार मंत्रकी महिमा और ध्यानके लिए प्रेरणाका उपदेश किया ।

स्मर पञ्चपदोद्भूतां महाविद्यां जगन्नुताम् ।
गुरुपञ्चकनामोत्थां षोडशाक्षरराजिताम् ॥१९४०॥

षोडशाक्षर पञ्चनमस्कार मंत्रके विचिन्तनका आदेश—हे मुने ! पंचपदोंसे उत्पन्न

Report any errors at vikasnd@gmail.com

हुई जगतके द्वारा वंदनीय पंच गुरुवोंके नामसे उत्पन्न हुई जो महाविद्या है, जिसमें सोलह अक्षर शोभनीय हैं उस महाविद्याका स्मरण कर अर्थात् सोलह अक्षर वाले मंत्रका ध्यान कर। वह मंत्र कौनसा है ? सोलह अक्षर वाला वह मंत्र है—अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्व साधुभ्यो नमः। इस मंत्रमें उन ५ गुरुवोंका नाम आया है। प्रथम अरहंत, जिसका संस्कृतमें अरहद् शब्द निकलता है, दूसरे गुरुराज हैं सिद्ध, तीसरे हैं आचार्य, चौथे हैं उपाध्याय और ५ वें हैं सर्व साधु। इनका नाम लेकर इनको नमस्कार किया गया है। इस मंत्रका नाम है महाविद्या मंत्र। जो पहिले णमोकार मंत्र बताया था, जिसमें ५ पद थे, उन ५ पदोंसे यह मंत्र उत्पन्न हुआ है। णमोकार मंत्रमें भी ५ पदोंके द्वारा अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय और साधुवोंका स्मरण किया। इस मंत्रमें भी उन्हीं ५ पदोंका ही स्मरण है। तो यह सोलह अक्षरों वाली महाविद्या है। पहिला मंत्र बताया था ह्रँ ! यह था अनाहत मंत्र। दूसरा मंत्र कहा था ॐ, इसका नाम है प्रणव मंत्र, इसके बाद आया णमोकारमंत्र और दर्शनज्ञानचारित्र तपका नमस्कार ! वह था पंचगुरु नमस्कार मंत्र। अब इस मंत्रका नाम है महाविद्या।

अस्याः शतद्वयं ध्यानी जपन्नेकाग्रमानसः।
अनिच्छन्नप्यवाप्नोति चतुर्थतपसः फलम् ॥१९४१॥

षोडशाक्षरवाले महाविद्यामन्त्रके प्रसादका पावन फल—इस महाविद्या मंत्रमें पंच परमेष्ठियोंको नमस्कार किया है। यदि इसके स्वरूपको ध्यानमें रखकर अर्थात् इसका वह स्वरूप आकार उसका चित्रण उपयोगमें करके इस मंत्रका जाप किया जाय तो यह महान फल को प्रदान करता है। प्रथम अरहंत नाम है। अरहंत नाम लेते ही आकाशमें ऊपर शोभायमान समवशरणमें विराजमान चतुर्मुख जिनेन्द्र भगवानका ध्यान हो, और सिद्ध कहते ही लोक के ऊपर शिखरके अन्तमें केवल आत्मा ही आत्मा अमूर्त ज्ञानदर्शन सम्पन्न निर्लेप नीराग सर्व विकारोंसे रहित, शरीरसे भी रहित सिद्ध प्रभुका स्मरण हो, साथ ही सिद्ध शब्द बोलें। इसी तरह बनोंमें यत्र तत्र कुछ साधुवोंके बीच उच्च आसनपर आचार्य देव विराजमान हैं और वे मुनिके हितकी दृष्टिसे उन्हें शिक्षा दीक्षा प्रायश्चित आदिकका संदेश देते हैं। इस प्रकारका चित्रण उपयोगमें करके आचार्य शब्द बोलें, और बनोंमें यत्र तत्र १०–५ मुनियोंके बीच उपाध्याय महाराज विराजे हैं और उन्हें श्रुतका अध्ययन कराते हैं, इस प्रकारके चित्रण सहित उपाध्याय शब्द बोलें, और गुफावोंमें, बनोंमें, पर्वतोंके शिखरपर, नदीके तीरपर विराजमान, उपसर्गोंको सहते हुए, परीषहोंपर विजय प्राप्त करते हुए, आत्मध्यानमें रत साधुवोंका स्मरण करें और तब फिर सर्व साधु बोलें। यों भावसहित इस मंत्रका जो २०० बार ध्यान करता है वह पुरुष न चाहता हुआ भी एक उपवासके फलको प्राप्त होता है। अर्थात् कोई साधु ऐसी चाह करके मंत्रकी आराधना नहीं करता कि इसका जाप करनेसे हमें एक उपवासका

लाभ होगा सो इसका जाप करें, किन्तु किसी भी फलकी चाह न करके, प्रभुके गुणोंकी भक्ति से प्रेरित होकर अपने आपका जगतमें कहीं कुछ शरण नहीं है, एक मात्र ये पंचगुरु ही शरण हैं और परमार्थसे अपने ज्ञानस्वरूप आत्मतत्त्वका आराधन ही शरण है ऐसा परिणाम करके पंच गुरुवोंका गुण स्मरण किया जाता है। इस प्रकार जो २०० बार मंत्रका जाप करता है वह एक उपवासका फल प्राप्त करता है। प्रथम तो यह बात है कि बिना हितकी ओर दृष्टि हुए मंत्रको ओर धुनि नहीं बनती है, तो जिसे आत्महितकी दृष्टि हुई, प्रथम तो उसने आत्महित की दृष्टि बनाते ही बहुतसा कल्याण प्राप्त कर लिया। ऐसा पुरुष अपने समयको व्यर्थ नहीं गंवाता। सामायिक स्वाध्याय आदिक जो भी कर्तव्य हैं उनको करके जो भी समय बचता है वे प्रभुके गुण स्मरणमें अपना समय व्यतीत करते हैं।

पदस्थ ध्यानके सहारे प्रभुस्वरूप स्मरणका कर्तव्य—आजकलके समयमें जो लोग ऐसा अपनेको बेकार समय वाला सोचते हैं कि मेरा समय तो व्यर्थ बहुत जा रहा है, कोई काम ही नहीं है, व्यापार भी विशेष नहीं है, समय बहुतसा खाली है, तो वे अपने इस खाली समयका सदुपयोग क्यों नहीं कर लेते ? अपने खाली समयमें इस मंत्रका ही ध्यान किया करें। उस मंत्रके ध्यानसे उन्हें शान्ति भी प्राप्त होगी, समृद्धि भी प्राप्त होगी, पुण्यफल भी प्राप्त होगा। लेकिन जब चित्तमें ज्ञानकी, आत्महितकी धुनि नहीं है तो अन्य-अन्य प्रकारके संक्लेश करके अपना समय गुजारेंगे। लोग तो आजीविकाके कार्योंमें ही इतना व्यस्त हैं कि कामके मारे खाने तककी भी फुरसत नहीं मिलती, धर्म कर्मकी बात तो जाने दो। लोग तो समझते हैं कि यह कमाई हमारे कमानेसे हो रही है पर इस बातको भूल जाते हैं कि यह कमाई हमारे हाथ पैरोंके पटकनेसे नहीं हो रही है, बल्कि जो भी कमाई हो रही है वह धर्म कर्मका प्रताप है। अरे आपसे भी अधिक हृष्ट पुष्ट और अच्छी बुद्धि वाले लोग गरीब दीन हीन दशामें देखे जाते हैं। वे क्यों नहीं आपकी ही तरह धनिक बन जाते ? अरे उन्होंने धर्म कर्मका ध्यान नहीं दिया। आप निश्चित समझें कि फर्मसे प्रतापसे यह वैभव प्राप्त होता है। अपना उपयोग धर्म कार्योंमें विशेष लगे तो पुण्यरस बढ़ेगा और यदि धर्मकार्योंमें अपना उपयोग न लगा तो यह पुण्यरस सूख जायगा और जो पूर्व बद्ध पुण्य है उसका फल भोगनेके बाद फिर क्या हाथ रहेगा ? हर स्थितियोंमें मनुष्योंका कर्तव्य है कि वे प्रभुस्वरूपको न भूलें, अपने आत्मतत्त्वका यथार्थ ध्यान बनाये रहें।

विद्यां षड्वर्णसम्भूतामजय्यां पुण्यशालिनीम्।
जपन्प्रागुक्तमभ्येति फलं ध्यानी शतत्रयम् ॥१९४२॥

षड्वर्णमयी मंत्रके जपनका पावन फल—अब ६ अक्षरोंका मंत्र है। मंत्र चाहे वाक्यों में रचा गया हो, चाहे नाम मंत्रमें रचा गया हो, उनके गुण स्मरणके लिए, जिस नामके लेने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

से, जिन शब्दोंके बोलनेसे आत्माका ध्यान प्रभुस्वरूपपर पहुंचता हो वे सब मंत्र कहलाते हैं। यह ६ अक्षरों वाला मंत्र है अरहंत सिद्ध। इसमें केवल नाम लिया गया है, कोई वाक्य नहीं है और न कोई पल्लव आदिक लगा है, तो ऐसी यह षट्वर्णोंसे उत्पन्न हुई विद्या जो किसीसे जीती जानेमें समर्थ नहीं है ऐसी विद्याका ३०० बार जाप करने वाला पुरुष एक उपवासके फलको प्राप्त होता है। ६ अक्षरों वाली विद्या पुण्यको उत्पन्न करने वाली है, पुण्यसे शोभित है। बहुतसे लोग इसका जाप इस कारण जल्दी स्वीकार कर लेते हैं कि उसमें समय कम लगता है। और इसका इतना जल्दी-जल्दी जाप करते हैं कि फिर अ सि खाली रह जाता है, बीचके सभी अक्षर उड़ जाते हैं। लेकिन गुणस्मरणपूर्वक इनके स्वरूपका चित्रण करते हुए इस मंत्रको जपा जाय तो यह धीरतापूर्वक जपा जायगा और बड़ी भावना सहित होगा। इस मंत्रके ३०० बार जपनेसे एक उपवासका फल बताया है। यह सब एक व्यवहारिक कथन है। फल तो भावोंके अनुसार मिलता है। इतना भी फल मिले अथवा इससे भी कम फल मिले। भावपूर्वक प्रभुका नाम स्मरण करनेसे, अपने आपके आत्माके सहजज्ञानस्वरूपका ध्यान रखनेसे एक क्या अनेक उपवासोंका फल प्राप्त होता है। जो एक उपवासके फलकी बात है तो उसका अर्थ यह लगाना कि उपवास करनेमें जैसी कर्मनिर्जरा होती है वैसी ही कर्म-निर्जरा इस मंत्रका ध्यान करनेसे होती है।

चतुर्वर्णमयं मन्त्रं चतुर्वर्गफलप्रदम्।
चतुःशतं जपन्योगी चतुर्थस्य फलं लभेत् ॥१६४३॥

चतुर्वर्णमय "अरहंत" मंत्रके जापका पावन फल—अब ४ अक्षर वाला मंत्र है अरहंत, यह मंत्र धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप पर्यायफलको प्रदान करने वाला है, जो पुरुष इसका ४०० बार जाप करते हैं उनको एक उपवासका फल प्राप्त होता है। अरहंत शब्दके दो उच्चारण हैं अरहंत और अरिहंत। अरहंतका अर्थ है पूज्य पुरुष और अरिहंत का अर्थ है जिसने कर्मरूप दुश्मनोंको खतम कर डाला है ऐसा पुरुष। तो दोनों ही उच्चारण योग्य हैं, पर अरहंत शब्द का प्रयोग अधिकतर होता है। तो इस अरहंत मंत्रका ४०० बार ध्यान करनेसे एक उपवास का फल प्राप्त होता है।

वर्णयुग्मं श्रुतस्कन्धसारभूतं शिवप्रदम्।
ध्यायेज्जन्मोद्भवाशेषक्लेशविध्वंसनक्षमम् ॥१६४४॥

द्विवर्णी "सिद्ध" मंत्रके जापका फल सकलसंकटपरिहार—अब दो वर्ण वाला मंत्र है—सिद्ध। यह मंत्र श्रुत स्कंधका सारभूत मंत्र है, द्वादशांगका सारभूत मंत्र है। जीवकी सर्वोत्कृष्ट अवस्था है सिद्ध अवस्था। जहाँ सर्वप्रकारसे विशुद्धि प्राप्त हुई है, यद्यपि आत्मगुणों की विशुद्धि अरहंत अवस्थामें ही प्रगट हो चुकी थी, किन्तु थोड़ासा जो ऊपरी लेप है, शरीर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

से रहित और शरीरके कारणभूत कर्मसे रहित, अघातिया कर्मोंके लेपसे भी रहित यह सिद्ध अवस्था है। तो यह सिद्धकी अवस्था इस जीवकी सर्वोत्कृष्ट अवस्था है, तो यही मंत्र द्वादशांग का सारभूत है अर्थात् समस्त द्वादशांगका निचोड़ यही है कि सिद्ध पदवी प्राप्त हो जाय। यह सिद्ध नामक मंत्र मोक्षका देने वाला है। इसका ध्यान रखनेसे अर्थात् सिद्ध प्रभुका जो वास्तविक स्वरूप है केवलज्ञान पुञ्ज शुद्ध ज्ञान ज्योति मात्र, उसका ध्यान करने से चूंकि वहाँ कोई ध्वनिका ख्याल नहीं है, एक सिद्ध स्वरूपका ख्याल है, सो वह स्वरूप व्यक्तिगत ख्यालसे परे होनेसे एक आत्माके स्वरूपके साथ समन्वित होता है, अर्थात् जैसा वह स्वरूप है वैसा ही आत्माका स्वरूप है। उस सिद्धस्वरूपका ध्यान करनेसे अपने आत्माके सहज स्वरूप का ध्यान बनता है और यह शुद्ध सहज स्वभावका आलम्बन मोक्षका देने वाला है। यह सिद्ध नामक मंत्र संसारसे उत्पन्न हुए समस्त क्लेशोंका नाश करनेमें समर्थ है। संसारके क्लेश क्या हैं? बाह्यपदार्थोंमें दृष्टि होना। सभी दुःखी हैं, उनकी आप कहानी सुनें तो अन्तमें आपको यही मिलेगा कि उन सबकी परमें दृष्टि है। तो जो सिद्ध स्वरूपका ध्यान करते हैं उनकी परमें दृष्टि नहीं रहती क्योंकि वह सिद्धका स्वरूप अपने आत्माका ही तो स्वरूप है। तो इस सिद्ध स्वरूपका ध्यान करनेसे संसारके क्लेश मिटेंगे और इस विधिसे कर्मोंकी निर्जरा होती है सो निर्जरा होते होते जब समस्त कर्मोंकी निर्जरा हो चुकती है, मोक्ष हो जाता है, छुटकारा मिल जाता है तो उस समय सारे क्लेश उसके समाप्त हो ही गए। इस कारण योगी पुरुष इस सिद्ध मंत्रका ध्यान करें।

अवर्णस्य सहस्रार्द्धं जपन्नानन्दसंभृतः।
प्राप्नोत्येकोपवासस्य निर्जरां निर्जिताशयः ॥१९४५॥

"अ" मंत्रके जापका पावन फल—जिस मुनिने अपने चित्तको वश किया है ऐसा मुनि बड़े आनन्दसे निःशल्य होकर अ इस वर्ण मंत्रका ५०० बार जाप करता है वह एक उपवासका फल प्राप्त करता है। अ यह भी एक मंत्र है। इसमें एक तो अरहंतका नाम आ गया। किसी भी नामका जो आदि अक्षर है उसको ही बोल दें तो पूरा नाम समझा जाता है। दूसरे— अ का अर्थ है ब्रह्म। अ का अर्थ है सृष्टा। तो सृष्टा कौन है, रचना करने वाला कौन है? यह आत्मा। यह चेतन अपने चेतनकी सृष्टि कर रहा है। अ यह सब वर्णोंका आदि है। समस्त वर्णोंके आरम्भमें अ शब्द है। अ का सर्व स्वरोंसे भी अधिक प्रयोग होता है। शास्त्रोंमें देख लीजिए समस्त श्रुतोंमें सर्व मंत्रोंकी अपेक्षा अ शब्दका प्रयोग अधिक होता है। जब कभी व्यञ्जन बोला जाता है तो उस व्यञ्जनके साथ अ बोला जाता है। जैसे कोई स्वर बोला जायगा तो वह अ अक्षरकी मदद लेकर बोला जायगा। अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अः ऋ ॠ ऌ ॡ। इनकी सहायतासे बोला जाता है। हाँ अं अः जरूर ऐसे शब्द हैं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

जो किसी भी शब्दके साथ बोल सकते हैं। लेकिन वे भी अलग वर्ण नहीं हैं। ये वर्णोंके साथ बोले गए हैं। चाहे किसी भी शब्दके साथ अनुस्वर विकलर्ग लगे, किन्तु वहाँ दो स्वर नहीं माने जाते। क्योंकि क ख ग घ आदिक समस्त व्यञ्जन ये स्वरकी सहायता बिना नहीं बोले जा सकते। तो जब इन व्यञ्जनोंका कोई उच्चारण करता है और दूसरेको बताता है, ये हैं ३३, तो उनको जब बोलेगा तो क ख ग घ आदिक रूपसे बोलेगा। कोई की खीं गी घी इस तरहसे तो नहीं बोलता। तो व्यञ्जनोंका प्रयोग यद्यपि स्वरके लगाये बिना नहीं होता फिर भी व्यञ्जनोंका कोई पुरुष दिग्दर्शन कराये तो अ शब्द लगा करके आया करता है, और भी अनेक ऐसे कारण हैं जिससे इस अ का बड़ा महत्त्व है। यह श्रुत शास्त्रोंका प्रतिनिधि है, यह अरहंत शब्दका द्योतक है, यह शिवदृष्टिका संकेत करने वाला है। ऐसे केवल अ अक्षर वाले मंत्र को जो ५०० बार जपता है उसके एक उपवासके कर्म निर्जराके बराबर फलकी प्राप्ति होती है।

एतद्धि कथितं शास्त्रे रुचिमात्रप्रसाधकम्।
किन्त्वमीषां फलं सम्यक् स्वर्गमोक्षैकलक्षणम् ॥१६४६॥

मंत्रोंके ध्यानका अलौकिक फल—शास्त्रोंमें जो इस मंत्रका एक उपवास रूप फल कहा है सो केवल उस मंत्रकी रुचि करानेके लिए है। मंत्रकी रुचि जगे और कुछ थोड़े रूपमें उसकी महिमा बतायी और फल भी प्राप्त होता है उसे बताया, इसके लिए कहा गया है, किंतु वास्तवमें तो इस मंत्रका उत्तम फल स्वर्ग और मोक्ष ही है। मंत्रका ध्यान करने वाला पुरुष आत्मस्वरूपके ध्यानपर पहुंच जाता है, और मंत्रका उद्देश्य भी यही बनाना चाहिए कि हमको आत्माकी उपलब्धि हो, निर्वाणकी प्राप्ति हो। संसारके भोग साधनोंकी वाञ्छा रखकर मंत्र जाप करनेसे आत्माकी सिद्धि नहीं होती है। ये समस्त भोगसाधन आत्माका अहित करने वाले हैं, परिग्रहोंका संग कषायोंकी वृद्धि कराता है। परिग्रहके पीछे क्रोध भी होता, मानकषाय भी बढ़ती, मायाचार भी करना पड़ता, लोभ कषाय भी प्रबल होती। तो यह परिग्रह वास्तव में जीवके लिए अहितकारी है। तो इन परिग्रहोंकी भोगसाधनोंकी मनमें आकांक्षा न रखकर जो इस मंत्रका जाप करता है वह पुण्यके फलको प्राप्त करता है, बड़ी-बड़ी समृद्धियां उसे प्राप्त होती हैं। यह प्राकृतिक नियम है कि जो पुरुष धर्ममें चित्त लगायेगा उसके सांसारिक कष्ट टलेंगे, पुण्योदय आयगा, सर्व समृद्धियां प्राप्त होंगी। जैसे कोई पुरुष अपने किसी मित्रकी बड़ी सेवा करता है तो वह पुरुष भी उस मित्रके द्वारा कभी नाना प्रकारकी वैभव सम्पदायें प्राप्त करता है। हाँ यदि स्वार्थवश सेवा करता है तब तो उसको अच्छा फल न मिलेगा, पर निःस्वार्थ सेवाभावकी दृष्टिसे सेवा करता है तो अवश्य ही उस मित्रके द्वारा वह अच्छे-अच्छे सुखके साधन प्राप्त करता है। इसी प्रकार इस मंत्रका जाप जो बिना किसी प्रकारकी चाहके

करता है तो उसे अवश्य ही अनेक प्रकारकी समृद्धियां, अनेक प्रकारके सुखके साधन प्राप्त होते हैं। किसी प्रकारके भोग साधनोंकी चाह करके यदि कोई इस मंत्रका जाप करता है तो उसे उन सुखसाधनोंकी प्राप्ति नहीं होती। जो विशुद्ध मनसे इस मंत्रका जाप करता है वह इस मंत्रके ध्यानसे स्वर्ग और मोक्षके सुखको प्राप्त करता है।

पञ्चवर्णमयीं विद्यां पञ्चतत्त्वोपलक्षिताम्।
मुनिवीरैः श्रुतस्कन्धाद्बीजबुद्ध्या समुद्धृताम् ॥१९४७॥

"असिआउसा" पञ्चवर्णमय मंत्रके ध्यानका आदेश—अब ५ वर्ण वाली विद्याको बता रहे हैं। वे ५ अक्षर हैं अ सि आ उ सा। इसमें अरहंतका अ, सिद्धका सि, आचार्यका आ, उपाध्यायका उ तथा साधुका सा। ये अक्षर हैं। असिआउसा नमः। यों बोला जायगा, और इसके साथ ही साथ पंच बीजाक्षर भी होते हैं ह्रां ह्रीं आदि। ये ५ बीजाक्षर अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु, इन पंच बीजाक्षरोंको और उन पंच नाम अक्षरोंको एक बार जपनेके लिए पूर्णरूप होगा—ॐ ह्रां ह्रीं.......। असि आ उ सा नमः। इन भिन्न-भिन्न रूपोंमें उपासनाकी दृष्टि है। यह मंत्र द्वादशांग मंत्रमें सारभूत अनुभव कर निकाला गया है। इस पंचाक्षरी मंत्रका जो ध्यान करता है उसके आत्मामें विशुद्धि प्रगट होती है। जब तक वह संसारमें है तब तक नाना समृद्धियोंको प्राप्त होता है।

अस्यां निरन्तराभ्यासाद्वशीकृतनिजाशयः।
प्रोच्छिनत्त्याशु निःशङ्को निर्गूढं जन्मबन्धनम् ॥१९४८॥

पञ्चवर्णमय मंत्रके अन्तर्ध्यानसे जन्मबन्धनका छेदन—यह पूर्वोक्त जो पंचाक्षरमयी विद्या है उसमें निरन्तर अभ्यास रखनेके कारण जिस मुनिने योगसे अपने चित्तको वश कर लिया है ऐसा वह योगी निःशंक होकर अति कठिन संसाररूपी बंधनको शीघ्र ही काट लेता है। संसारका बन्धन है जन्म। संसारका अर्थ है संसरण, परिभ्रमण, इस ही का नाम संसार है। अरहंत भगवानका आयुक्षय तो होता है उसे मरण कह लीजिए, भक्तिके समयमें निर्वाण कह लीजिए और स्वरूप दृष्टिसे पंडितपंडितमरण कह लीजिये। आखिर आयुका क्षय ही तो होता है, लेकिन मरणके बाद जन्म नहीं होना है, इसलिए उन्हें संसारी नहीं कहते हैं। जन्मका ही नाम संसार है। लोग जन्ममें बड़ा समारोह मनाते हैं तो किसमें समारोह मनाते? संसार-बन्धनमें समारोह मनाते या इन शब्दोंमें कह लीजिए कि अच्छा यह उल्लू फंस गया। जन्म लिया तो बंधन हुआ। यों समझ लो जैसे कोई किसी मनुष्यको किसी आपत्तिमें फंसा हुआ देखकर खुशी मानते हैं इसी प्रकार उस पैदा होने वालेको आपत्तिमें फंसा हुआ जानकर खुशी मानते हैं। तो इस मंत्रका जो जाप करते हैं उन्हें अपने आपके आत्मस्वरूपका स्पर्श होनेके कारण एक उत्साह और बल प्रगट होता है कि जिससे अपनी शक्तिकी महिमाको जान जाते

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हैं, और शक्तिकी महिमा जानकर अपने आपके परमार्थ तपश्चरणमें लगता है। मंत्र जापका ध्यान भी एक महान अतिशय उत्पन्न करता है, सो हम आप सबको अपने हितकी दृष्टिसे इस मंत्रका जाप करना चाहिए और विधिपूर्वक उनका कुछ थोड़ा बहुत अर्थ समझकर स्वरूप दृष्टि सहित मंत्र ध्यान करना चाहिये।

मङ्गलशरणोत्तमपदनिकुरम्बं यस्तु संयमी स्मरति।
अविकलमेकाग्रधिया स चापवर्गश्रियं श्रयति ॥१६४६॥

मंगलपदके स्मरणसे अपवर्गश्रीका मिलाप—जो संयमी पुरुष मंगल शरण और उत्तम पदोंके समूहका स्मरण करते हैं, जो एकाग्रचित्त होकर इस समस्त चत्तारि दण्डकका ध्यान करते हैं वे इस अपवर्गकी श्रीको प्राप्त होते हैं। मंगल, लोकोत्तम और शरण—इन ३ पदोंसे चत्तारिदण्डक बना हुआ है। चत्तारि मंगलं, अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवली पणत्तो धम्मो मंगलं। यह मंगल पदोंका समूह है। चार मंगल हैं—अरहंत प्रभु मंगल हैं, साधु मंगल हैं, केवल भगवानके द्वारा प्रणीत धर्म मंगल है। मंगल कहते उसे हैं जो सुखको लावे और पापोंको गलावे। अरहंत प्रभु एक ज्ञानके परिपूर्ण विकास हैं, रागद्वेषका उनमें सर्वथा अभाव है। ऐसे वीतराग और सर्वज्ञ परम आत्मा हैं, उनके इस स्वरूपका फिर ध्यान करने वाला पुरुष उस उपयोगके कारण अनेक पापकर्मोंको दूर करता है, नष्ट करता है और अनेक सुखोंको प्राप्त होता है। ये अरहंत मंगल हैं, अरहंत अवस्थाके बाद अपने आप ही अघातिया कर्मोंके नष्ट हो जानेसे और शरीरके सर्वथा दूर हो जानेसे एक सिद्ध अवस्था प्रगट होती है। सिद्ध प्रभु ही गुणोंमें अरहंत प्रभुकी तरह परिपूर्ण ज्ञान वाले हैं और रागद्वेष आदिक समस्त विकारोंसे रहित हैं और शरीरसे रहित और कर्मोंसे रहित होनेके कारण ये अत्यन्त निर्लेप हैं, बाह्य लेपसे भी रहित हैं, उन सिद्ध प्रभुका ज्ञान आत्मीय आनन्दको प्रगट करता है और समस्त पापोंको गला देता है, इसलिए सिद्ध मंगल हैं। साधु परमेष्ठी ज्ञान और वैराग्य की मूर्ति हैं। साधु नाम उस आत्माका है जो आत्माके विशुद्ध स्वरूपकी साधना करे। विशुद्ध स्वरूप क्या है? ज्ञानमात्र। जो अपने आपको ज्ञानमात्र अनुभव करता रहे और इस ही के फलका ज्ञाताद्रष्टा रहे ऐसी स्थिति वाले साधु परमेष्ठी कहलाते हैं। इन साधु पुरुषोंकी संगति, साधु पुरुषोंकी सेवा, साधुके गुणोंका ध्यान ऐसे विशुद्ध उपयोगको बनाता है कि जिसके प्रताप से यह उपासक समस्त पापकर्मोंको नष्ट करता है और आत्मीय आनन्दका अनुभव करता है। साधुवोंकी उपासनासे उत्पन्न हुआ आनन्द भी एक अद्भुत आनन्द है। साधु पुरुष मंगल हैं। यह सब अन्य आत्मावोंकी बात है और ये व्यवहारसे मंगल हैं, इनके ध्यानके प्रसंगमें भी जो आत्माका उपयोग विशुद्ध बनता है वह परमार्थ मंगल है और उस परमार्थ मंगलका कारण होनेसे, विषय होनेसे ये अरहंत, सिद्ध और साधु भी मंगल कहे जाते हैं, परमार्थसे तो धर्म

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मंगल है। जिस धर्मको केवलीभगवानने दिव्यध्वनिमें दर्शाया है वह धर्म केवलीका धर्म नहीं किन्तु आत्माका धर्म है। पालन करने वाले पुरुषको धर्मी कहते हैं। ज्ञानमात्र अपने आत्माका अनुभव करना और ज्ञानस्वरूपमें अपने उपयोगको मग्न कर देना, यह धर्मका पालन है, यही धर्म मंगल है, यही समस्त पापोंको नाश करके विशुद्ध आत्मीय आनन्द उत्पन्न करता है।

लोकोत्तमपदस्मरणसे लोकोत्तमपदप्राप्ति—४ पद लोकमें उत्तम हैं—अरहंत लोकमें उत्तम हैं, सिद्ध लोकमें उत्तम हैं साधु लोकमें उत्तम हैं, और केवली भगवान द्वारा कहा गया धर्म लोकमें उत्तम है। इसका मंत्र है—चत्तारिलोगुत्तमा, अरहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साधु लोगुत्तमा, केवली पणत्तोधम्मो लोगुत्तमो। यही चार लोकमें उत्तम हैं। संसारमें समस्त वस्तुवोंपर दृष्टि डालो और निर्णय करके देख लो—किस पदार्थका संग हमारे हितमें कारण पड़ता है? तो कुछ भी यहाँ नजर न आयगा। धन वैभव परिवार, बन्धु, मित्र जनोंका संग तो एक क्षोभका ही कारण बनता है, सत्पथमें ले जानेका कारण नहीं बनता। बाहरमें यदि कोई हमारे सत्पथका कारण बनता है, हमारे हितका निमित्त होता है तो वे हैं अरहंत, सिद्ध और साधु। इसी कारण ये लोकमें उत्तम हैं और वैसे भी विज्ञानदृष्टिसे ये लोकमें उत्तम हैं। यह तो व्यवहार कथनकी बात है। परमार्थसे तो केवली भगवानके द्वारा जो सिखाया गया धर्म है वह धर्म इस लोकमें उत्तम है। मेरे लिए क्या लोकमें उत्तम है? अन्य वस्तु कैसी ही हो, कितनी ही पवित्र हो, कितनी ही आनन्दमय हो वह अपने लिए श्रेष्ठ है, मेरे लिए क्या उत्तम है? यद्यपि वह उत्तम है, पवित्र है, परन्तु मेरे लिए तो उत्तम है मेरा धर्म। अपने ज्ञानस्वभावी आत्मतत्त्वकी श्रद्धा होना और इस ही ज्ञानस्वभावका परिज्ञान करना और इस ही ज्ञानस्वरूपमें अपने उपयोगको मग्न करना अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय धर्मका पालन मेरे लिए लोकमें उत्तम है।

शरणपदोंके स्मरणसे परमार्थशरणकी प्राप्ति--इससे बाद ४ पद हैं शरणके। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवली पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि। मैं चारकी शरणको प्राप्त होता हूं। लोकमें ऐसा कौन सा पदार्थ है कि जिसकी शरणमें पहुंचें तो शान्ति मिले, अथवा जिसे मैं अपना सर्वस्व समर्पित कर दूँ तो मेरा हित हो जाय? ऐसा पदार्थ बाहरमें है तो वे हैं अरहंत, सिद्ध और साधु। ये पवित्र आत्मा ही मेरे लिए शरण, मेरे लिए हितरूप हैं बाह्यमें। इनके अतिरिक्त अन्य कोई भी जीव चेतन अथवा अचेतन ऐसा कुछ भी नहीं है कि जिसे अपना सर्वस्व समर्पित कर दूं तो मेरा हित हो जाय। तो मैं अरहंतकी शरणको प्राप्त होता हूं, इसमें भी जिस भक्तको अपने आपके आत्माके स्वरूपका परिचय है वही तो अरहंतके स्वरूपका वास्तवमें परिचय कर सकता है। जो अपने स्वरूपसे अपरिचित है वह अरहंतके स्वरूपसे अपरिचित है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

किसी भी परपदार्थसे कुछ भी परिचय बनायें तो उस कालमें अपना परिचय परमार्थसे होता है। किसी भी परवस्तुका जिसे हम ज्ञात करते हैं तो परवस्तुका ज्ञान उपचारसे कहलाता है। वस्तुवोंमें परवस्तुवोंके आकाररूप जो निजमें परिणमन होता है उस परिणमनके जानने वाले हैं तो इस तरह अरहंतका स्वरूप परिचित हो रहा हो तो उस समय परमार्थसे तो आत्मा ही परिचित हो रहा है। व्यवहारसे अरहंतस्वरूप परिचित होता है, अतएव यह बात कह देना संगत है कि जिन्होंने अपने आत्माके स्वरूपका परिचय प्राप्त किया है वे ही अरहंतके स्वरूपका परिचय प्राप्त कर सकते हैं। जब अरहंत स्वरूपके गुणस्मरणके समय, उनको सर्वस्व समर्पणके समय यह भक्त अपनी सुधि नहीं भूलता बल्कि वह शरण गहना अपने स्वरूपकी स्मृतिका ही कारण बनता है तो मैं अरहंतोंकी शरणको प्राप्त होता हूं। अरहंतकी उत्कृष्ट अवस्थासे भी उत्कृष्ट अवस्था सिद्ध अवस्था है जो बाह्यसे भी अत्यन्त निर्लेप है। यद्यपि अरहंत और सिद्ध अवस्थामें मूलमें आत्मगुणोंके विकासमें अन्तर नहीं है फिर भी चरम दशा तो जीवकी सिद्ध अवस्था है। पूर्ण पवित्र अवस्था है सिद्धकी जिसमें किसी अन्यका प्रवेश नहीं होता, ऐसे सिद्धके स्मरणसे आत्माके उस शुद्ध ज्ञायकस्वरूप शरीररहित, कर्मरहित अर्थात् शरीर और कर्मका जहाँ प्रवेश नहीं है ऐसे अपने आत्मस्वरूपका स्मरण होता है और यह आत्मस्मरण परमार्थसे शरण है।

आत्मस्वरूपस्मरणकी शरण्यता व कल्याणरूपता—इस जीवका यदि कुछ भला कर सकनेमें समर्थ है तो आत्मस्वरूपका स्मरण ही भला कर सकनेमें समर्थ है। अन्य सब जीव तो स्वयं मलिन है, कर्मोंके प्रेरे हैं, उनसे इस जीवका हित कुछ भी नहीं होता, चेतन अचेतन समस्त पदार्थ जो बाह्यमें दिखते हैं इस आत्माके लिए कोई भी हितरूप नहीं हैं। वे सभी जीव दयाके पात्र हैं, कर्मोंके प्रेरे हैं, उनसे इस आत्माका कल्याण नहीं हो पाता। आत्माका कल्याण तो अपने आपके स्वरूपके स्मरणसे ही हो सकता है। अब सोच लीजिए कि सब कुछ पाया धन वैभव, इज्जत प्रतिष्ठा, पर आत्मस्वरूपका स्मरण यदि नहीं बन सका तो ये सब व्यर्थ हैं। अपने आपकी शरण गहनेकी धुनि न हो सके तो ये बाह्य वैभव कुछ भी इस जीवकी मदद न कर देंगे। ये सब तो पापके ही कारण बनते हैं। बाह्यमें अपना कोई भी शरणभूत तत्त्व नहीं है। अपना शरणभूत तत्त्व तो अरहंत सिद्ध और साधु परमेष्ठी ही बाहरमें हैं। आखिर इस विकल्प वाली अवस्थामें विकल्प विपदावोंसे बचनेके लिए बाहरमें किसी न किसीसे सम्बंध बनानेकी आवश्यकता पड़ती है। वह सम्बंध यदि साधु परमेष्ठीका मिलता है तो वह वास्तविक शरण वाला सम्बंध है। वे साधुजन निष्पाप हैं, रागद्वेषसे रहित हैं, उनकी कोई प्रशंसा करे तो उसमें हर्ष नहीं मानते और कोई निन्दा करे तो उसमें विशाद नहीं मानते। ऐसी समताके धारी साधु परमेष्ठी जो बिना ही स्वार्थके कारणके जगतके बंधु हैं, सब जीवोंपर जिनके समान

Version 1

भाव है ऐसे गुणपुञ्ज साधु परमेष्ठीकी सेवा किसे प्राप्त होती है ? जिनका संसार निकट है उन्हें ऐसे साधुवोकी सेवा प्राप्त होती है । साधु शरण हैं । ये तीन व्यवहारसे शरण हैं, ये भी शरण कब हैं जब हम अपने आपका कुछ शरण प्राप्त करते हैं, तो परमार्थसे शरण धर्म ही है । जो धर्म केवली भगवानके द्वारा प्रणीत निर्दिष्ट है, धर्म है वह अपना ही । जो धर्म व्यवहारमें करना चाहिए वह मेरा ही धर्म है । वह धर्म है समता, निष्कषायता, विशुद्ध ज्ञानवृत्ति । इस धर्मकी शरणको मैं प्राप्त होता हूं । यह इन मंगल शरण और उत्तम पदोंका अर्थ है । भाव-पूर्वक जो इन पदोंका स्मरण करते हैं वे अपवर्गकी श्रीको प्राप्त कर लेते हैं अर्थात् मुक्तिसुख को प्राप्त कर लेते हैं ।

सिद्धेः सौधं समारोढुमियं सोपानमालिका ।
त्रयोदशाक्षरोत्पन्ना विद्या विश्वातिशायिनी ॥१९५०॥

त्रयोदशाक्षर मंत्रके ध्यानका फल सिद्धिसौधश्रेणिका आरोहण—अब एक तेरह अक्षरों वाला मंत्र कहा जा रहा है । यह तेरह अक्षरोंसे उत्पन्न हुई विद्या विश्वमें अतिशयरूप है । वह मंत्र है—"ॐ अर्हंत्सिद्धसयोगकेवली स्वाहा ।" यह विद्या मोक्षके महलपर चढ़ानेके लिए सीढ़ियोंकी भांति है । अरहंत सिद्ध और सयोगकेवलीका नाम उल्लेख किया है । अरहंत अवस्था १३ वें और १४ वें गुणस्थानमें कहलाती है, ये सकल परमात्मा हैं, शरीर सहित परमात्मा हैं । शरीर अभी है किन्तु ज्ञानका विकास परिपूर्ण हो गया है । रागद्वेष आदिक विकारोंका सर्वथा अभाव हो गया है, ये अरहंत परमात्मा कहलाते हैं । इसके पश्चात् जब शरीर और कर्म भी दूर हो जाते हैं तो सिद्ध प्रभु कहलाते हैं । यहाँ दो देव हैं । पंचनमस्कार मंत्रमें देव और गुरुवोंका नाम है । जिनमें दो तो देव हैं अरहंत और सिद्ध और ३ गुरु हैं—आचार्य, उपाध्याय और साधु । तो १३ अक्षर वाले मंत्रमें अरहंत और सिद्धका स्मरण है और सयोगकेवलीका । यद्यपि अरहंत कहनेसे सयोगकेवली गर्भित हो जाते हैं फिर भी यह सम्बंध समझनेके लिए कि हमारा जो उपकार हुआ है उस उपकारमें मूल कारण सयोगकेवली हैं । अरहंत अवस्थामें जब उनकी सयोगदशा रहती है १३ वें गुणस्थानमें तो सयोग है और उसमें भी जब वचनयोगकी विशेषता होती है, दिव्यध्वनि खिरती है तो उस माध्यमसे जगतके जीवोंका महान् उपकार होता है । तो सयोगकेवलीको इस कारण अलगसे स्मरण किया है । तो यह मंत्र एक विश्वमें अतिशय पैदा करने वाला है और मोक्षमहलमें चढ़नेके लिए एक सीढ़ीकी तरह है ।

प्रसादयितुमुद्युक्तैर्मुक्तिकान्तां यशस्विनीम् ।
दूतिकेयं मता मन्ये जगद्वन्द्यैर्मुनीश्वरैः ॥१९५१॥

त्रयोदशाक्षरी विद्याका सिद्धिसन्देशिकापन—इस १३ अक्षर वाली विद्याके सम्बन्धमें ही कहा जा रहा है कि इस मंत्रके धारण करने वाले मुक्तिरूपी रमणीको प्रसन्न करनेके लिए

http://www.jainkosh.org

जो उद्यमी होते हैं ऐसे जगत पूज्य मुनीश्वरोंने इस १३ अक्षर वाली विद्याको मुक्तिको प्रसन्न करनेके अर्थ दूती माना है ऐसा मैं मानता हूं। एक अलंकाररूपमें यह कथन है। जैसे पतिके पास पहुंचानेके लिए बीचकी सखी अथवा एक दूती होती है इसी तरह मुक्ति तक पहुंचानेके लिए इन मुनीश्वरोंको जो कि मुक्तिको प्राप्त करना चाहते हैं उनके लिए यह १३ अक्षरों वाली विद्या सखी या दूतीके समान है अर्थात् मुक्तिका सम्बन्ध बनानेमें यह कारण है। किसी भी मंत्रके आराधनमें एक तो श्रद्धा भरपूर होनी चाहिए। श्रद्धाके बिना मंत्रकी आराधनाका कोई फल नहीं है। श्रद्धा है तो कदाचित कुछ अशुद्ध भी मंत्र जपा जा रहा हो अथवा कैसे ही जपा जा रहा हो तो उसका भी कुछ न कुछ फल प्राप्त होता है। श्रद्धा नहीं है तो चाहे कितने ही ढंगसे बड़े स्वरसे बहुत ही शुद्ध मंत्र जपा जा रहा हो, पर श्रद्धा न होनेसे मंत्र का कोई फल नहीं प्राप्त होता। मंत्रजापमें श्रद्धाकी विशेष मुख्यता है और फिर मंत्र शुद्ध जपा और उस मंत्रका अर्थ भी ज्ञात हो, उस तत्त्वमें दृष्टि और श्रद्धा सहित किसी भी मंत्रका जाप करें तो उसका एक अपूर्व फल प्राप्त होता है। इन तेरह अक्षरों वाली विद्यामें अरहंत सिद्ध और सयोगकेवलीका स्मरण किया है। जो उपयोग ऐसे विशुद्ध ज्ञानपुञ्जका उपयोग करेगा उस उपयोगमें विषय कषायोंकी गंदी वृत्ति नहीं आ सकती है और इन विषयकषायोंके अभावसे आत्मामें उत्तरोत्तर विशुद्धता बढ़ती है जिसके प्रतापसे यह मुक्तिके निकट पहुंचता है। इसी कारण कहा गया है कि यह १३ अक्षरों वाली विद्या मुक्तिको प्राप्त करानेके लिए सखीकी तरह है।

सकलज्ञानसाम्राज्यदानदक्षं विचिन्तय।
मन्त्रं जगत्त्रयीनाथचूडारत्नं कृपास्पदम् ॥१६५२॥

'ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं नमः' मंत्रकी सकलज्ञानसाम्राज्यदानदक्षता—एक मंत्र है जिसे बताया है कि जगतमयी निधि चूड़ामंत्र है। तीनों लोककी निधिको चूड़ारत्न माना है। यह सर्वोपरि है, उस मंत्रकी मुद्रा है ॐ ह्री श्रीं अर्हं नमः। कितने विशुद्ध बीजाक्षर हैं इसमें भार भरे हुए हैं। ॐ शब्दसे पंचपरमेष्ठियोंका ध्यान जमता है, ह्रीं शब्दमें चतुर्विंश तीर्थंकर गर्भित हैं और श्रीके कहनेसे वह समस्त अरहंतकी शोभा है। समवशरणमें बिराजमान चौबीस तीर्थंकरकी अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग शोभा, वह हुई लक्ष्मी, ऐसी श्री का ध्यान पहुंचता है। वास्तवमें लक्ष्मी कहो, श्री कहो, अरहंत प्रभुका अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग वैभव है। यहाँ की श्री (स्त्री रूप) जिसे लोगोंने मान रखा है कि यह लक्ष्मी है, वह न लक्ष्मी है और न श्री है किन्तु विडम्बना है इसने तो इस आत्माको मलिन किया है। शान्ति नहीं मिलती। एक मोहका स्वप्नजाल जैसा मौज मानते हैं पर इसके कारण दुःख ही प्राप्त होते हैं। श्री नाम तो उसका है जो आत्मानं श्रयते, जो आत्माका आश्रय करे उसे श्री कहते

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं। आत्माका आश्रय श्री करेगी। श्रीका आश्रय करनेके लिए आत्माको भटकना न चाहिए श्री शब्दका जो अर्थ है उसके अनुसार लक्ष्मी हमारा आश्रय करती है, हम लक्ष्मीका आश्रय नहीं करते। वह श्री क्या है, वह लक्ष्मी क्या है जो आत्माका आश्रय करती है? वह श्री है ज्ञानलक्ष्मी। ज्ञान आत्माके आधारमें है और इस आत्मामें ज्ञानका पूर्ण विकास होता है। ज्ञान विकासके कारण अथवा रागद्वेषके सर्वथा अभाव होनेके कारण जो पवित्रता चरम सीमा पर पहुंची है उसके कारण ३ लोकके इन्द्र भी आकर्षित होते हैं। जब तीन लोकके इन्द्र श्रीमान अरहंत प्रभुकी भक्तिके लिए पहुंचते हैं तो यों कहना चाहिए कि तीन लोकके जीव ही उनकी भक्तिके लिए पहुंचते हैं। इसीलिए कहते हैं कि त्रिलोकाधिपति अरहंतदेव हैं। जैसे लोकतंत्र राज्योंमें राष्ट्रपतिका चुनाव सभी मनुष्य नहीं करते किन्तु सर्वमनुष्यों द्वारा चुने गए सदस्य ही उस राष्ट्रपतिका चुनाव कर लेते हैं तो वह राष्ट्रपति सभीके द्वारा निर्वाचित कहलाता है। उनकी वोट एक एक करके नहीं मानी जाती किन्तु एक वोटका अर्थ ४००-५०० वोट लगाया जाता है। जितने आदमियोंने जिसे चुनकर भेजा है उस अनुपात से उनकी वोट संख्या मानी जाती है। तो प्रयोजन यह है कि जैसे कुछ ही लोग राष्ट्रपतिका निर्वाचन करते हैं पर सर्व द्वारा निर्वाचित माना जाता है इसी तरह तीनों लोकके इन्द्रभगवान अरहंतके चरणोंमें आये हैं तो इसका अर्थ है कि वे तीनों लोकके जीवों द्वारा पूज्य हैं। तो ऐसी श्री अन्तरङ्ग लक्ष्मी ज्ञान है और बहिरङ्ग लक्ष्मी वह समस्त समवशरण आदिक शोभा है जो शोभा एक ज्ञान और वैराग्यके विकासको प्रेरणा देती है। देखो कितने आश्चर्यकी बात है कि सोना चाँदी, रत्न मणियोंसे जड़ित शोभा राग उत्पन्न कराती है पर वह समवशरणकी उत्कृष्ट शोभा ज्ञान और वैराग्यको बढ़ाती है। वह है भगवान अरहंतदेवकी बहिरंग श्री। तो श्री के कहते ही वह समस्त शोभा बहिरंग और अन्तरंग शोभा ध्यानमें आती है। इन सब को ध्यानमें रखकर यह मंत्र जो जपता है वह मनुष्य समस्त ज्ञानके साम्राज्यके देखनेमें प्रवीण हो जाता है। हे मुनि! ऐसे कृपाके साधनभूत इस मंत्रका तू चिन्तवन कर।

न चास्य भुवने कश्चित्प्रभावं गदितुं क्षमः।
श्रीमत्सर्वज्ञदेवेन यः साम्यमवलम्बते ॥१९५३॥

'ॐ ह्रीं श्रीं नमः' मंत्रके प्रभावकी अद्भुतता—"ॐ ह्रीं श्रीं नमः" इस मंत्रके प्रभाव को कोई भी कह सकनेमें समर्थ नहीं है। यह मन्त्र अन्तरङ्ग बहिरङ्ग लक्ष्मीसे युक्त सर्वज्ञ देव के साथ समानताको धारण करता है। बुद्धि, शब्द, और अर्थ ये तीन संज्ञायें हैं। एक प्रसंगमें अपने भावके भीतर तीनों की समानता है। शब्द तो वाचक अक्षरपुञ्ज हैं वे जिस अर्थ (पदार्थ) को बतलाते हैं उस पदार्थकी समता शब्दमें शब्दस्वरूपसे है और वहाँ जो उस पदार्थ का ज्ञान हुआ वह ज्ञान पदार्थके बराबर है। एक इस न्यायके अनुसार सभी शब्द अपने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

वाच्यभूत पदार्थकी समानताको धारण करते हैं। फिर तो यह मंत्र बीजाक्षरोंसे निष्पन्न है और परम तत्त्व सर्वज्ञ देवके सर्वस्वका वाचक है, सो यह मंत्र सर्वज्ञ देवकी समानताको धारण करता है। इसके प्रभावको कहनेमें कौन समर्थ है ? जो योगी इस मंत्रका आराधन करता है वह आत्मीय अनुपम अनन्त समृद्धिको प्राप्त करता है।

स्मर कर्मकलङ्कौघध्वान्तविध्वंसभास्करम् ।
पञ्चवर्णमयं मन्त्रं पवित्रं पुण्यशासनम् ॥१९५४॥

'णमो सिद्धाणं' पञ्चवर्णमय मंत्रके ध्यानका आदेश—हे लोकराज ! तू पंच अक्षर-मयी जो मंत्र है णमोसिद्धाणं, उस मंत्रका चिन्तवन कर, क्योंकि यह मंत्र कलंकोंके समूह रूप अन्धकारका विनाश करनेमें सूर्यके समान है। जैसे सूर्यप्रकाश सूर्यसम्बन्धी अन्धकारको नष्ट कर देता है, सूर्यके सम्बन्धका जो प्रकाश होता है उस प्रकाशकी उत्पत्ति कोई पुरुष किसी भी कृत्रिम उपायसे नहीं कर सकता। यद्यपि बिजलीके डंडे भी जला देते, जो कि बड़ा सफेद प्रकाश करते हैं और दिन जैसा मालूम पड़ता है, फिर भी वह प्रकाश दिनके प्रकाशकी होड़ नहीं लगा सकता। सूर्यके प्रकाशमें अत्यन्त सूक्ष्म चीज भी सुगमतासे दिख जाती है पर बिजलीके प्रकाशमें नहीं दिख पाती। तो जैसे अंधकारको नष्ट करनेमें सूर्यका प्रकाश समर्थ है। इसी प्रकार कर्मकलंकोंकी मलीमसताको नष्ट करनेमें यह मंत्र समर्थ है। मंत्रके अक्षर कर्मकलंकको नहीं मेट देते, लेकिन विशुद्ध भावोंसे जो मंत्राक्षरोंका ध्यान करता है और इसमें कहा गया जो तत्त्व है, स्वरूप है उस स्वरूपका जो ध्यान करता है उस आत्मा में ऐसी पवित्रता बढ़ती है, ऐसी विषय कषायोंसे उपेक्षाकी वृत्ति बनती है कि अपने सहज ज्ञानस्वरूपमें मग्न होनेकी ऐसी धुनि बनती है कि जिस धुनिके प्रतापसे यह आत्मा कर्म-कलंकोंका विध्वंस कर देता है। यह मंत्र पवित्र है और पुण्य शासन है। जिसका शासन पवित्र है, जिस मंत्रके ध्यानसे आत्मा अपने आपमें केन्द्रित होता है, अपने आपके द्वारा यह धर्म शासित होता है, अपने स्वरूपपर मानो पूरी हुकूमत बना ली है, ऐसा यह मंत्रराजका ध्यान है। जो मुनि इस पवित्र पंचाक्षरमयी मंत्रका ध्यान करता है, वह संसारके क्लेशोंसे हटकर, इन विकल्पोंकी विपदावोंसे हटकर निर्विकल्प विशुद्ध आत्मीय सहज आनन्दसे भरपूर विशुद्ध ज्ञानके विकास पदको प्राप्त करता है। हे मुनि ! हे योगीश्वर ! इस पंचाक्षरमयी मंत्रका पवित्र मनसे तू ध्यान कर और अब इस ध्यानके माध्यमसे अपने आपके स्वरूपमें निर्विकल्प होकर मग्न हो।

सर्वसत्त्वाभयस्थानं वर्णमालाविराजितम् ।
स्मर मन्त्रं जगज्जन्तुक्लेशसंततिघातकम् ॥१९५५॥

बहुवर्णमालाविराजित अभयप्रद मंत्रमें अर्हन्त केवलीको नमस्कार—अब एक यह बहुत अक्षरों वाला मंत्र है जिसकी मुद्रा है "ॐ नमोऽर्हन्ते केवलिने परमयोगिनेऽनंत शुद्धि परिणाम विस्फुरदुरुशुक्लध्यानाग्निर्दग्धकर्मबीजाय प्राप्तानन्तचतुष्टयाय सौम्याय शान्ताय मङ्गलाय वरदाय अष्टदशदोषरहिताय स्वाहा" इतना बड़ा यह मंत्र है। यह मंत्र जगतके प्राणियोंकी क्लेशपरम्पराको नष्ट करने वाला है। समस्त प्राणियोंके अभयका साधन है। ऐसे मंत्रको हे मुनि! तू स्मरण कर। इस मंत्रमें प्रथम तो प्रणवका बीजाक्षर दिया गया है ॐ, जिसके माहात्म्यका बहुत वर्णन लिया जा चुका है। फिर नमस्कार मंत्र देकर परमात्माके स्वरूपका जिप-जिन शब्दोंमें स्मरण किया है उनका अर्थ क्रमशः सुनियेगा। अर्हंते। इसका अर्थ अरहंत से है। अरहंतका अर्थ है पूज्य, योग्य, समर्थ। चार घातिया कर्मोंसे रहित वीतराग सर्वज्ञदेव अरहंत कहलाते हैं, फिर केवली शब्दसे स्मरण किया। वे अरहंत केवली हैं। वे केवली केवलज्ञान सम्पन्न हैं। केवलज्ञान रह गया, उनके रागद्वेषादिक विकार अब कुछ भी नहीं रह गए, अतएव उनके केवलज्ञान प्रगट हुआ है। वे समस्त लोकालोकको एक साथ स्पष्ट जानते हैं। केवलज्ञान सम्पन्न अरहंत भगवानको नमस्कार किया है।

शुक्लध्यानाग्निसे कर्मबीजका दहन करने वाले परमयोगीको नमस्कार—अर्हन्त प्रभु परमयोगी हैं, योग नाम हितमार्गमें जोड़नेका है, परम ध्यानीको योगी कहते हैं। जिनके शुक्लध्यानके तपश्चरणके प्रतापसे निश्चल ज्ञान प्रगट हुआ है ऐसे परमयोगी केवली भगवान को नमस्कार हो। शुक्लध्यानकी अग्निसे कर्मबीजको जला दिया है इन अरहंत प्रभुने। उन अरहंत देवके प्रति समय अनन्त गुणोंकी विशुद्धता बढ़ती है तो अनन्त गुण निर्मलता जिन परिणामोंमें बढ़ रही है उन परिणामोंके कारण जिनके शुक्लध्यान और निर्मल प्रगट हुआ है, जिस ध्यान अग्निके प्रतापसे कर्मबीज जिसके नष्ट हुए हैं। चार घातिया कर्मबीज कहलाते हैं और उनमें मोहनीय कर्म कर्मबीज कहलाते हैं। समस्त कर्मोंको उत्पन्न करानेमें यह मोहनीय कर्मबीजकी तरह है। यह मोहनीय कर्म समाप्त हुआ कि फिर सभी कर्मोंका विनाश प्रारम्भ होने लगता है। तो जिन अरहंतदेवने शुक्लध्यानकी अग्निसे इस मोहनीय कर्मको जला दिया उन्हें नमस्कार हो।

अनन्तचतुष्टयसम्पन्न अर्हंत केवली परमयोगी जिनको नमस्कार—जिनके अनन्त चतुष्टय है—अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त शक्ति, वे समस्त लोकालोकको त्रिकालवर्ती पदार्थोंको जाननेमें समर्थ हैं, और ऐसे अनंत ज्ञानवाले निज आत्मतत्त्वसे जो दर्शन करते हैं उसे अनन्त दर्शन कहते हैं। अनन्त आनन्द उनके मोहनीय कर्मोंके क्षयके कारण प्रगट होता है। आनन्दमें घात करने वाला कर्म है मोहनीय कर्म। आत्मा सभी आनन्द स्वरूप हैं, आनन्द कहीं बाहरसे लाना नहीं है, आनन्दका पुतला ही है यह आत्मा। आनन्दका इसमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

स्वभाव ही पड़ा है, पर मोहनीय कर्मके कारण जो रागद्वेष मोहकी प्रवृत्ति बनी उससे पर-दृष्टि बनी, उससे आनन्दका घात होता रहता है। मोहनीय कर्मके नष्ट होते ही समस्त आनन्द प्रगट होता है जिनके अन्तराय कर्मका क्षय हो जानेके कारण अनन्त शक्ति प्रगट हुई है ऐसे अनन्त चतुष्टयसम्पन्नअरहंत भगवानको मैं नमस्कार करता हूं।

सौम्य, शान्त, मंगल, वरद अर्हत्केवली भगवानको नमस्कार—उन अरहंतदेवकी मुद्रा सौम्य है, सुन्दर है, उनकी दृष्टि कुछ खुली कुछ मुँदी सी है, जिससे दृष्टि नासापर है। जो अत्यन्त शान्त हैं, उनकी दृष्टि नासाके अग्रभाग पर है, समस्त कषायभाव उनके नष्ट हो गए, अशान्तिका कोई कारण ही नहीं रहा, स्वभावतः वे परमधाम हैं। मंगलस्वरूप हैं। जो भी लोग उन प्रभुके स्वरूपका ध्यान करते हैं उन्हें नियमसे कल्याणकी प्राप्ति होती है। इसमें कोई अत्युक्तिकी बात नहीं है। ज्ञान और वैराग्यकी परममूर्ति अरहंत स्वरूपका जो ध्यान करता है उस ध्याता पुरुषके सर्व मंगल है। चाहे पूर्वकृत कर्मके कारण कुछ आपत्तियाँ आ रही हों, उपसर्ग आ रहे हों तिसपर भी जिस कालमें अरहंतस्वरूपपर ध्यान है उस समय जिस उपयोगमें आत्माका कोई वेदन नहीं है, दुःख है ही क्या उसे? बाहरी पदार्थोंकी परिणतिसे हम दुःखरूप अनुभव करें तो हमारे दुःख बन जाते हैं और हम अपनी परिणतिको अपने कैवल्य स्वभावको निरखकर तृप्त हो जायें। मैं सबसे निराला हूं, ज्ञानानन्दस्वरूप हूं, यह मैं अपनेमें परिणमता रहता हूं, मेरेसे बाहर कहीं मेरा कोई काम नहीं बनता है, ऐसी अपने आपपर कोई दृष्टि रखे तो उसका फिर अमंगल कहाँ, अकल्याण कहाँ? जैसे आत्मानुशासनमें बताया है कि जो लोग जीनेकी आशा रखते हैं, धन वैभवकी आशा रखते हैं उनके लिए तो कर्म कर्म हैं। आशा बनी है और वह चीज प्राप्त होती है नहीं तो वह जीव दुःखी होगा ही। जिसने आशा कर रखी है उसके लिए कर्म कर्म हैं, कर्म उसके दुःखके कारण हैं लेकिन जिन्होंने निराशामें ही आशा रखी है, अर्थात् न जीनेकी आशा रखता है, न धनकी आशा करता है किन्तु नैराश्यभाव उसके हो, किसी भी वस्तुकी आशा मुझमें न रहे, इस प्रकार नैराश्य अमृतका ही जो ध्यान रखते हैं उनके लिए कर्म क्या कर्म हो सकते हैं? कर्म जो कुछ असाता उत्पन्न कर सकते हैं उसे स्वीकार करें तो कर्म कर्म हैं, और स्वीकार न करें तो फिर कर्म क्या हैं? जैसे कोई किसीको खूब गालियां दे और जिसे खूब गालियां दीं वह उन गालियों को स्वीकार ही न करे तो फिर उसके लिए वे गालियां गालियां कहाँ रहीं? उस गाली देने वालेपर न वह क्रोध करेगा, न उससे द्वेष करेगा, न उसके प्रति कोई विकल्प करेगा। तो यह जीव जब विशुद्ध स्वरूपपर दृष्टि रखता है तो अरहंतके उस पवित्र परिणमनपर और गुणोंपर दृष्टि देता है तो उसके लिए सर्वत्र मंगल है, उसके लिए कहीं अमंगल नहीं है। यह अरहंत परमेष्ठी वरद हैं अर्थात् वरदान देने वाले हैं अर्थात् मनोवाञ्छित फलके देने वाले हैं। जो भक्त

श्रद्धापूर्वक इन अरहंत देवका स्मरण करता है उसके पुण्यकर्मका बंध होता है।

जन्म जरा तृषा क्षुधा विस्मय रहित परमयोगी जिनका स्मरण—वह अरहंत प्रभु १८ दोषोंसे रहित हैं। कौनसे हैं वे १८ दोष ? एक दोष है जन्म—उत्पन्न होना यह जीवके लिए एक कलंक है, दोष है। प्रभु अरहंत अब जन्मके दोषसे रहित हो गए, उनका अब कभी जन्म न होगा। प्रभुमें और संसारी जनोंमें किन-किन बातोंका अन्तर है, यह भी विदित हो जायगा। तो प्रभु जन्मदोषसे रहित हैं। दूसरा दोष है बुढ़ापा। इस बुढ़ापेकी वेदनाको बालक लोग तो समझ नहीं पाते। वे तो उन बूढ़ोंकी नकल करते हैं, हँसी करते हैं। उन्हें बुढ़ापेकी वेदनाका क्या पता ? बुढ़ापेकी वेदना तो बूढ़े ही जानें। तो यह बुढ़ापेका दोष भी एक बहुत बड़ा दोष है, अरहंत प्रभुके यह बुढ़ापेका दोष भी नहीं है। जिस ध्यानके प्रसादसे घातिया कर्मों को विनष्ट किया है, अरहंत बने हैं, तो अरहंत अवस्थाके प्रारम्भमें ही उनका शरीर बुढ़ापे से रहित होकर समर्थ शक्तिशाली युवा जैसा बन जाता है। यह केवलज्ञानका एक अतिशय है कि अरहंत होनेपर फिर उनका शरीर बूढ़ा नहीं हो सकता। तो यह बुढ़ापेका दोष भी अरहंत भगवानके दूर हो गया है। तीसरा दोष है प्यास। प्यासकी वेदनामें यह मनुष्य विह्वल हो जाता है, भूखकी वेदनासे प्यासकी वेदना कठिन हो जाती है। भूखकी दो डिग्रियां हैं—तीव्र और मंद। जब कुछ भूख लग गई हो तब अनुभव नहीं होता है कि हमको भूख लगी, जब बहुत तेज भूख लगती है तब अनुभव होता है कि हमको भूख लगी। प्यासकी वेदनाकी ४ डिग्रियाँ हैं—तीव्र, तीव्रतर और मन्द, मन्दतर। जब तीव्र प्यास लगी हो तब देख लो कितना दुःख महसूस होता है। अगर कुछ भूख लगी हो तो उसमें कुछ भी वेदना नहीं महसूस होती। अभी अभी खा पीकर निपटे और आधा घंटा बीता नहीं कि फिर प्यास लगने लगती है, पर भोजन करने वाला तो ६-७ घंटेके बादमें भूख महसूस कर पायगा। तो भूखसे प्यासकी वेदना कठिन है, और तीव्रतर भी प्यास होती है जो कि सही नहीं जाती है। प्यासके कारण तो प्राण भी नष्ट हो जाते हैं। तो प्यास एक महान दोष है। अरहंत प्रभुके प्यासका दोष नहीं है। भूखका भी दोष अरहंत प्रभुके नहीं है, वे कवलाहार नहीं करते, ग्रास वाला आहार नहीं लेते, किन्तु स्वतः ही उनके शरीरमें वे वर्गणायें आती जाती रहती हैं जो कि पवित्र हैं, जिनके कारण शरीर समर्थ बना रहता है। भगवान अरहंतको आश्चर्य भी नहीं होता। आश्चर्य कैसे हो ? जिनके कम ज्ञान हो और एकदमसे कोई ज्ञानकी बात सामने आ जाय तो आश्चर्य होता है। जिसके पहिलेसे ही ज्ञान है तो कुछ भी बात घटे, उसपर उसे आश्चर्य क्या ?

रति अरति खेद रोग शोक मद मोह भय निद्रा चिन्ता खेद मरण रहित परम योगी जिनको नमस्कार—प्रभुके प्रेम या अप्रेम भी नहीं होता, प्रभुके खेद भी नहीं होता। जैसे कोई पुरुष कार्य करके थक जाय तो उसे खेदसा होने लगता है, प्रभुके खेद नहीं है। प्रभुके ऐसी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

अनन्त शक्ति है कि कभी खेदका अनुभव होता ही नहीं। प्रभुके रोगका भी कोई दोष नहीं है। यहाँ तो मनुष्योंके अनेक प्रकारके रोग हो जाया करते हैं जिसके कारण मनुष्य बड़े बेचैन रहा करते हैं, बड़े क्लेश इस रोगके कारण सहन करने पड़ते हैं, ऐसे कोई भी शरीर सम्बंधी रोग अब उन अरहंत भगवानके नहीं रहे। जब उनके शरीरमें कोई धातु ही नहीं मिलती तो रोग कहाँसे हो, उनका शरीर परमोदारिक हो जाता है। रोग दोषसे वे अरहंत प्रभु अति दूर हैं। उनके कभी शोक भी नहीं होता। जैसे मनुष्योंको इष्टवियोग अथवा अनिष्टसंयोग होने पर शोक हुआ करता है वैसे अरहंत देवके शोक नहीं होता। उनके जब कोई इष्ट अनिष्ट है ही नहीं तो शोक कहाँसे हो ? उनके विशुद्ध ज्ञान और आनन्द जगा है तब शोकका उनके कोई अवसर ही नहीं है। घमंड भी उन पुरुषोंके होता है जिनके ज्ञानकी पूर्णता नहीं है और कुछ ज्ञान बन गया, कोई कला मिल गयी तो वे अपनी कलापर, अपनी चतुराईपर मद किया करते हैं, पर प्रभुका ज्ञान परिपूर्ण है, ज्ञानमें मदका अवकाश ही नहीं होता है। प्रभुके मोह नहीं है। मोह नाम है अज्ञानका। परवस्तुमें और अपनेमें एकताकी बुद्धि रखना उसे मोह कहते हैं। जैसे अनेक मोही जन ऐसा अभिप्राय रखते हैं कि जो कुछ यह परिवार है, यह मेरा है, ये मेरे हितकारी हैं, यही मेरे सर्वस्व हैं, तो दूसरेमें और अपनेमें एकता लाना इसका नाम मोह है। अथवा इस शरीरको आत्मा मानना इसका नाम मोह है। प्रभुके मोह नहीं है, न उनके निद्रा है, नींद भी प्रभुमें नहीं है, वे सदा सावधान हैं, सदा शक्तिमान हैं, जागरूक हैं, ज्ञान उनके सदा एकसा बना रहता है। चिन्ता भी उनके नहीं है, कोई अप्रिय घटना घट जाय, कोई उपद्रव वाली बात आ जाय तो मनुष्योंको चिन्ता होने लगती है, पर प्रभुके चिन्ता का अवकाश ही नहीं है। प्रभुके शरीरमें स्वेद (पसीना) भी नहीं है। उन अरहंत प्रभुके मरण का भी दोष नहीं है। यद्यपि अरहंत भगवान अभी शरीरसहित हैं, और आयुकर्मके उदयके कारण इस शरीरमें रोग होता है, आयुकर्मका कभी अन्त भी होगा, शरीर भी दूर हो जायगा तो आयुके अन्त होनेका नाम मरण है, लेकिन जिस मरणके बाद जन्म नहीं होना है उसे मरण नहीं कहा करते, वह तो निर्वाण है। ऐसे १८ प्रकारके दोष जिनप्रभुमें नहीं हैं उन प्रभुको नमस्कार किया है। इतना भाव इस मंत्रमें है जिस मंत्रके जपनेसे एक परिणामोंमें बड़ी विशुद्धि बढ़ती है और जिन-जिन बातोंसे वे प्रभु अरहंत देव प्रभु हुए हैं वे वे सब अभ्युदय भी इस ध्यानी पुरुषको प्राप्त हुआ करते हैं।

स्मरेन्दुमण्डलाकारं पुण्डरीकं मुखोदरे।
दलाष्टकसमासीनं वर्णाष्टकविराजितम् ॥१९५६॥

अष्टाक्षरी मंत्रके स्मरणका आदेश—अब एक विधिसे अष्टाक्षर वाले मंत्रका ध्यान बताया जा रहा है जिसमें मध्य वर्ण अर्थात् ह्रीं का भी सम्बन्ध है, उसके लिए हे मुनि ! तू

मुखमें चन्द्रकमलके आकारमें अष्टपत्रोसे शोभायमान एक कमलका विचार कर। अपने मुख स्थानपर एक अष्टपत्रका कमल चिन्तन कर। कमलोंके चिन्तन करनेके स्थान तीन बताये जाते हैं, एक नाभिपर, जिसे नाभिकमल कहते हैं, एक हृदयपर, जिसे हृदय कमल कहते हैं और एक मुखस्थानपर जिसे मुखकमल कहते हैं। तो हे मुनि! तू अपने मुखस्थान पर एक ऐसे कमलका चिन्तन कर जो चन्द्रकमलके आकारका है। जैसे पूर्णमासीका पूर्णचन्द्र अपने तेजसे अति शोभायमान है वैसा ही एक परिपूर्ण कमलका तू विचार कर, जो ८ अक्षरोंसे शोभायमान है। वे ८ अक्षर कौनसे हैं, उसका वर्णन करते हैं।

ॐ णमो अरहंताणमिति वर्णानपि क्रमात्।
एकशः प्रतिपत्रं तु तस्मिन्नेव निवेशयेत् ॥१९५७॥

ॐ णमो अरहंताणं मंत्रके ध्यानका विधान—जो कमल मुख स्थानपर चिन्तवन किया गया है उस कमलके ८ पत्रोंपर क्रमसे इन ८ अक्षरोंकी स्थापना करें। "ॐ णमो अरहंताणं। उस कमलके ८ पत्रोंपर क्रमशः एक एक इन अक्षरोंकी स्थापना करके उनका ध्यान करना चाहिए। देखिये मनको एकाग्र करनेकी विधि भी इसमें है और परमात्मस्वरूपसे सम्बन्ध रखने वाली घटना भी बतायी गयी है, इस कारण इन सब ध्यानोंका महत्त्व बहुत बढ़ गया है। जो विधि बतायी जा रही है—इस तरहसे ध्यान करो, ऐसा कमल विचारो, ऐसे पत्र सोचो, उन पत्रोंपर इन वर्णोंको देखो तो इन कार्योंके करनेसे मनमें एकाग्रता रहती है, बाहरी विषय कषायोंसे मन हट जाता है, तो एकाग्रताका भी एक अपूर्व साधन बना है और परमात्मस्वरूपके चिन्तनका भी इसमें योग मिला है। इसके बाद उस ही कमलके सम्बन्धमें और इस ही मंत्रके सम्बन्धमें आगे क्या प्रगतिकी जाय, उसके लिए कहते हैं।

स्वर्णगौरीं स्वरोद्भूतां केशरालीं ततः स्मरेत्।
कर्णिकां च सुधास्यन्दविन्दुव्रजविभूषिताम् ॥१९५८॥

सर्वसिद्धिप्रद अष्टाक्षरी मंत्रका आसन—तत्पश्चात् अमृतके झरनोंके बिन्दुवोंसे सुशोभित कर्णिकाका चिन्तवन करें। कमलके बीचमें जो कर्णिका होती है उसके चारों तरफ जो सूतके माफिक पतले खड़े हुए उस बनस्पतिके धागोंकी पंक्ति लगी रहती है उनपर बूँद बूँदकी तरह रूप रखे हुए होती हैं, सभी कमलोंमें आप पायेंगे, गुलाबके फूलोंमें भी आप यह चीज पायेंगे। तो इस हृदयकमलमें एक कर्णिकाका विचार करें जिसके चारों ओर अमृत बिन्दु कोई उत्तम सुशोभित बिन्दुवें हैं उनसे सुशोभित कर्णिकाका चिन्तन करें और उसमें स्वरोंसे उत्पन्न हुई तथा स्वर्णके समान गौरवर्ण वाली केशरोंकी पंक्तिका ध्यान करें। उस कमलमें पहिले बताया था कि ८ अक्षरोंको स्थापना करें। साथ ही इसमें व्यक्त रूपसे यह भी वहाँ विचित्रता देखिये कि स्वरपत्रोंपर स्वरोंकी भी रचना है। तो उन स्वरोंसे उत्पन्न हुई एक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

गौरवर्ण वाली स्वर्णके समान केशरोंकी पंक्ति वहाँसे चली और उस पंक्तिका भी ध्यान करें। अपने मुखकमलपर एक ऐसा ध्यान जमाया जा रहा है जिसपर ॐ णमो अरहंताणं इस मंत्र का ध्यान किया जा रहा है।

प्रोद्यत्संपूर्णचन्द्राभं चन्द्रबिम्बाच्छनैः शनैः।
समागच्छत्सुधाबीजं मायावर्णं तु चिन्तयेत् ॥१९५९॥

अष्टाक्षरी मंत्रके चिन्तनकी विधि—अब तक इस प्रसंगमें क्या-क्या सोचा गया ? स्थिर आसनसे बैठा हुआ योगी अपने मुख स्थानपर एक कमलका चिंतवन कर रहा है, जिसमें ८ पत्र हैं, जिन पत्रोंमें अव्यक्त रूपसे स्वरमाला है, और व्यक्त रूपमें भी एक-एक पत्रपर एक-एक अक्षर लिखा हुआ है। ॐ णमो अरहंताणं ये आठों अक्षर एक-एक पत्रपर लिखे हुए हैं, और उसके निकट कर्णिकाके चारों तरफ तंतुवों जैसी लाइन लगी हुई है, जिसपर अमृतकी बिन्दुवें रखी हैं, और उन स्वरोंसे एक केशरोंकी पंक्ति उत्पन्न होती है अर्थात् उनमें स्वर्ण समान वर्ण बिखर गये हैं। अब उसपर माया मंत्रका विचार करें, ह्रीं। जैसे पूर्णमासीको जो चन्द्र उदित होता है वह पूर्ण कान्तिमय होता है, अत्यन्त शोभनीय होता है, ऐसे ही पूर्ण कान्तिमय अत्यंत शोभनीय यह मायावर्ण है। कोई अक्षर लिखा होता है ना तो जैसे आजकलके लोग कोई उसे स्वर्णाक्षर बोलते हैं, कोई लोग रत्नाक्षर बोलते हैं ऐसे ही यहाँ इस मायावर्णका विचार किया जा रहा है। उसे कोई पूर्णमासीके चन्द्रकी तरह कान्ति वाला बोलते, कोई उज्ज्वल बोलते, कोई सफेद बोलते। ऐसे रंगमें इस ह्रीं मंत्रका चिन्तवन करें जो चन्द्रबिम्बसे मन्द मन्द अमृत बीजको प्राप्त हो रहा है। जिसके ध्यानसे परम तृप्ति होती है, मन एकाग्र होता है और दिव्य प्रकाश प्रगट होता है, तो मानो यह चन्द्रबिम्बसे अमृतबीज मिल रहा है। यह स्वयं अमृतबीज है। बीज उसे कहते हैं जो अंकुरको उत्पन्न करे। यह मंत्र अमृतबीज है तो अमृत आनन्दको उत्पन्न करता है, ऐसा उस कर्णिकापर मायावर्ण ह्रीं का चिन्तवन करें। इन सभी बीजाक्षरों में अपना-अपना अद्भुत प्रताप भरा हुआ है। यह बीजाक्षर कैसे बना ? तो कोई इसके बारेमें कुछ सोच भी ले, उसका कुछ ठीक अर्थ भी कोई बैठा ले, तो बैठा सकता है। न जाने कितने गुण इस ह्रीं मायावर्णमें भरे पड़े हुए हैं। इसी ह्रीं मंत्रमें चतुर्विंश तीर्थंकरकी भी स्थापना की हुई है जो वर्ण और अंकोंसे जानी जाती है। र का अर्थ है २ और ह का अर्थ है ४। यों २ और ४ = २४ हुए। यों २४ तीर्थंकरोंकी स्थापना हो गई। यह एक स्थूल बात है, पर उस ह्रीं मंत्रमें और क्या-क्या मर्म भरे पड़े हैं वह ऐसा है कि जिससे सारे श्रुतज्ञानका प्रतीक सिद्ध हो, सर्व ज्ञानोंका प्रतिनिधित्व करे ऐसा अपूर्व माहात्म्य हो। सो उस कमलपर जो मंत्रसे वेष्टित है उनके बीच कर्णिकापर ह्रींका चिन्तन करें। उस ह्रींका किस किस विधिसे चिन्तन करें, उसका वर्णन अब आगेके श्लोकोंमें बताया जायगा।

http://sahjanandvarnishastra.org/

विस्फुरन्तमतिस्फीतं प्रभामण्डलमध्यगम् ।
संचरन्तं मुखाम्भोजे तिष्ठन्तं कर्णिकोपरि ॥१६६०॥
भ्रमन्तं प्रतिपत्रेषु चरन्तं वियति क्षणे ।
छेदयन्तं मनोध्वान्तं स्रवन्तममृताम्बुभिः ॥१६६१॥
व्रजन्तं तालुरन्ध्रेण स्फुरन्तं भ्रूलतान्तरे ।
ज्योतिर्मयमिवाचिन्त्यप्रभावं भावयेन्मुनिः ॥१६६२॥

ध्यानोंका संक्षिप्त विवरण—संसारी जीवोंके सबको निरन्तर कुछ न कुछ ध्यान बना रहता है। ध्यान संज्ञी जीवोंके तो विशेषतासे होता है और असंज्ञी जीवोंके एकेन्द्रिय आदिक तकके भी ध्यान तो होता है किन्तु मनके न होनेसे कोई विशेषता वाला तो नहीं है, है वह आर्त और रौद्रध्यान रूप। ध्यान मूलमें ४ प्रकारके हैं—आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान। इनमेंसे धर्मध्यान और शुक्लध्यान तो मोक्षके कारण हैं और आर्त व रौद्रध्यान संसारमें परिभ्रमण करानेके कारण हैं। धर्मध्यानमें ४ ध्यान बताये गए थे—आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय। भगवानकी आज्ञाको प्रधान करके चिन्तवन करना आज्ञाविचय है, और ये रागादिक कैसे दूर हों उनका चिन्तवन करना अपायविचय है, कर्मोंका चिंतवन करना विपाकविचय है और लोकका आकार, कर्मकी रचना, कालकी रचना, इन सबका ध्यान आता है तो यह है संस्थानविचय। इसके अतिरिक्त संस्थानविचयके ४ और भेद किए गए—पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत। पदस्थ ध्यानको पार्थिवी, आग्नेयी, मारुती और तत्त्वरूपवती धारणाके सहारे ध्यान बताया है। अब यह पदस्थ ध्यानका प्रकरण है। इसमें पदोंके सहारे ध्यान बताया जा रहा है। अनेक मंत्रोंका वर्णन करनेके बाद इस समय अष्टाक्षरी मंत्रका जो कि मायावर्ण सहित है, वर्णन चल रहा है। इस ध्यानमें दो लाभ हैं—एक तो चित्तकी स्थिरता होती है, दूसरे कुछ तत्त्वसे संबंध रखने वाले ये मंत्र हैं तो तत्त्व-स्वरूपपर भी दृष्टि जाती है और जिसके प्रतापसे निर्विकल्प ध्यानका आत्मानुभवका अवसर आता है। चित्तको एकाग्र करनेके लिए अन्य भी अनेक उपाय हैं जिन्हें प्राणायाम वाले किया करते हैं, किसी स्थानपर सामने कोई शून्य बना लेते हैं और उस शून्यको एकटकी लगाकर देखते हैं। यद्यपि वह काला बिन्दु है फिर भी बहुत देर तक निगाह करनेके बाद उसे सफेद रूपमें ध्यान करें और दिखने भी लगे सफेद। ऐसी अनेक विधियां अन्य-अन्य प्रकारकी की जाती हैं किन्तु उनमें फिर भी सम्बंध नहीं है। एक चित्तको एकाग्र किया गया है, किया गया है अटपटा लक्ष्य। इस मंत्रके ध्यानमें चित्तकी एकाग्रता भी रही और तत्त्वस्वरूपका चिन्तन भी बने, इस प्रकार वर्णन है।

प्रभामण्डलमध्यग कर्णिकोपरि ह्रीं मायावर्णका चिन्तन—इस योगीने अपने आपके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

देहमें मुखके स्थानपर एक ८ पत्रोंका कमल चिन्तन किया, और वह कमल भी कान्तिवान स्वच्छ है। उन पत्रोंपर ये ८ अक्षर भी लिखे हुए दिखें--ॐ णमो अरहंताणं, और उस कमल के बीचमें कर्णिका है, जो कर्णिका अपने चारों ओर फैले हुए केशरपंक्तिके बिखरनेसे सर्वत्र स्वर्णवत् कान्तिमान पीतरंगका हो गया है, ऐसी उस कर्णिकामें मायावर्ण अर्थात् ह्रींका चिंतन करें। उस ह्रीं का वर्णन किस किस प्रकारसे करें उसका वर्णन इन तीन श्लोकोंमें किया जा रहा है। यह ह्रीं अक्षर स्फुरायमान हुआ होता है ऐसा चिन्तन करें, जैसे कुछ पेन्टर लोग इस प्रकारसे अक्षरोंको लिखते हैं कि देखनेमें ऐसा आता है कि ये अक्षर लिखे नहीं गए किंतु रंग बिरंगे काटके बनाये गए और वे ऊँचे-ऊँचे अक्षर हैं, वे अक्षर चिपके हुए हैं, वे अक्षर पोते हुएसे नहीं लगते, किन्तु मालूम होते हैं कि ये करीब एक या आध इंचके मोटे अक्षर हैं। ऐसे मानो एक या आध इंचके अक्षर बनाकर काटकर चिपकाये जायें तो वे अक्षर स्फुरायमान प्रतीत होते हैं। स्फुरायमानके अर्थमें बताया जा रहा है कि जैसे पोते हुए अक्षर न लगें किन्तु उठे हुए उन्नतिशील अक्षर मालूम पड़ें, इसी प्रकार ये योगी उस ह्रीं अक्षरको भी लेपे पोते हुए की तरह नहीं निरखते किन्तु वे स्वयं अपना कुछ रूप रखे हैं, अपना एक पिण्ड बनाये हुए हैं और वे स्फुरायमान हैं, इस प्रकार उस ह्रीं वर्णका चिन्तन करें। इसके पश्चात् उस ही ह्रीं को देख रहे हैं कि अत्यन्त अनुपम प्रभामण्डलके साथ यह विकसित होता है जिसके चारों ओर जैसे चन्द्रमण्डल रहता है इसी प्रकार इस मंत्रके चारों ओर एक प्रभामण्डल फैला हुआ है।

प्रतिपत्रपर संचरण करते हुए ह्रीं का चिन्तन—फिर यह योगी देखता है कि इस मुखकमलमें विचरते हुए उस ह्रीं को ही देख रहा है कि यह ह्रीं अक्षर वहाँ गया यहाँ गया, यहाँ रहा। जैसे-जैसे उपयोग बनाता है वैसे-वैसे ये अक्षर चल रहे हैं, यह उपयोगकी बात है। मंत्र साधना वाले लोग जो कहीं बैठे ही बैठे किसी जगहके रथका चका तोड़ देते हैं या कील निकाल देते हैं, ऐसा उन मंत्रवादियोंको करते हुए देखा भी होगा अथवा सुना भी होगा। इस मंत्रवादीने अपने उपयोगमें वह रथ पूरा लिया है, एकाग्र चित्त होकर उसमें कुछ अपनी शक्ति बढ़ायी है और उस समय अपना उपयोग जिस पुर्जेको तोड़नेका बनाता है वहाँ वह पुर्जा टूट जाता है। तो वहाँपर उस मंत्रवादी द्वारा ऐसा हो जाय तो यह बात असम्भव नहीं हैं। लेकिन इसमें यह शंका की जा सकती है कि फिर अध्यात्मतत्त्व क्या रहा ? क्या कोई द्रव्य किसी दूसरे द्रव्यका कुछ सुधार बिगाड़ कर सकता है ? उस मंत्रवादीने सोचा और वह चका उसके सोचनेसे ही टूट गया, तो ऐसा भी हो सकता है क्या ? तो इसे अध्यात्मपद्धतिसे देखो तो उस समय भी इस मंत्रवादीके विचारनेसे वह चका नहीं टूटा, किन्तु वहाँ ऐसा विचित्र निमित्तनैमित्तिक सम्बंध है कि उस मंत्रवादीने जिस समय अपना उस प्रकारका चिंतन बनाया

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उसी समय उस रथमें चका टूटनेका काम होना था सो टूट गया। यह एक निमित्तनैमित्तिक सम्बंधकी बात दर्शायी गयी है। दूसरी बात देखो—सर्प बिच्छू आदिकका विष उतारने वाले लोग मंत्र पढ़ते जाते हैं और उधर विष उतरता जाता है तो वहाँ क्या बात है? वहाँ भी एक ऐसा निमित्तनैमित्तिक सम्बंध है कि वह मंत्रवादी अपने आपमें उस प्रकारका चिन्तन कर रहा है और उधर विष उतर रहा है। तो ये सब बातें होकर भी वस्तुस्वरूपकी बात सर्वत्र वही रहती है।

मन्त्रसाधनमें भी योगीका लक्ष्य अन्तस्तत्त्व—कोई भी वस्तु अपने प्रदेशोंसे निकलकर अन्य वस्तुमें तन्मय होकर परिणमन करती हो, यह त्रिकाल भी नहीं हो सकता। पर मंत्र-साधनाका सम्बंध निमित्तनैमित्तिक योगसे है। तो ऐसे निमित्तनैमित्तिक प्रसंगमें कार्य होते हैं और उन कार्योंको कोई केवल इस दृष्टिसे देखे कि जितना जो कुछ होगा वह किसी अवधि-ज्ञानीने तो जाना ही है। केवलज्ञानीकी बात अभी जाने दो, अवधिज्ञानीकी जानी हुई बात भी सत्य तो नहीं होती। उसने जाना कि अमुक दिन अमुक क्षण यह होगा, लेकिन यह उसने अपने आप ही नहीं जाना ऐसी कल्पना करके, किन्तु पदार्थमें जब जिस विधिसे जो बात होने को होती है वह उस विधिसे बनती है, उसको समझ लिया है। कोईसा भी विभावपरिणमन उस पदार्थमें अपने आपके सत्त्व मात्रके कारण किसी परउपाधिका सम्पर्क पाये बिना सम्भव ही नहीं है। यदि परउपाधिके बिना कोई विभावपरिणमन सम्भव हो जाय तो वह विभाव क्यों रहेगा, वह तो स्वभाव कहलायेगा। तो सब ओरकी दृष्टियोंसे सभी नयोंकी बातका निर्णय करने वाले ज्ञानी पुरुष फिर अपने आपमें तत्त्व कौतूहली बनकर परका कुछ भी चिन्तन करके अपने ही लक्ष्यपर पहुंचता है। इस मंत्रसाधनमें योगी केवल एक ही अपना लक्ष्य बनाये हुए है, मेरेको आत्मानुभव हो यह उसका मुख्य लक्ष्य बना है। जो आत्मानुभवी पुरुष होगा उसे ये सांसारिक प्रक्रियायें नहीं रुचती हैं। हाँ ज्ञानका परिचय होनेपर भी उपयोग इस प्रकारका अनुभव करनेमें किसी वजहसे असमर्थ हो रहा है, चित्त स्थिर नहीं है, चित्तमें यत्र तत्र विकल्प दौड़ रहे हैं तो उस चित्तको वश करनेके लिए ये प्रक्रियायें बतायी जा रही हैं। इन प्रक्रियावों को करते हुए भी ज्ञानी पुरुष किसी सांसारिक मामलेमें फिसल नहीं जाता, कुछ अपना लक्ष्य अन्य नहीं बना लेता, यह ध्यान भी तो योगीको केवल आत्मानुभवके लिए है।

विचिन्तित ह्रीं मंत्रका प्रभाव—इस समय इस मुख-कमलमें उस मंत्रके बीच कर्णिकामें ह्रीं वर्णका चिन्तन अपने उपयोगसे एक टकटकी लगाकर कर रहा है। यह ह्रीं स्फुरायमान है। मुख-कमलमें लो अब यहाँ उठा, अब बैठा, अब संचार किया, इस तरह उस ह्रीं वर्णका जैसे जैसे यह उपयोग करता है वैसे ही वैसे यह ह्रीं अक्षर चल रहा है और यह चलते हुए कभी-कभी उन कमलके ८ दलोंपर फिर रहा है, स्पर्श कर रहा है और कभी क्षणभरमें आकाशमें अति

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दूर पहुंच गया है, फिर उसे लाकर अपने स्थानपर बैठाया है। एक उस ह्रीं का ही वह ध्यान कर रहा है, चिन्तन उसका इस एक मायावर्णमें ही है। कभी यह अज्ञान अंधकारको दूर करता हुआ और एक तृप्ति अमृत जलसे पूर्ण होकर तालुवोंके छिद्रसे गमन करता हुआ यह दिख रहा है। जब अधिक समय इस मंत्रके ध्यानमें लगे, चित्त एकाग्र हो तो उस योगीके स्वयं ही अपने आप तृप्ति होती है. संतोष बनता है, तो वह तृप्ति मानो एक अमृत है और उस ह्रीं अक्षरसे मोक्ष मिलता है, वह अमृतवत् गीला होता है और यह तालूके छिद्रसे जो मस्तिष्क के बीच अत्यन्त पतला स्थान होता है, जैसे कि छोटे बच्चोंके सिरके बीच वह कुछ लोंकता हुआसा स्थान रहता है जिस बीच तेल डालकर कुछ ठंढाईका अनुभव करता है तो उस स्थान से वह चल रहा है और वहाँ फिर प्रवेश कर रहा है और उस ही रंध्र स्थानसे चलकर भौहों में स्थिर रहता है, अपने इस ह्रीं मंत्रको मुखके समस्त स्थानोंमें विचारता हुआ निरखता है और फिर देख रहा है कि यह शाश्वत ज्योतिके समान अचिन्त्य जिसका प्रमाण है, बहुत बड़े विस्तार वाली ऐसी लम्बाईमें चित्त लगा रहा है।

"**ह्रीं मंत्रसे अमृतस्रवण**—यहाँ ध्यानकी प्रक्रिया की जा रही है। इसमें एक समझने की बात यह है कि ह्रीं एक ऐसा बीजाक्षर है कि इसमें क्या-क्या तत्त्व बसे हैं इसको हम आप बता नहीं सकते हैं, पर थोड़ा-थोड़ा कुछ जो समझा है यह ह्रीं चतुर्विंशक तीर्थंकरोंका बोधक है जो कि उन अक्षरोंमें, अंकोंमें जो संकेत है उनसे मालूम होता है। यह ह्रीं ॐ की ही भांति समस्त श्रुतका प्रतिनिधिरूप अक्षर है और इसमें जो जो कुछ पूज्य तत्त्व हैं उन सब तत्त्वोंका समारोह है, इनका प्रभाव और इनका अर्थ, इनका संकेत प्रतिपादन किया जानेसे परे है, ऐसा यह माया वर्ण ह्रीं का चिन्तन यह योगी पुरुष कर रहा है। उसने अपने इस मुख-कमलमें इतना विराटरूप सोचा है कि कमल है, ८ पत्र हैं, उनपर यह मुख्य मंत्र बसा हुआ है—ॐ णमो अरहंताणं और उसकी कर्णिकामें ह्रीं मायावर्ण स्थिर है, इस मंत्रको जैसा चलावो चल रहा है, इस तरह बहुत देर तक ध्यान करनेके प्रसादसे सन्तोष होता है, सो मानो यह अमृत को झराता हुआ ही ह्रीं वर्ण विराजा है।

वाक्पथातीतमाहात्म्यं देवदैत्योरगार्चितम् ।
विद्यार्णवमहापोतं विश्वतत्त्वप्रदीकम् ॥१९६३॥

अष्टाक्षरी मंत्रकी महामहिमताके प्रकरणमें ध्यानके दृढ़ संकल्पकी प्रेरणा—इस मंत्र का माहात्म्य वचनातीत है, इसको देव, दैत्य, नरेन्द्र पूजते हैं। यह मंत्र विद्यारूपी महासमुद्रके तिरनेके लिए महान जहाजके समान है और यह जगतके समस्त पदार्थोंको दिखानेके लिए एक प्रदीप है। जिसने अपने आपमें अपने आपका मर्म पहिचाना वह योगी पुरुष अपनी साधनाके बीच जिस किसी भी प्रकार यंत्र तंत्र मंत्रका आराधन करता है। उसके उन समस्त प्रक्रियावों

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

में वह ज्ञानज्योति प्रगट हुई है, क्योंकि मूल कार्य था अपने आपके स्वरूपका सही परिचय पा लेना, वह पा चुका है यह ज्ञानी। अब चित्तकी स्थिरताके लिए ध्यानकी प्रक्रियामें अपना उपयोग बनाया है। मुख्य बात यह है कि हित चाहने वाले पुरुषको अपना लक्ष्य दृढ़ और निर्णीत कर लेना चाहिए। यद्यपि कर्मोंका उदय कुछ ऐसा ही विचित्र है कि हम अपने लक्ष्य पर टिक नहीं पाते, जम नहीं सकते, यत्र तत्र चलना पड़ता है, निरखना पड़ना है तिसपर भी जब कोई समय आता है कुछ समस्यायें सुलझानेका, एक निर्णय बनानेका तो उस समय वह लक्ष्य ही दृष्टिमें रहे, इतनी श्रद्धा होनी चाहिए। कितनी ही दूर पहुंच जाय, कितने ही झंझटों में आ जाय लेकिन भीतरमें यह धारणा वासना बनी ही रहनी चाहिए कि मेरेको मेरे करनेके लिए एक आत्मानुभवका ही काम पड़ा है जो कि अनिवार्य है और सच्चा है। जैसे कोई पुरुष मकान बनवाता है तो उसका लक्ष्य एक है—मकान बनवानेका, लेकिन उस बीच उस ही प्रसंगमें पचासों काम और भी तो करने पड़ते हैं। नक्शा बनवाना, पास कराना, ईंट, रोड़ी आदिका प्रबंध कराना, लोहा, सीमेन्ट आदिका प्रबंध करना, मजदूरोंका प्रबन्ध करना, उनका हिसाब-किताब रखना, यों अनेक काम करने पड़ते हैं, पर लक्ष्य उसका ये सब करनेका नहीं रहता। लक्ष्य तो एक है—मकान बनवानेका। चाहे वह किसी दिन केवल ईंटोंके प्रबंधमें ही रहे अथवा सीमेन्टके लिए ही बड़ी-बड़ी दौड़ धूप दिन भर करता रहे फिर भी उसका लक्ष्य वे कार्य करनेका नहीं है। उसका लक्ष्य तो है मकानके बनवानेका। तो जैसे लक्ष्य तो एक हुआ और अलक्ष्य पचासों हुए, इसी प्रकार जो ज्ञानी विवेकी पुरुष होते हैं उनका लक्ष्य एक ही रहता है, वह क्या ? ज्ञानानुभव करना, आत्मस्वभावका दर्शन करना, उसमें ही मग्न होना।

ज्ञानीका सुलक्ष्यपूर्तिका सम्बन्ध—अब निरखिये जो जो कुछ भी वह ज्ञानी काम कर रहा है वे सब काम किसी न किसी अंशमें इस लक्ष्यकी पूर्तिका सम्बंध बना रहे हैं। एक गृहस्थ विवाह करके पत्नी सहित रह रहा है तो उसका मुख्य लक्ष्य क्या है ? उसका लक्ष्य है कि यह मेरा उपयोग यत्र तत्र अन्य अनेक स्त्रियोंमें न भटके और अन्य समस्त परस्त्रियोंसे मेरी निवृत्ति हो जाय, ऐसा उसका लक्ष्य है। बहुतसे झंझटोंसे हटकर केवल एक ही यह झंझट रह गया, इससे भी कभी परिणामोंने पलटा खाया तो दूर हो लेंगे और अपने आपके ब्रह्मस्वरूपमें लीन हो सकेंगे। ऐसा जिसने भी लक्ष्य बनाया है वह गृहस्थी के अनेक झंझटों के बीचमें रहता हुआ भी संक्लिष्ट नहीं होता। उसका तो लक्ष्य ही दूसरा बना हुआ है। वह विवेकी गृहस्थ मुख्य रूपसे चाहता तो यह था कि निःसंग होकर सबसे निराला रहकर अपने आपकेआत्मतत्त्वमें अपने उपयोगको बसाये रहूं और निरन्तर आत्मीय आनन्दसे तृप्त होता रहूं, किन्तु उदयवश ऐसा न हो सका, और मैं इस मार्गसे मैं कहीं विचलित न हो जाऊँ, इसके लिए श्रावक धर्मको अंगीकार किया। अब इस श्रावक अवस्थामें रहकर ये आजी-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विकादिके कर्तव्य पड़े हैं, नहीं तो काम कैसे चलेगा, तो आजीविकाका कार्य भी करना पड़ता है, पर भावोमें अन्यायकी बात नहीं आ पाती, क्योंकि अन्यायसे धन कमाकर लोगोको सता कर वैभव जोड़ें, इसके मुकाबले तो यह ठीक समझ रहा है कि मैं इस गृहस्थीके झंझटका ही परित्याग कर दूँ। सभी जीवोंके साथ उनके कर्म लगे हुए हैं—उनके तो उनके अनुसार बात होगी। क्या प्रयोजन पड़ा है, इतनी तैयारी वह अपने आपमें बनाये हुए हैं, इस कारण वह अन्यायकी प्रवृत्ति नहीं करता है। तो किन्हीं न किन्हीं अंशोंमें आजीविका करनी पड़ती है, पर उस श्रावकका सम्बन्ध अपने लक्ष्यसे बना हुआ है। जैसे कोई बालक पतंग उड़ाता है तो सारी डोर तो उसके हाथमें है, पतंग आकाशमें बहुत दूर पर है, जब वह उस डोरको ढीला करता है तो पतंग और भी ऊँचे चढ़ जाती है, पर उसके चित्तमें यह बराबर बना हुआ है कि यह सब काम तो मेरे हाथमें है, तो इसी प्रकार यह श्रावक भी तत्त्वाभ्यासमें इतना कुशल बन गया है कि गृहस्थीके इन सब कार्योंको करते हुए भी एक यह साहस बनाये है कि मेरी बात तो मेरे हाथमें ही है सब। जब चाहूं तब अपने आपका हित मैं पूर्णरूपसे कर सकता हूं। तो यह योगी पुरुष अपने आपके उस महान लक्ष्यको बनाये हुए है, उस ज्ञानस्वरूप का परिचय पाये हुए है तो इन मंत्रोंके ध्यानमें भी वह अपना ही विकास निरख रहा है।

अमुमेव महामन्त्रं भावयन्नस्तसंशयः।
अविद्याव्यालसंभूतं विषवेगं निरस्यति ॥१९६४॥

अष्टाक्षरी महामंत्रके ध्यानसे अविद्या सर्पविषका निरसन—इस महामंत्रको संशयरहित होकर ध्यान करने वाला मुनि अविद्या व्यालसे उत्पन्न हुए विषवेगको दूर करता है। ज्ञानका विकास होता है तो रटनेसे या जो जो भी विधियां आजकल प्रचलित हैं उन विधियोंसे ज्ञान विकास नहीं होता। हो तो रहा नोकर्मसे, नोकर्म बन रहे हैं, पर मूल बात तो विशुद्धिकी है। यदि कोई पुरुष अपने चित्तको एकाग्र बनाये, समस्त परवस्तुवोंके जाननेकी हठको छोड़ दे, किसीको भी नहीं जानना है, सबका जानना छोड़कर बड़े विश्रामसे अपने आपमें अपने उपयोगको स्थिर कर लें तो ऐसे विश्रामके समयमें स्वयं अपने आपमें ऐसी शक्ति विकसित होती है कि वहीं ही एक अद्भुत ज्ञानप्रकाश होता है और उसमें ऐसा बल भी आ जाता है कि चारों ओरके अनेक परपदार्थोंको बिना ही चाहे, बिना ही जिज्ञासा किए जान लें। ज्ञान विकासका अमोघ साधन अपने आपके स्वरूपमें केन्द्रित होकर विश्राम करना है, न कि अन्य अनेक परिश्रमोंसे यह ज्ञान कमाया जा सकता है। तो इस मंत्रध्यानमें वह योगी यही तो कर रहा है। सर्व ओरसे चित्त विकल्प हटाकर अपने आपमें लीन हो रहा है तो फिर ऐसा बल प्रगट होता है कि समस्त अज्ञान अंधकार इसके दूर होते हैं और उस ज्ञानप्रकाशमें विशुद्ध आत्मीय आनन्दकी तृप्तिसे तृप्त रहता है। सारा दुःख तो परद्रव्योंसे राग करनेमें है, वह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बात मिटी कि सारे कष्ट एकदम शान्त हो जाते हैं, इसी उपायमें यह मंत्र प्रक्रियाकी बात बतायी जा रही है।

इति ध्यायन्नसौ ध्यानी तत्संलीनैकमानसः।
वाङ्मनोमलमुत्सृज्य श्रुताम्भोधिं विगाहते ॥१९६५॥

इस योगीने अपने मुखके स्थानपर कान्तिमान कमलकी स्थापना की है और उसके ८ पत्रोंपर ॐ णमो अरहंताणं ये ८ शब्द लिखे हैं। यह अष्टाक्षरी मंत्र बड़े महान आशयको प्रगट करता हुआ है। इसमें अरहंतप्रभुको नमस्कार किया है। संसारमें सर्वोच्च पद है तो यह अरहंत पद है। यद्यपि इससे उत्कृष्ट सिद्ध अवस्था होती है किन्तु गुणोंकी दृष्टिसे अरहंत और सिद्ध अवस्थामें कोई अन्तर नहीं है और फिर दूसरी बात यह है कि अरहंत परमात्मा का दर्शन हो सकता है और यहाँ मनुष्यलोकमें विहार करते हैं। उनके शरीरका आकार मनुष्योंका ही है ऐसी अनेक बातोंसे व्यवहारीजनोंसे निकटता होनेके कारण अरहंतपदकी उत्कृष्टतासे ज्यादा सम्बंधित है। तो अरहंत प्रभुके गुणस्मरणके साथ जहाँ वीतरागता उत्कृष्ट प्रगट है और सर्वज्ञता भी प्रगट है ऐसे उस परमपावन परमात्माके गुण स्मरणके साथ यदि अरहंतका जाप हो, इन शब्दोंका उच्चारण हो तो भक्त पुरुषके अनेक पाप इस भक्तिमें, इस वीतरागताके अनुरागमें ध्वस्त हो जाते हैं और फिर यह प्रणव मंत्र उस पल्लव सहित मंत्र है। इसकी कर्णिकामें ही मायावर्णकी स्थापना की है और वहाँ उस ह्रीं को अपनी एक सहज लीलाके अनुसार कभी मुखमें, कभी भौंहमें, कभी आकाशमें अत्यन्त दूर, कभी तालूके द्वारसे प्रवेश करता हुआ, कभी अमृत झराता हुआ उस ह्रीं का यह योगी चिन्तवन कर रहा है। योगी उस मंत्रके ध्यानमें सल्लीन होता हुआ, चित्तसे ध्यान करता हुआ वचन और मनके दोषोंको दूर करके शास्त्ररूपी समुद्रमें अवगाहन करता है। इस मंत्रध्यानसे वचनोंके दोष सब नष्ट होते हैं और मनके सब दोष नष्ट होते हैं। वचनोंके दोष और मनके दोष—ये ज्ञानके विकासमें भी बाधक हैं। जैसे अनेक लोग यहाँ पूछते हैं कि हमारा प्रभुभक्तिमें चित्त नहीं लगता, बहुत-बहुत अध्ययन करते हैं पर शास्त्रोंकी बातें समझमें नहीं आतीं। हमारे ज्ञान नहीं बढ़ता। तो ज्ञान न बढ़नेका यह भी कारण है कि हमारा व्यवहार वचन दोष और मन के दोषसे सहित रहता है। मन सरल रहे, किसीके अहितका चिंतन न रहे, किसी भी गुणीके प्रति द्वेषभाव न रहे, सर्व जीवोंमें एक समताका भाव रहे, किसीको विरोधी न मानें, जैसा यथार्थस्वरूप है वैसा जानकर समाधानरूप रहें और इसी बलसे वचनव्यवहार भी सबके प्रति हित मित प्रिय निकलें। यों वचन और मनके वैभवके कारण ज्ञानका भी विकास होता है, ज्ञानावरणका क्षयोपशम बनता है, तो यह योगी इस मंत्र ध्यानसे वचन और मनके दोषों को दूर करके शास्त्रोंमें अवगाहन करता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

ततो निरन्तराभ्यासान्मासैः षड्भिः स्थिराशयः ।
मुखरन्ध्राद्विनिर्यान्तीं धूमवर्ति प्रपश्यति ॥१९६६॥

ध्यानसाधनाके ६ माह निरन्तर अभ्यासीके अतिशय—इसके पश्चात् निरन्तर अभ्यास करके यह योगी पुरुष ६ माहमें अपने मुखसे निकली हुई धूमवर्तीको देखता है । ध्यानसाधनाके निरन्तर अभ्यासमें लगे हुए योगीके क्या-क्या अतिशय बनते हैं और उसमें क्या प्रभाव बनता है उसकी बात कुछ श्लोकोंमें की जायगी । यहाँ यह बतला रहे हैं कि ऐसे आन्तरिक ध्यानके प्रतापसे इस मायावर्णके ऐसे अद्भुत ध्यानसे ६ माह पश्चात् इतना निरन्तर अभ्यास होनेके बाद उसके मुखसे एक धूमवर्ती निकलती है ऐसा उसे कुछ दीखता है । इसका सम्बंध चूँकि पापके विध्वंससे है तो पापकर्मोंका ध्वंस जिन परिणामोंसे होता है उन परिणामोंके होनेपर एक अलंकारिक एक अतिशय इस प्रकारका होता है कि जो व्यवहारसे भी मेल खाता है, किसी पापके ईंधनके कुत्सित पदार्थोंके ध्वंस करनेसे, तो ऐसे अभ्यासके बाद यह योगी ६ माहमें धूम की एक छोटीसी पंक्तिको देखता है ।

ततः संवत्सरं यावत्तथैवाभ्यस्यते यदि ।
प्रपश्यति महाज्वालां निःसरन्तीं मुखोदरात् ॥१९६७॥

ध्यानसाधनाके वर्ष पर्यन्त निरन्तर अभ्यासीके अतिशय—तत्पश्चात् यदि एक वर्ष पर्यन्त और अभ्यास चले तो उस अभ्यार्थीके मुखसे एक स्वच्छ मनोरम स्वर्णवत् प्रकाशमय गुणोंकी ज्वालोको देखता है, उसके प्रतापकी महिमा दिखाई जा रही है । अन्तरङ्गमें उसने ऐसा प्रतपन किया कि जिसके प्रतापसे उसे इस १॥ वर्षके अभ्यासके पश्चात् यों दिखता है कि बहुत सुन्दर एक सूल्मरूपसे एक छोटीसी पंक्ति जैसे कि भगवानकी आरती करते हैं तो आरतीमें दीप शिखायें होती हैं उसकी तरह मुखसे एक अग्निकी ज्वाला दिखती है ।

(पदस्थध्यान वर्णन प्रकरण ३८)

ततोऽतिजातसंवेगो निर्वेदालम्बितो वशी ।
ध्यायन्पश्यन्नविश्रान्तं सर्वज्ञमुखपङ्कजम् ॥१९६८॥

परिनिष्ठित ध्यानीके सर्वज्ञका दर्शन—मायावर्णके चिंतनके १॥ वर्ष अभ्यासके पश्चात् जो मुखमध्यसे निकलती हुई निर्धूम कान्तिमान महाज्वालाका आभास होने लगा था, यह चिह्न है पापकलंकोंको ध्वस्त किए जानेका । इस मायावर्ण "ह्रीं" ध्यानके प्रतापसे चित्तको वश किया है योगीने, और अपने आत्माके स्वरूपका लक्ष्य तो था ही, तब यह सब एकाग्रता, यह सब आत्मविश्राम, ये सब उपचरित तपश्चरण–इन पापकर्मोंको ध्वस्त करता है और मोहके नष्ट हो जानेपर और अपने आपमें अपने आपके स्वरूपका सुसम्वेदन प्रत्यक्ष होते रहनेके कारण इस योगीने कैसे कि महान अनुराग उत्पन्न हुआ है । इस ध्यानी मुनिको सर्वज्ञका मुखकमल

http://sahjanandvarnishastra.org/

दिखता है अर्थात् इतनी धुनि वाला बन गया है कि इसे साक्षात् सर्वज्ञदेव विराजमान हैं इस प्रकार दर्शन होता है। जब किसी ओर ध्यान अधिक हो जाता है तो उसका आकार अपनेको स्पष्ट दिखने लगता है। यह तो एक पवित्र आत्माके ध्यानकी बात चल रही है लेकिन किसी भी पुरुषको जो जिसका बहुत अधिक ध्यान रखता है तो उसे स्वप्नमें भी वह दिखता है और जगती हुई हालतमें भी वह दिखतासा मालूम होता है। यहाँ योगी पुरुषको और काम ही क्या है ? इस मंत्रमें भी ध्यान सर्वज्ञदेवका ही किया गया है। तो इस अमोघ कलाके अभ्यासके बाद उसका चित्त इतना स्वच्छ और समाधानरूप बना है कि उसे सर्वज्ञदेवकी मुखमुद्रा दीखा करती है।

कितने ही पुरुष तो ऐसा कहते हुए पाये जाते हैं कि हमको तो यहाँ सर्प ही सर्प दिखते हैं। है कुछ नहीं, सुनने वाले हैरान हो जाते हैं। एक भाई अपने कमरेमें ही बना रहता है चुप-चाप। हम अनुरागवश उससे मिलने गए, उसने बहुत अच्छी तरहसे बातचीत की और बताने लगा कि हमको तो हर जगह सर्प ही सर्प दिखते हैं। खानेमें सर्प, पानी पीवें तो गिलासमें सर्प, बैठें तो आसनपर सर्प दिखते हैं, तो यह क्या है ? अरे किसी चिन्ताके कारण अथवा कोई ऐसी धुनि बन गयी, कोई ऐसी कठिन स्थिति आ गई कि कुछ बता भी नहीं सके, सह भी नहीं सके, ऐसी कठिन स्थितिके समयमें चित्तमें ऐसा भ्रम हो जाता है कि उसे ऐसा ही दिखता रहता है। तो यह तो भ्रान्त पुरुषकी बात कह रहे हैं और यहाँ निर्भ्रान्ति समाधानरूप संयमी पुरुष जो उसके लिए आदर्श बना है, श्रेय है, कल्याणरूप ही है और जिसे चाहा भी जा रहा है, जिससे हित भी बन रहा है, ऐसी जो अरहंत देवकी मूर्ति है, मंगलमय तत्त्व है उसका वह दर्शन करता है। कोई स्वप्नमें भगवंतकी मूर्तिका दर्शन करता और हर्षित होता है तो समझिये कि वह सब दर्शन एक शुभ बातको प्रगट करता है। समृद्धिरूप है, जिससे कि यह संतोष होता है ऐसा स्वप्नदृष्टाको कि मेरा भविष्य अब बहुत अच्छा है आदिक अनेक कारणोंसे स्वप्नमें भी यदि सर्वज्ञकी मुद्राका दर्शन हो तो कितना आनन्द होता है। इस योगीको इतना अधिक अनुराग था प्रभुसे कि उस साधनामें उसे सर्वत्र वही सर्वज्ञदेवकी मूर्ति दिखती है।

अथाप्रतिहतानन्दप्रीणितात्मा जितश्रमः।
श्रीमत्सर्वज्ञदेवेशं प्रत्यक्षमिव वीक्षते ॥१९६९॥

परिनिष्ठित ध्यानीके प्रत्यक्षकी तरह प्रभुका अवलोकन—अब इसके बाद वही ध्यानी जिसे अप्रतिहत आनन्द हो रहा है, जो एकाकी अपने आपसे ही बातें करता हो, अपने आपके गुणोंके ध्यानके प्रतापसे आनन्द पाता हुआ जो तृप्त रहा करता है, ऐसा यह योगी इसने सारे दुःखोंको जीत लिया है। दुःख होते हैं परदृष्टिसे। परदृष्टि जिसके नहीं रही, निरन्तर स्वकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दृष्टि बनी है, निरन्तर प्रभुके दर्शनकी ही जिसके धुन रहा करती है अब उसे और क्या दुःख है ? उसके न कोई महल है, न कोई परिवार है, न कोई निंदक है, न कोई प्रशंसक है, उसका तो केवल वही एक अंतस्तत्त्व है, ऐसा जो अपने इस एकाकी परमात्मस्वरूप तक पहुंचा है उस योगीको दुःख क्या है ? दुःख तो तब होता है जब कि परमें दृष्टि है। कहीं धन नष्ट न हो जाय, धन और मिलेगा या न मिलेगा, इस विचारमें दुःख है। दूसरा दुःख यह है कि लोग जीने की इच्छा करते हैं, मैं जी भी सकूंगा या नहीं, कहीं मेरा मरण तो न हो जायगा, ऐसा चित्त में भाव उठता है। तो दुःख तो ये दो ही प्रकारके हैं। धनमें सभी धन आ गए। उस योगीने तो किसी भी चीजकी आशा ही नहीं रखी है। वह तो जानता है कि बाह्यमें जो हो सो हो। मेरा जीना क्या और मेरा मरना क्या ? मैं तो अपने आपकी दृष्टिमें जैसा मैं परिपूर्ण सत् हूं वह बना रहता हूं, यहाँ न रहा तो किसी और जगह चल दिया। तो जिसके लिए एक आत्मा ही आत्मा है उसका मरण क्या ? मरण है मोही पुरुषोंका। मरणमें दुःख हुआ करता है मोह का। अब यह घर छूट गया, इसको कितनी कठिनाईसे बनाया था, अब ये परिजन छूट रहे, इनमें हमारा कितना अनुराग था, इनका हमपर कितना अनुराग था, पर ये भाई, यह स्त्री, ये पुत्र आज कोई भी मेरे साथ नहीं जा रहे हैं, मुझको यहाँसे सदाके लिए अकेला ही जाना पड़ रहा है, यह विकल्प है उस मोहीको, इस बातका दुःख है, मरणमें यह दुःख है, और कोई मरते समय अपना ध्यान ऐसा रखे कि यह मैं ज्ञानदर्शनस्वरूप आत्मा यह प्रत्यक्षमें जो आ रहा है वह तो कभी मरता ही नहीं है, उसका जीवन मरण क्या, वह तो सदा सर्व परसे भिन्न है, उसमें तो कोई क्लेश ही नहीं है, ऐसा चिन्तन करने वाला योगी अपनी विशुद्धिके अतिशयसे सर्व दुःखोंको जीत चुका है, उसे अब सर्वत्र सर्वज्ञदेवका ही साक्षात् दर्शन हो रहा है।

आत्मद्रष्टाकी सर्वज्ञदर्शनपात्रता—जो अपने आत्माको अधिकाधिक स्पष्ट निरख सकता है वह पुरुष भी प्रभुका साक्षात् दर्शन कर सकता है। समवशरणमें भी क्या किसीको परमात्माके दर्शन होते हैं ? जाते इतने लोग हैं, लाखों पुरुष पहुंचते हैं, उस समवशरणमें पहुंचकर भी उस गन्धकुटीमें विराजमान चारों ओर जिसका मुख दिखता है ऐसे उस शरीरको निरखकर भी परमात्माका दर्शन क्या सबने कर लिया ? किसी बिरले ही पुरुषने परमात्माका दर्शन किया। आत्मदर्शनमें जिसका अभ्यास बढ़ा हुआ है ऐसा ही पुरुष वहाँ परमात्माका दर्शन करता है। तो इस योगीने सुसम्वेदन प्रत्यक्षसे अपने आत्माका बहुत-बहुत प्रतिभास किया, अभ्यास किया, जिसके कारण अब इसे सर्वज्ञदेवका प्रत्यक्ष अवलोकन होता है। लो कोई प्रतिमूर्ति देखा तो दूसरेका कैसा स्पष्ट स्मरण होता है ? तो भगवानकी प्रतिमूर्ति है यह मैं स्वयं आत्मा। वह योगी इतना अभ्यासी बना है कि भगवानके स्वरूपकी प्रतिमूर्ति रूप अपने आत्मा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

का दर्शन पुनः पुनः कर रहा है। अपने आत्माका भी स्पष्ट अवलोकन करता है वह योगी और प्रभुका भी स्पष्ट अवलोकन कर रहा है। जिसका मन ऐसा बन गया है, जिसका उपयोग ऐसा बन गया है अब उसे संसारमें क्या चाहिए ?

सर्वातिशयसम्पूर्णं दिव्यरूपोपलक्षितम् ।
कल्याणमहिमोपेतं सर्वसत्त्वाभयप्रदम् ॥१९७०॥

परिनिष्ठित ध्यानी द्वारा सर्वातिशयसम्पूर्ण दिव्यरूपोपलक्षित प्रभुका अवलोकन— यह योगी सर्वज्ञका किस रूपमें ध्यान कर रहा है, किस रूपमें प्रत्यक्ष निरख रहा है ? यह सर्वज्ञ देव सर्व अतिशय परिपूर्ण है, स्वयंमें जिसके अतिशय प्रगट हुआ है वह प्रभु अतिशयका भी परिज्ञान करते हैं। जिनमें कुछ अतिशय हो वे महान अतिशय वालेका भी अंदाजा लगा सकते हैं, पर जो स्वयं विषयकषायोंमें लीन हैं, आत्माकी धुनसे रहित हैं वे प्रभुके अतिशयको क्या समझें ? तो इस योगीके विशुद्ध आत्मामें स्वयं ऋद्धि सिद्धि और अतिशय उत्पन्न हुआ है, वह योगी प्रभुको भी सातिशय सम्पूर्ण निरख रहा है। कैसे सर्वज्ञदेवका अवलोकन वह योगी करता है जो दिव्यरूपसे उपवासित हैं, अन्तरङ्गमें भी दिव्यरूप है, प्रकाशमय एक सम्यग्ज्ञान ज्योति है, वही अपना देव है और अन्तरङ्गमें भी परमौदारिक शरीर अतिशयको दिव्यज्योति प्रगट करता है। बाहर भी देदीप्यमान और अन्तरङ्गमें भी अतिशय देदीप्यमान ऐसे सर्वज्ञदेव का यह योगी अवलोकन करता है।

परिनिष्ठित ध्यानी द्वारा पञ्चकल्याणकमहिमोपेत प्रभुका दर्शन—कैसे हैं वे प्रभु ? जो पंचकल्याणक की महिमा सहित हैं। भगवानके अंतरङ्ग स्वरूपका भी यह बारबार अवलोकन करता है। तो जो पुरुष उत्कृष्ट अन्तरङ्ग ध्यानको करता है वह बहिरंग अतिशयके ध्यान भी करता है और इस प्रकार अदल बदलकर ध्यान करनेमें अन्तरंग ध्यानके प्रसादसे परम अमृततत्त्वकी प्राप्ति करता है। ये प्रभु पंचकल्याणककी महिमासहित हैं, गर्भकल्याणक में ६ महीना पहिलेसे ही जहाँ रत्नवृष्टि हुई थी, जन्मकल्याणकके समय—जैसे बच्चेके जन्म के समय तो दाइयां बच्चेको नहला देती हैं, पर प्रभुके जन्मकालमें स्वर्गोंसे इन्द्र आते हैं और वे बड़ी महिमासहित ले जाकर मेरु जैसे उच्च स्थानपर स्थापित कर वे स्वयं नहान करते हैं। कितना जन्मकल्याणक उत्सव मनाया गया। दीक्षाकल्याणकका तो दृश्य ही अपूर्व होता है। दर्शकोंका चित्त वैराग्यसे पूर्ण होता है। वे प्रभु कैसे इस समस्त वैभवको, इस समस्त आकर्षण को; जिन प्रभुके प्रति माता पिता, बन्धु, मित्र, परिवारके लोग पुरवासी सभी लोग, देवता तक भी जिनकी मुखमुद्राको प्रसन्न रूपमें निरखना चाहते थे, लो अब ये सबका परिहार करके, सबका विकल्प तोड़कर, किसीको भी कुछ न निरखकर अपने आपके अंतस्तत्त्वमें मग्न होनेकी धुनि बनाये हुए हैं, यहीं वे परमविश्राम पा रहे हैं। दीक्षाकल्याणककी इन घटनाओंको

Report any errors at vikashd@gmail.com

निरखकर दर्शक भी ज्ञान और वैराग्यसे प्रेरित होकर अमृततत्त्वका पान करता है। ज्ञान-कल्याणककी महिमाको कौन कहे, जिसे ज्ञानका साम्राज्य मिल गया, जिसके ज्ञानमें समस्त लोकालोक स्पष्ट झलक रहा है वह तो अद्भुत साम्राज्य समझियेगा। ज्ञानकी सम्पूर्ण सम्पदा उनके ज्ञानसाम्राज्यमें आ गयी है। अरे तीनों लोककी संपदा, समस्त पदार्थोंका अस्तित्त्व जिनके ज्ञानमें झलकता है वे सर्वसम्पन्न हैं। जिसके थोड़ा ज्ञान होता है उसीके परवस्तुवोंमें राग रहता है, पर जिन प्रभुके पूर्ण ज्ञान प्रगट हुआ है उनके तो किसी भी परपदार्थमें राग करने का अवकाश ही नहीं रह गया है। ज्ञानके उत्पन्न होते ही सम्पूर्ण राग नष्ट हो गया था। ऐसी मोक्षकल्याणककी भी महिमाका ध्यान करता हुआ यह योगी सर्वज्ञदेवका साक्षात् दर्शन कर रहा है। यह प्रभु समस्त जीवोंको अभयदान देने वाले हैं। करते कुछ भी नहीं, पर देखो कितना बड़ा अभयदान है कि सिंह, गाय, सर्प, नेवला, बिल्ली चूहा ये सब एक जगह बैठे हुए हैं। मनुष्य मनुष्य भी किसीसे आपसमें वहाँ बैर विरोध नहीं रखा करते। कितना अभय बर्षाया है सर्वज्ञदेवने। उनके समवशरणसे ये सब आश्चर्य प्रगट हुए हैं। बड़ी महिमा सहित सर्वज्ञदेवका यह योगी अवलोकन करता है।

प्रभावलयमध्यस्थं भव्यराजीवरञ्जकम् ।
ज्ञानलीलाधरं वीरं देवदेवं स्वयंभुवम् ।।१९७१।।

परिनिष्ठित ध्यानी द्वारा प्रभावलयमध्यस्थ ज्ञानलीलाधर प्रभुका अवलोकन—जो सर्वज्ञदेव इसकी दृष्टिमें आ रहे हैं वे किस रूपमें हैं? प्रभावलयके बीचमें चारों ओर प्रभाकांति है, उस मण्डलके बीचमें स्थित है, भव्यरूपी कमलोंको जाज्वल्यमान कर रहे हैं, जिसके संगसे भव्यजन प्रसन्न हो रहे हैं। उन सर्वज्ञ देवके सर्वविश्वको जानने वाला ज्ञान उत्पन्न हुआ है सो वह विशिष्ट लक्ष्मी वाले हैं। आत्मामें जो कुछ विभूति है वह सर्व कुछ जिसके विकसित हो गयी है ऐसा स्वयंभू अर्थात् अपने आपके स्वभावमेंसे ही स्वयं परिपूर्ण प्रगट हुआ ऐसे देवाधिदेव सर्वज्ञदेवका अवलोकन कर रहा है यह योगी। वह जान रहा है कि यह प्रभु यहाँ वहाँकी चीजोंके संचयसे नहीं बने हैं। कुछ चीजोंको मिला-जुलाकर भगवान गढ़े गए हों ऐसी बात नहीं है किन्तु वह आत्मा अनादिसे ही अपने ही सत्त्वके कारण ऐसा ही था, जरा विभावोंसे, कर्म नोकर्मके मेलसे छुपा हुआ था। जब अपने आपके ज्ञानस्वरूपको सम्हाला तो ये सब मल दूर हो गए, और अब ये नाथ स्वयं अपने आप जैसे थे वैसे प्रगट हुए हैं, इस प्रकार सर्वज्ञ देवके दर्शन कर रहा है यह योगी।

ततो विधूततन्द्रोऽसौ तस्मिन् संजातनिश्चयः ।
भवभ्रममपाकृत्य लोकाग्रमधिरोहति ।।१९७२।।

परिनिष्ठित योगीका परिनिर्वाणलाभ—अब इस साधक अवस्थामें ही तत्पश्चात् ऐसे

http://sahjanandvarnishastra.org/

इस यंत्र मंत्रका ध्यान करने वाला योगी समस्त परिणतियोंको नष्ट करके तथा जो कुछ सर्वज्ञका स्वरूप इस ध्यानमें ध्याया है उसका पूर्ण निश्चय करके, समस्त भ्रमको दूर करके, संसारके भ्रमणको नष्ट करके अब यह स्वयं सर्व कर्मोंसे रहित होकर लोकके अग्र भाग पर अवस्थित हो जाता है। सदाके लिए संसारके समस्त संकटोंसे छुटकारा पा जाता है। एक इस मंत्रके ध्यानके माध्यमसे परमार्थ तो अपने स्वरूपके ही प्रबल ध्यानसे यह योगी मुक्त हुआ है और ऐसे इस ध्यानके सम्बन्धको लेकर वर्णन किया है। यों इस योगीने मुखकमल में अष्टदल कमल बिचारा। इन ८ अक्षरोंकी स्थापना की। कर्णिकामें सोलह पदोंकी स्थापना की। ह्रीं वर्णका ध्यान किया, चित्तको एकाग्र किया, आत्मविश्राम किया, सर्वज्ञके दर्शन किया और स्वयं ही स्वयंमें ध्यानस्थ होकर कर्मोंका नाश करके निर्वाणपद प्राप्त किया।

स्मर सकलसिद्धविद्यां प्रधानभूतां प्रसन्नगम्भीराम्।
विधुबिम्बनिर्गतामिव क्षरत्सुधार्द्रां महाविद्याम् ।।१९७३।।

'क्ष्वीं' सकलविद्याके स्मरणका आदेश—हे मुने ! समस्त सिद्धि विद्याका भी तू चिन्तवन कर। वह विद्या प्रधान है, प्रसन्न है, गम्भीर है, अनुबिम्बसे निकली हुई के समान जो झरती हुई सुधा है उससे आद्रित है, ऐसी वह महाविद्या 'क्ष्वीं' ऐसा अक्षर है। यह बीजाक्षर है। इस बीजाक्षर मात्राके उच्चारणसे भी कितनी ही सिद्धियोंका सम्बंध है। और उन अक्षरों में जिन तत्त्वोंका संकेत है उन तत्त्वोंकी पूज्यता होनेसे भी इन बीजाक्षरोंमें बल है। इसे सकल सिद्धविद्या कहते हैं।

अविचलमनसा ध्यायंल्ललाटदेशे स्थितामिमां देवीं।
प्राप्नोति मुनिरजस्रं समस्तकल्याणनिकुरम्बम् ।।१९७४।।

ललाटदेशमें स्थित 'क्ष्वीं' विद्याके ध्यानका फल समस्त कल्याणलाभ— अविचलमन होकर ललाट देशमें इस विद्या देवीका ध्यान करता हुआ पुरुष समस्त कल्याणके समूहको प्राप्त होता है। प्रथम तो जितने भी अक्षर हैं वे समस्त श्रुतदेवताके प्रतिनिधि हैं और इसीलिए मंत्रोंमें अक्षरोंकी भी पूज्यता है। श्रद्धालु पुरुष अब भी प्रत्येक अक्षरोंका महत्व मानते हैं और किसी भी लिखे हुए अक्षरपर पैर धरकर नहीं चलते ! अब तो कुछ यह बात कठिन-सी बन गयी है। नीचे जमीनपर फर्श पर नाम लिखे रहते हैं, कोई जाने वाला कहांसे बचकर जाय ? और लिखा भी ऐसी जगह जाता है कि जहाँसे लोगोंके पैर निकलें तो दृष्टिमें तो आये लेकिन जिन श्रद्धालु पुरुषोंको एक एक अक्षरका भी महत्त्व चित्तमें है ऐसे पुरुष अब भी यत्र तत्र मिलते हैं जो अक्षरोंपर पैर रखकर नहीं निकला करते हैं। उनकी दृष्टिमें प्रत्येक अक्षर परम तत्त्वका, परमात्मस्वरूपका, श्रद्धेयतत्त्वका वाचक है। तो वास्तवमें जो एक ऐसा अक्षर है जिसका उच्चारण भी संकेतको सूचित कर देता है ऐसे बीजाक्षरोंकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

साधनामें अनेक पृथक्-पृथक् देवी देवतावोंका उसमें हाथ है अर्थात् सिद्धि होती है। उसका मतलब क्या है कि जैसे किसी पुरुषके मनुष्य सहायक होते हैं, वे उसपर प्रसन्न होते हैं, प्रीति वर्षाते हैं तो कहीं देवता भी उसपर प्रसन्न होते हैं और प्रीति रखते हैं ? यद्यपि किसी भी योगीका यह ध्यान नहीं होता कि देवता कोई प्रसन्न हो और हमपर प्रीति रखे, मेरे अनेक कार्योंमें साधक हो, फिर भी जैसे किसान अन्नकी उपजके लिए ही खेती करता है पर उसे भुस साथमें प्राप्त होता ही है, इसी प्रकार योगी पुरुष एक अपने शुद्धभावसे मोक्षमार्गकी दृष्टिसे चित्त हमारा स्थिर हो और हम वहाँ एक सत्य विश्राम पायें जिससे आत्मानुभवकी स्फूर्ति हो, इस भावसे इन नाना मंत्रोंका भी ध्यान करता है, पर इसकी साधनामें यह बात एक भुसकी तरह बीचमें आ ही पड़ती है कि उनके देवी देवता भी रक्षक होते हैं और उनके कार्योंमें साधक होते हैं और विनम्र होकर उनकी प्रार्थना भी करते हैं।

अमृतजलधिगर्भान्निःसरन्तीं सुदीप्ता-मलकतलनिषण्णां चन्द्रलेखां स्मर त्वम्।
अमृतकणविकीर्णां प्लावयन्तीं सुधाभिः परमपदधरित्र्यां धारयन्तीं प्रभावम्॥१९७५॥

चन्द्रलेखा मन्त्रविद्याके स्मरणका आदेश—हे मुनि ! तू अमृत समुद्रसे निकलती हुई भली प्रकार देदीप्यमान ललाट देशमें स्थित अमृतकणोंको भी बिखेरती हुई और अमृतसे आद्रित करती हुई इस चन्द्रलेखाका स्मरण कर, क्योंकि यह विद्या मोक्षरूपी पृथ्वीमें अपने प्रभावको धारण करती है। मंत्रके रूपमें इनकी मुद्रा अक्षरोंकी भांति सीधे प्रकार न होकर इस प्रकार होती है कि वह मुद्रा ही अनेक बातोंका ध्यान करानेका कारण है। जैसे ॐ शब्द ही लीजिए तो सीधा तो उ स्वर लिखा जाय, उसके आगे रेखा, फिर शून्य, फिर अर्ध अनुस्वार। इस ॐ को एक ऐसी मुद्रामें लिखा जाता है कि जिसकी मुद्रासे ही अन्य-अन्य प्रयोजनीभूत तत्त्व प्रत्यक्ष में आते हैं। जैसे ॐ का वह ३ जैसा वर्ण एक व्यवहारका संकेत करता है और उसके आगे बिल्कुल सीधमें जो एक बड़ा बिंदु लगा रहता है वह आदि मध्य अंतरहित निश्चयनयको प्रगट करता है और इस ३ अक्षरके अंगमें और उस शून्यके बड़े बिंदुके बीचमें जो एक डंडा है वह प्रमाणताको सूचित करता है। यह व्यवहार अलग पड़ा रहे तो बेकाम और यह निश्चयनय अलग पड़ा रहे तो बेकाम। दोनोंको जोड़ने वाला वह प्रमाण है और फिर इस नय और प्रमाणका भली प्रकार ज्ञान करनेके बाद इन सबको छोड़कर जो अनुभव कलामें आता है, जो ॐ से भी ऊपर एक अर्द्धचंद्रकी तरह लगा है उस अनुभव कलामें आता है तो उसको फिर सिद्ध अवस्था प्राप्त होती है। जो शून्यके रूपमें रखा हुआ है तो इसकी मुद्रा भी अनेक तत्वों को प्रगट करती है। तो इस मंत्रमें भी एक चंद्र लेख है जिसके ऊपर बीजाक्षर लिखा होता है, इस प्रकार वह विशिष्ट देशमें उसका चिंतन कर रहा है। शरीरके उत्तम स्थानमें बीजाक्षरों को उत्पन्न कर ध्यानकी विशुद्धि प्रवृत्त होती है। यों जो मुनि इस चन्द्रलेखका स्मरण कर

http://sahjanandvarnishastra.org/

इस महाविद्या मोक्षमंत्रका ध्यान करता है, वहाँ ही अपनी आंतरिक दृष्टि बनाये रहता है ऐसा पुरुष समस्त कल्याणकी सिद्धिको प्राप्त होता है। ये सब प्रयोग चित्तकी स्थिरताके लिए हैं और साथ ही ऐसा प्रयोग है कि जो आत्मानुभवके पथसे विपरीत नहीं रहता है, वहाँ ऐसी पात्रता रहती है कि झट सर्व विकल्प टूट जाते हैं और वहाँ आत्मानुभवका अवकाश मिलता है।

एतां विचिन्तयन्नेव स्तिमितेनान्तरात्मना।
जन्मज्वरक्षयं कृत्वा याति योगी शिवास्पदम् ॥१९७६॥

आत्मविद्याके परिनिष्ठित ध्यानी अन्तरात्माके जन्मज्वरका क्षय—इस परम आत्मविद्याको जो समस्त अन्य पदार्थोंसे निराला एक इस ज्ञानप्रकाशका संकेत करता है उस परम तत्त्वका जो एक चित्त होकर ध्यान करता है वह जन्म ज्वरका क्षय करके मोक्षतत्त्वको प्राप्त होता है। जन्म है सो ही संसार है। कवियोंने प्रभुसे प्रार्थना करते हुए यह भी कहा है कि हे प्रभो! मेरा अब पुनः जन्म न हो। सीधे निर्वाण नहीं मांगा है। शायद निर्वाण कोई बड़ी चीज हो तो उसके देनेकी बात स्वीकार करनेमें देर न लग जाय, इससे यही कह दिया है कि हे प्रभो! अब मुझे पुनः जन्म न लेना पड़े—यह मैं आपसे मांगता हूं। यदि जन्म होगा तो मरण भी होगा। जन्म तो एक महारोग है, यही संसरण है। उपाय वह करना चाहिए कि पुनः जन्म न हो अर्थात् पुनः शरीर न मिले। शरीर न चाहिए न तो शरीरसे निराला अभी आप अपनेको सोच सकते हो। यदि यह स्थिति मिल सकी तो फिर शरीर न मिलेंगे और यदि आपको शरीर मिलते रहने की चाह है तो ठीक है, खूब शरीरसे प्रीति रखो, शरीर में बहुत बहुत आसक्ति रखो, शरीर मिलते रहेंगे। शरीर न मिले, मेरा निर्वाण हो, यह कैसे सम्भव है? इस शरीरको आत्मासे भिन्न निरखने लगो, यह सबसे सुगम औषधि है। और शरीर मिलते रहें यह कैसे सम्भव है? तो शरीर मिलते रहनेकी सबसे सुगम औषधि यह है कि इस शरीरमें आत्मीयताकी बुद्धि बनाये रहो। जो भी इस शरीरसे छुटकारा प्राप्त करना चाहता है उसका सर्वप्रथम कर्तव्य यही है कि इस शरीरसे निराला ज्ञानमात्र अपनेको अनुभव करे। जब शरीरसे भिन्न अपनेको समझ लेगा तो इसके प्रतापसे वह शरीरोंसे भिन्न हो सकेगा। इस जन्मज्वरका विनाश करनेके प्रयत्नमें योगी जन अपने आपको समस्त परभावोंसे न्यारा केवल ज्ञानज्योतिर्मय निरखा करते हैं।

यदि साक्षात्समुद्विग्नो जन्मदावोग्रसंक्रमात्।
तदा स्मरादिमन्त्रस्य प्राचीनं वर्णसप्तकम् ॥१९७७॥

'णमो अरहंताणं' सप्ताक्षरी मंत्रके ध्यानका आदेश—हे योगी! यदि तू संसारके दुःखोंसे, संयोगसे उद्वेगरूप हुआ है, दुःखी हुआ है तो तू आदिमंत्र जो पंचनमस्कार मंत्रमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रथम पद है, सप्ताक्षरी मंत्र है उसका ध्यान कर। णमो अरहंताणं–इन शब्दोंके उच्चारणके साथ जो अपने अन्तरके इतने अधिकारी हैं कि वह समवशरण सब सामने नजर आता हो और वहाँ वीतराग सर्वज्ञदेवकी मुद्रा भी दृष्टिमें आती हो, जहाँ चारों ओरसे देवी देवता गान तान नृत्य करते हुए सेवामें भक्तिमें आ रहे हो, जो स्थान इस पृथ्वीसे ऊपर है और जिनकी वीतरागताके कारण अनन्तचतुष्टय प्रगट हुआ है उन गुणोंका स्वरूप भी चित्तमें आये, ऐसी तैयारीके साथ यदि कोई णमोअरहंताणं शब्दका एक बार भी उच्चारण करता है तो उसके अन्दरमें बहुतसे मल दूर होते हैं, प्रसन्नता प्रगट होती है, शरीर रोमाञ्च हो जाता है, एक विलिक्ष अनुपम विशुद्ध आनन्दका अनुभव करता है। ध्यानमें भावोंकी प्रधानता है और श्रद्धा की प्रधानता है। तो हे मुने! यदि तू संसारकी पीड़ासे उस प्रकार उद्विग्न हुआ है तो तू अब इस आत्माका ध्यान कर, अरहंतदेवका स्मरण कर, उसकी शरण गह, उसके स्वरूपका ध्यान कर।

यदत्र प्रणवं शून्यमनाहतमिति त्रयम्।
एतदेव विदुः प्राज्ञास्त्रैलोक्यतिलकोत्तमम् ॥१९७८॥

प्रणव, शून्य व अनाहतकी त्रैलोक्यतिलकोत्तमता—इस प्रकरणमें जो प्रणव है शून्य और अनाहत ये ३ अक्षर हैं। इन ३ अक्षरोंको ही विद्वान पुरुषोंने तीनों लोकके तिलकके समान कहा है। ॐ ह्रीं इक शब्दोंमें यह मंत्र बसा है, पर इनकी मुद्रा इन दो अक्षरोंके बीच में एक शून्य बना हुआ है उस प्रकारकी है। एक है पंचपरमेष्ठीका वाचक मुख्यतासे और एक बीजाक्षर है चौबीस तीर्थंकरका वाचक। इस मंत्रके सहारे ध्यान करने वाले पुरुषका चित्त प्रभुभक्तिमें पहुंचता है और उस प्रभुभक्तिका यह प्रताप है। चित्त जब विशुद्ध होता है, प्रभुके स्वरूपकी भक्ति होती है, रुचि होती है तो उस समय उसके अन्य कुछ वाञ्छा न होनेके कारण वे सब कार्य सिद्ध हो गए समझिये, और फिर व्यवहारमें इस चित्त विशुद्धिके सम्बंधसे जो पुण्यरस बढ़ता, पापका क्षय होता उसके निमित्तसे भी इसके अनेक विघ्न संकट दूर हो जाते हैं। जो पुरुष बाहरी पदार्थोंमें सुधार बिगाड़का आशय रखकर उनके संचय और विग्रहका यत्न करता है वह पुरुष संकटोंसे दूर नहीं हो पाता। जैसे कि प्रायः सभी लोग अनुभव करते हैं कि एक संकट तो दूर नहीं हो पाता और दूसरा संकट सामने आ जाता है। वह संकट क्या है? केवल एक मनकी कल्पना। आप विचार करते हैं कि हम तो अब कुछ ही वर्षोंमें निवृत्त हो जायेंगे, लड़के समर्थ हो जायेंगे, लड़कीकी शादी भी हो जायगी, फिर तो हमारे पास कोई भी झंझट न रहेगा, धर्ममें ही अपना चित्त लगावेंगे, पर होता क्या है कि उन कार्योंसे छुट्टी पानेके बाद लड़कोंके जो संतान हो जाती हैं उनकी सम्हाल करनेकी बात आ जाती है, यों दसों संकट फिर सामने आ जाते हैं, और आप यह अनुभव करते हैं, कि यह संसार दुःखोंका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

घर है। एक दुःखसे छुटकारा पाया कि अनेक दुःख सामने आ खड़े हुए। तो यह जीव रागवश स्वयं उनमें प्रवृत्ति करता है और रागप्रवृत्तिका फल यह है कि वे संकट सामने आते हैं। यह रागप्रवृत्ति इस प्रभुभक्तिमें, मंत्रध्यानमें चित्त विशुद्धिके कारण दूर होती है और इसके संकट भी नष्ट हो जाते हैं।

नासाग्रदेशसंलीनं कुर्वन्नित्यंतनिर्मलम्।
ध्याता ज्ञानमवाप्नोति प्राप्य पूर्वं गुणाष्टकम् ॥१९७९॥

ध्येयतत्त्वके नासाग्रदेशसंलीनतया ध्यानीके पूर्णज्ञानावाप्ति—ध्येय तत्त्वका इस प्रकार ध्यान करें जिससे नासिकाके अग्रभागमें, इसकी दृष्टि लीन हो जाय। ध्यानी पुरुषको कहीं नाक के अग्रभागको देखना नहीं पड़ता। जैसे वर्णन किया है कि नासग्रदृष्टि ध्यानमें लाये अर्थात् आँखें नाकके अग्रभागको देखें, इस प्रकार ध्यान बनायें तो कहीं उसे देखना नहीं पड़ता कि नासिकाके अग्रभागको खूब ध्यानपूर्वक देखते रहें। यों सिद्धि नहीं होती, पर जिसका ध्यान तत्त्वमें लग जाता है उसकी यह मुद्रा सहज बन जाती है। तो इस प्रकार दृष्टिसे जो अत्यंत निर्मल तत्त्वका ध्यान करता है वह पुरुष अष्टगुणोंको प्राप्त करता हुआ, अणिमा, महिमा आदिक अष्ट ऋद्धियोंको प्राप्त करता हुआ उत्तम ज्ञानसे केवलज्ञान भी प्राप्त करता है।

परमविश्राम—सर्व ओरसे अपने उपयोगको हटाकर अपने आपके तत्त्वमें सीधा यदि लग जाय तो उत्तम ही है। जैसा सहज ज्ञानस्वरूप है अपना, उसमें उपयोग लीन हो जाय तो यह तो सब ध्यानोंमें महाध्यान है। इसमें कोई मुद्रा नहीं बनाना, कोई चिंतन नहीं करना, किसी प्रकारके अन्य अवयवोंसे साधना नहीं करनी, यह भी होता है योगियोंके कभी-कभी, पर जब इसकी बात अधिक देर नहीं जमती है तो अनेक बीजाक्षरोंके मंत्रके ध्यानके माध्यमसे यह योगी अपने चित्तको स्थिर करता है और उस स्थिरताके प्रसंगमें आत्मा विश्राम करता है। वह आत्मविश्राम महत्त्वकी चीज है। लोग जब थक जाते हैं तो आराम किया करते हैं, लेकिन यह मन कितना थका हुआ है, न जाने कहाँ-कहाँ दौड़ लगाते-लगाते थक गया है, फिर भी इसे लोग विश्राम नहीं लेने देते। मनका विश्राम यही है कि मनसे किसी भी बातका चिंतन न हो, कोई भी वस्तु मनमें न आये, ज्ञानमें न आये, ऐसा विश्राम मनको मिले, ज्ञान को भी मिले तो इसे जो संसारके संतापकी थकावट हुई है उससे छुटकारा मिल सकता है, ऐसे विश्रामका कोई प्रोग्राम भी नहीं बनाना चाहता, सोचता भी नहीं चित्तमें। जैसे सुख शान्तिके अन्य दशों उपाय सोचे जाते हैं इस तरहसे सुख शान्तिके लिए कोई यह उपाय नहीं सोचता कि मुझे तो ऐसी स्थिति चाहिए जहाँ किसी भी परपदार्थका ख्याल भी न हो, चिंतन न हो, विकल्प भी मिट जायें। कोई ऐसा यदि प्रोग्राम बनाता है तो इसपर उसका अमल भी हो सकता है। जिसके मनमें जो बात बहुत-बहुत आती है उसका वह काम सफल भी जरूर होता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है। तो जो अपने आपका ऐसा परमविश्रामका प्रोग्राम बनाये तो उसे ऐसा अवसर प्राप्त होगा ही जिसके चित्तमें विश्रांति प्राप्त हो। थक गये, दुःखी हो रहे हैं, विकल्प मच रहे हैं, बड़े ख्याल आ रहे हैं, बड़े संकट आ रहे हैं, शोकमग्न हो रहे हैं, इतनी तो थकान कर रहे हैं और उस थकानको मेटनेका उपाय दिलकी थकान बढ़ाना ही सोच रक्खा है, और विकल्प करना, और समागम जोड़ना, अन्य सुख साधन जुटाना आदि। तो जिससे दिलमें थकान हुई है उसी को उस थकानके मेटनेका उपाय समझ रखा है। पर इनसे वह थकान नहीं मिटती, वह दुःख दूर नहीं होता। इस मनकी थकानको मिटानेके लिए तो तत्त्वज्ञान चाहिए। अपने इस शून्य स्वरूपमें जहाँपर कोई भी रागद्वेषादिक दूसरी बातें नहीं हैं उसको संकेत करके कहा जा रहा है कि जहाँ कुछ भी नहीं है ऐसे उस शून्य तत्त्वका ध्यान करें। तो इन ३ अक्षर वाले इस मंत्रमें ३ की तरफ तो ध्यानके विषय प्रभु हैं और बीचमें वह शून्य है कि जहाँ उपयोगको टिकाये तो मनमें कुछ भी बात न आये, शून्य हो जाय। ऐसे रागादिक शून्य अंतस्तत्त्वके ध्यानके प्रसादसे आत्माके समस्त विघ्न संकट दूर हो जाते हैं।

शङ्खेन्दुकुन्दधवला ध्याता देवास्त्रयो विधानेन।
जनयन्ति सर्वविषयं बोधं कालेन तद्ध्यानात् ॥१९८०॥

देखिये इन तीन देवोंमें एक शून्यको भी देव माना गया है, शून्यका भी महत्त्व है। अक्षर क्या करना चाहता है? किसी तत्त्वका बोध कराना चाहता है। अक्षरका यही तो प्रयोजन है और शून्यका भी यही प्रयोजन है। शून्यका अक्षर यह संकेत करता है कि जो रागादिक समस्त विकारोंसे रहित है, जिस सहज तत्त्वका न आदि है, न मध्य है, न अंत है। शून्य बना हो तो क्या आप उसमें यह बता सकेंगे कि इसका बनना किस जगहसे शुरू हुआ है? नहीं बता सकते। तो इसी प्रकार यह जो अपना शाश्वत चैतन्य ज्योति है उसका न आदि है, न मध्य है और न अंत है। यह शून्य उस शाश्वत अंतस्तत्त्वका बोध कराता है। तो शून्य भी देवता है। एक वह भी बीजाक्षरोंकी तरह तत्त्वका ध्यान कराने वाला है। यह शून्य गोल बनाया गया है। अंग्रेजीमें गोल ध्येयको कहते हैं। इसका आकार गोल है और यह भी गोल है। एक ध्येय है, एक लक्ष्य है, और फिर ध्यान साधनाके बीच इस शून्यका ध्यान करनेसे, इसपर दृष्टि रखनेसे चित्तकी एकाग्रता भी होती है। यों रागादिक दोषोंसे भी शून्य विशुद्ध ज्ञानस्वरूप अंतस्तत्त्वका जो ध्यान है उस ध्यानसे कितने ही कालके संचित विषयोंके समूहको खिराने वाला केवलज्ञान उत्पन्न होता है। केवलज्ञान सुनकर इसकी महिमा जानकर कि इसका इतना प्रताप है कि तीन लोक और तीनों कालके समस्त पदार्थ स्पष्ट ज्ञात होते हैं, यह बात सुनकर जी भर आता है। ज्ञान है तो यही है और ऐसा ही ज्ञान मुझे प्राप्त हो। लेकिन ऐसी जो वांछा करता है उसके वीतरागतामें रुचि घट गयी, किन्तु एक धन वैभवकी तरह एक ज्ञानवैभवपर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उसकी रुचि हो गई है। योगी पुरुष सर्वज्ञताकी चाह नहीं करते, किन्तु रागरहित अवस्थाकी चाह करते हैं, और भी आगे चलकर सोचिये। रागरहित अवस्थाकी भी चाह नहीं करते, किंतु अपने आपमें जो सहज स्वरूप है, यथार्थ तत्त्व है उस तत्त्वका ज्ञान बनाये रहनेकी ही चाह करते हैं, अथवा वे कोई चाह ही नहीं करते हैं किन्तु ज्ञान किसी न किसीको तो जानेगा ही ना, तो अन्यके जाननेका प्रयोजन रहा नहीं, सो एक इस विशुद्ध ज्ञानस्वरूपको ही जानता रहता है। इस सहज ज्ञानस्वभावके जाननेके प्रसादसे वह सहज अनंत ज्ञान प्रगट होता है। प्रणव, शून्य व अनाहत मंत्रमें परमात्मतत्त्वकी अनुस्यूति है, अतः ये तीन देवता हैं। इनकी विधान-पूर्वक आराधना करनेसे सर्वविषयक बोध प्रकट होता है।

प्रणवयुगलस्य युग्मं पार्श्वे मायायुगं विचिन्तयति।
मूर्द्धस्थं हंसपदं कृत्वा व्यस्तं वितंद्रात्मा ॥१६८१॥

"ह्रीं ॐ ॐ ह्रीं हंसः" मंत्रके व्यस्तरूपसे ध्यानकी विशेषता—अब एक मंत्र है जिसमें बीचमें तो दो प्रणव अक्षर हैं और उनके दोनों तरफ मायावर्ण मंत्र है और अंतमें हंसपद है जिसकी मुद्रा है "ह्रीं ॐ ॐ ह्रीं हंसः।" इन्हीं बीजाक्षरोंको किसी क्रमसे रखा जाय, उस क्रम में भी मर्म है और उस क्रमके भेदमें इसकी साधना और सिद्धिमें भी अंतर होता है। प्रारम्भ में चतुर्विंशति तीर्थंकरका वाचक और मायावर्णसे प्रसिद्ध ह्रीं बीजाक्षर है। इसके ध्यानके पश्चात् फिर प्रणव मंत्रका दो बार चिंतन होता है और इस क्रमसे चिंतन करनेमें प्रयोग करके भी अनुभव किया जा सकता है कि कुछ विशेष पद्धति बनती है। श्रद्धेय तत्त्वोंका किस क्रमसे चिंतवन है और किस प्रकार आत्मामें एक वीतरागताका उत्साह होता है, यह एक वर्णाक्षरोंमें बताये गए तत्त्वके स्वरूपका चिंतवन करनेसे विदित हो जाता है। हे मुने! इस मंत्रको प्रमाद-रहित होकर भिन्न-भिन्न चिंतन कर। एक एक वर्णका चिरकाल तक ध्यान कर और कभी दो वर्ण मिलाकर कभी ३ करके कभी समस्त पदोंसे इन मंत्रोंका ध्यान करें।

ततोध्यायेन्महाबीजं स्त्रींकारं छिन्नमस्तकम्।
अनाहतयुतं दिव्यं विस्फुरंतं मुखोदरे ॥१६८२॥

अनाहतयुत स्त्रींकार महाबीजका ध्यान—इसके पश्चात् महाबीज जो 'स्त्रीं' ऐसा बीजाक्षर है जिसमें ऊपर अर्द्ध चद्र नहीं लगा है जिसे छिन्नमस्तक कहते हैं ऐसा एक अनाहत सहित दिव्य मुखपर यह स्फुरायमान हो रहा है, इस प्रकार निरखते हुए चिंतवन करें। मंत्र की साधनासे श्रद्धाका बड़ा स्थान है। श्रद्धा नहीं है तो मंत्रसाधनामें कोई प्रगति नहीं होती। तो श्रद्धा भी साथ है और यह बीजाक्षर भी श्रुतज्ञानका परमात्मतत्त्वका वाचक है, इस तरह इससे दोनों ही प्रकारकी अभीष्टतायें हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

श्रीवीरवदनोद्गीर्णां विद्यां चाचिन्त्यविक्रमाम् ।
कल्पवल्लीमिवाचिंत्यफलसंपादनक्षमाम् ॥१९८३॥

अचिन्त्यविक्रमाविद्यारूप मंत्रका जपन—श्री महावीर भगवानके मुखकमलसे विनिर्गत, जिसका अचिंत्य पराक्रम है, कल्पबेलके समान जो अचिंत्य फल देनेमें समर्थ है ऐसा विद्यारूप एक मंत्र है, जिसकी मुद्रा है—"ॐ जोग्गे मग्गे तच्चे भूदे भव्वे भविस्से अक्खे पक्खे जिण पारिस्से स्वाहा"। इसके पश्चात् ऐसा मंत्र है "ॐ ह्रीं स्वर्हं नमो नमोऽर्हंताणं ह्रीं नमः।" मंत्र शास्त्रके विशारद इस मंत्रको क्रमसे देखकर बीजाक्षरोंको देखकर और उनके पढ़नेके स्वरों को देखकर इसके प्रभावको बता सकते हैं। इतना तो आप भी अनुभव कर लेंगे कि णमोकार मंत्रसे ही भिन्न-भिन्न स्वरोंमें भिन्न धारणावोंको रखते हुए कहाँ कितना ठहरना है, ऐसी स्थितिमें जब उच्चारण करेंगे तो भिन्न-भिन्न प्रकारसे अपनेपर उनका प्रभाव होता है। यों मंत्र जल्दी पढ़ लिया तो उससे वह लाभ नहीं होता है किंतु उसके स्वरूप स्मरण सहित और एक गीतरूपमें उतार चढ़ाव सहित गम्भीर ध्वनिका उच्चारण किया जानेपर स्वयंमें तुरंत प्रभाव होता है और वह अपने आपका स्पर्श एक ऐसे विशिष्ट परिणामकी रचना करता है कि जिससे पुण्यबंध होता है, साथ ही वैराग्यताके अनुसार कर्मनिर्जरा भी होती है। तो मंत्रके ध्यानमें उस परमतत्त्वका ध्यान और साथ होना चाहिए, जिससे इस मंत्रका प्रभाव बढ़ जाता है। जो योग्य है, पूज्य है, सम्यक्रूप है, तत्त्वभूत है ऐसी आत्मनिकटता, ज्ञानस्वरूप जो ऐसा विकसित हुआ है, हो रहा है, होगा, उन सबका इसमें ध्यान है। जैसा वस्तुका ध्यान करते हैं उस ही प्रकारका अपने आपपर असर होता है। केवल एक ज्ञानज्योतिका ध्यान बने, जिस उपायसे वह एक सर्वोच्च उपाय माना जाता है।

अन्तस्तत्त्वकी अलौकिक उत्तमध्यानरूपता—इस जीवने अनेक पदार्थोंका ध्यान किया, अनेक जगह इसने अपने आपको सौंपा, मानो आत्मसमर्पण ही किए रहा, किंतु वे सब परद्रव्य होनेके कारण इसे शरण न दे सके, सो उस भ्रमके कारण यह धोखेमें ही रहा। अपने ज्ञान-स्वरूपका स्मरण होवे, मैं ज्ञानमात्र हूं—ऐसी अपनेमें अनुभूति जगे तो यही तो सर्व मंत्रोंका लक्ष्य है। यहीं अपना उपयोग पहुंचे और यहीं स्थिरतासे रहे तो इससे बढ़कर और क्या प्राप्त करने योग्य होग्य है ? एक बहुत बड़ा तपश्चरण है यह अपने आपको अपने आपमें सम्हाले रहना, अपनी दृष्टिमें अपना ज्ञानस्वरूप बनाये रखकर इसमें तृप्त रहना, यह बहुत बड़ा आंत-रिक तपश्चरण है और इसमें बाधायें बहुत हैं। जैसे ही इन चर्मचक्षुवोंसे कुछ देख लिया तो उनका बर्ताव रखकर आकांक्षायें बढ़ने लगती हैं, यह ध्यानमें महाविघ्नकी बात है। अभी आधा घंटा मंदिरमें रहकर भगवानके गुण स्मरण करते हुए कुछ आत्मीय आनंद उमड़ रहा था, इसके बाद जैसे ही बाहर निकले कि फिर वैसी ही प्रवृत्तियां होने लगती हैं जो अभी तक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

चली आ रही हैं। यह क्या है? ये बड़ी बाधायें हैं। तो आत्मध्यानमें, आत्मानुभवकी सिद्धि में यह लोगोंका संगम, लोगोंका दिखावा ये सब एक विघ्नरूप हैं। कोई तो जानकर उपसर्ग करता है, बैरी बनकर उपसर्ग करता है और यह मोही पुरुष स्वयं इन उपसर्गोंको अपनाता है और अपने ध्यान परम तपश्चरणसे विचलित होता है। अतः आत्मानुभवकी भावना रखने वाले पुरुषोंको बाहरके सम्मान अपमान अथवा अन्य प्रकारके लोगोंका बर्ताव इन सबमें अपनी दृष्टि नहीं फंसानी चाहिए, और चाहे लोग इसे कैसा ही कहें, उनमें कहनेसे यहाँ कुछ सृष्टि नहीं बनती है। अपने आपके परिणमनसे अपने आपकी दृष्टि बनती है, इतना जो दृढ़चित्त होते हैं वे आत्मसाधनामें सफल होते हैं।

गत मनुजजीवनके विषय परिचयके संस्कारके त्यागकी विशेषता—मुनिव्रत लेने वाले को द्विज कहा करते हैं। मुनि ही द्विज हैं, वैसे द्विज नाम प्रसिद्ध है ब्राह्मणोंका, लेकिन यह तो उपचारसे व्यवहार बन गया है। चूंकि ब्राह्मण जन पूर्वकालमें बड़े त्यागी थे, आदर्श थे, लोगों के गुरु थे, तब वे बड़े उच्च समझे जाते थे, तभीका विशेषण था वह द्विज, जो कि अभी तक चला आ रहा है, किन्तु वास्तवमें द्विज कहते हैं मुनिको। द्विजका अर्थ है जिसका दूसरी बार जन्म हो। जैसे कोई मरकर दूसरी जगह कहीं जन्म ले तो उसको पूर्वभवका फिर क्या सम्बंध रहता है? न मकानसे कुछ सम्बंध है, न परिजनोंसे सम्बंध है, न अन्य किसीसे कुछ सम्बंध है। आप ही बतलावो कि पूर्वभवमें आपका कहाँ मकान था, कौन परिजन थे, कौनसा आपका वैभव था, कुछ भी याद है क्या? तो पूर्वभवकी किसी भी चीजसे आपका अब कुछ भी संबंध तो नहीं है, इसी प्रकार संन्सासी लोगोंका संन्यास धारण कर लेनेपर दूसरा जन्म माना जाता है। केवल सारा वैभव, सारे परिजन, सर्व कुछ उसने त्याग दिए हैं, किसी भी चीजसे उसने अपना कुछ भी सम्बंध नहीं रखा है। तो वास्तवमें उनका वह दूसरा जन्म है, सो वे मुनिराज वास्तवमें द्विज हैं। उन मुनिराजका सम्बंध अब केवल ज्ञान और वैराग्यसे रह गया है, अन्य सर्वसे उसने अपना कुछ भी सम्बंध नहीं रखा है। ऐसे योगिराज द्विज अबसे पहिले जिनसे परिचय था वे लोग अब इनके लिए कुछ नहीं रहे, इनका तो जन्म ही दूसरा हो गया। परिजन लोग हैरान हो जाते हैं कि यह ही तो हैं हमारे गांवके, हमारी बिरादरीके, हममें ही बसने वाले, आज क्या हो गया, हमारी तरफ देखते भी नहीं हैं, हमसे बोलनेकी इच्छा भी नहीं करते, कुछ स्नेह ही नहीं जगाते। पहिले तो कैसा हमसे स्नेह करते थे, कैसे रमा करते थे, हम इनके परममित्र ही तो थे, और ऐसे मित्र कि मेरे बिना यह नहीं रह सकते थे, इनके बिना मैं नहीं रह सकता था, मगर आज यह निगाह उठाकर भी नहीं निरख रहे हैं। न जाने कहाँ जा रहे हैं, हैरान हो जाते हैं परिचित जन उन योगिराजकी चर्याको निरखकर। हों हैरान, वे तो द्विज हो गए हैं, उनका तो दूसरा जन्म हुआ है, इससे पहिलेकी बातोंका तो कुछ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सम्बंध भी नहीं है। अब आप समझिये कि मुनियोंका कितना ऊँचा पद होता है और वे क्यों परमेष्ठी कहलाते हैं। हम आप लोगोंकी तरह रचे पचे रहा करें तो क्या वे परमेष्ठी कहला सकते हैं? तो अपने अंतरङ्गकी धुन रखने वाले पुरुष इन मंत्रोंके सहारेसे ज्ञायकस्वरूपका ध्यान करके अपनी आत्मसिद्धि किया करते हैं।

विद्यां जपति य इमां निरंतरां शांतविश्वविस्पन्दः।
अणिमादिगुणांल्लब्ध्वा ध्यानी शास्त्रार्णवं तरति ॥१९८४॥

उक्त विद्यामंत्रके ध्यानका प्रताप अनेक ऋद्धिलाभ—जो योगी ध्यानी निर्दोष चित्त होकर समस्त हलन-चलन क्रियावोंको, परीषहोंको दूर करके इस विद्याको निरंतर जपता है वह अणिमा आदिक गुणोंको प्राप्त होकर शास्त्रसमुद्रको तिरता है। साधनाओंके बीच अनेक ऋद्धि प्रगट हो जाती हैं, पर योगीका जब लक्ष्य ही कुछ और है, उस अनुपम परमतत्त्वकी ओर दृष्टि है तब उसे इन ऋद्धियोंका तो पता भी नहीं होता। अनेक ऋद्धियां इस तरह प्रगट हो जाती हैं, ऐसे ही बहुतसी ऋद्धियां देवोंमें जन्मसे ही होती हैं देवगतिमें, लेकिन उन ऋद्धियों से उनके आत्मापर कुछ असर नहीं होता। वह एक जन्मजात सिद्धि है, उनके और जो एक गुणोंके बलपर, आंतरिक तपश्चरणके बलपर ऋद्धियोंको प्राप्त होते हैं उनके चित्तमें पूज्यता है और उत्तरोत्तर इसे उन्नतिके पथपर ले जानेका सहायक भी है। जैसे अणिमा ऋद्धिसे शरीर को बहुत छोटा बना लेना, यह बात देव भी कर सकते हैं। यहाँ योगियोंने साधनाके बलपर ऋद्धि प्राप्त की है, पर उनकी जन्मजात इस विद्याका विषय कषायोंमें ऐसी लीलावोंमें ऐसे कौतूहलोंमें प्रयोग होता है तब ये योगिराज उन सिद्धियोंका प्रयोग भी नहीं करना चाहते और परिचय तक भी नहीं है। एक महिमा ऋद्धि होती है, शरीरको कितना ही बड़ा बना लो। गरिमा ऋद्धिसे शरीर चाहे परिमाणमें छोटा ही क्यों न हो, पर वह इतना वजनदार होता है कि उसे उठा सकना तो उनके भी वश की बात नहीं है। लघिमा ऋद्धिमें शरीरका परिमाण चाहे बहुत बड़ा लग रहा हो पर वह अत्यन्त हल्का होता है। कहो अपने शरीर को अन्तर्ध्यान करलें तो किसीको वह शरीर दिखे ही नहीं। शरीर है, बैठे हैं योगिराज, पर किसीको नजर ही नहीं आ रहे, ऐसी अनेक ऋद्धियोंको प्राप्त कर लेते हैं। पर वे योगिराज उनके प्रयोगमें नहीं फंसते, वे तो अपने ही ध्येय ज्ञानस्वरूपका लक्ष्य रखकर अंतस्तत्वमें मग्न होते हैं।

उक्त विद्यामंत्रके ध्यानका प्रताप श्रुतावगाहन व शास्त्रार्णवतरण—उक्त विद्यामंत्रके प्रबल ध्याता समस्त श्रुतके पारगामी हो जाते हैं। एक सूत्र जो लिखा है ना "शुक्ले चाद्ये-पूर्वविदः" दो शुक्लध्यान पूर्वधारी साधुके होते हैं, जिन्हें ११ अंग १४ पूर्वका ज्ञान है ऐसे साधुवोंके २ शुक्लध्यान होते हैं—प्रथक्त्ववितर्कविचार, एकत्ववितर्कविचार। प्रश्न यहाँ यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उपस्थित होता है कि कोई श्रुतकेवली हो, वह भी आत्मसाधना करके निर्वाण प्राप्त करता है और नहीं भी श्रुतकेवली है और यहाँ तक बताया कि मात्र अष्टप्रवचनमात्रिकाका ही ज्ञान है ऐसे भी योगीको निर्वाणकी प्राप्ति होती है, लेकिन यह बीचका रास्ता जहाँसे सबको गुजरना है श्रुतकेवली भी गुणस्थानोसे गुजरते हैं तब निर्वाण पाते हैं। ८ वें, ९ वें, १० वें, १२ वें गुणस्थान इनसे गुजर कर ही तो निर्वाणकी प्राप्ति होगी और इस गुणसाधनामें जो शुक्लध्यान होता है उसका नियम बता दिया है कि आदिके दो शुक्लध्यान पूर्वपदोंके होते हैं। तब इस समस्याका समाधान क्या? इस समाधानमें यह खोज आती है कि चूंकि व्यवहारकाल लम्बा काल सारा यह जिस ज्ञानमें बीता, श्रुतकेवली होकर बीता तो उसकी प्रसिद्धि हुई और साधारण ज्ञानमें बीता तो उसकी प्रसिद्धि हुई। जब वे दोनों श्रेणीमें पहुंचते हैं तो श्रेणीमें होने वाला परिणाम इतना निर्मल होता है कि उनका निमित्त पाकर श्रुतज्ञानावरणका विशिष्ट क्षयोपशम हो ही जाता है और यह कुछ युक्तिमें आता है कि जब ज्ञानावरणका सम्बंध होता भी है तो केवलज्ञानसे पहिले उसकी ज्योति कुछ भी नहीं जगती होगी। श्रुतज्ञानावरण भी तो सारा नष्ट होता है, उस कालमें श्रुतज्ञानका कुछ भी विकास न होता होगा। युक्ति भी यह कहती है कि श्रुतज्ञानका वहाँ विकास होना चाहिए, किन्तु ८वें, ९वें, १०वें, १२वें गुणस्थान का काल है कितना? इस अल्प कालमें जो परिणामोंकी विशिष्टता हुई और उससे जो श्रुतज्ञानका विकास हुआ उस विकल्पसे न हमने कुछ फायदा उठा पाया और न अन्य लोगोंने कुछ फायदा उठा पाया। तो चूंकि उस योगीका काल अति सूक्ष्म है और वहाँसे गुजरकर कुछ प्रयोग रूपसे उसका लाभ नहीं उठाया जा पा रहा है, इस कारण उसके प्रतिपादनमें लोप ही बताया गया और यह कहना पड़ा कि श्रुतकेवली हो वह भी निर्वाण प्राप्त करता है, अल्पज्ञानी हो वह भी निर्वाण प्राप्त करता है। फिर दूसरी बात यह भी देखिये कि आखिर अल्पज्ञानीने ही तो निर्वाण प्राप्त किया, जैसे कि श्रुतकेवलीने भी किया। अब उसके मार्गमें केवलज्ञानके निकट पहुंचते ही अगर कुछ सेकेण्डोंको श्रुतज्ञानका विकास हो गया तो वह तो मार्गकी बात है। प्राप्त तो किया इस अल्पज्ञानीने ही निर्वाण। इस कारण यह भी कथन विरुद्ध नहीं जंचता कि श्रुतकेवली भी निर्वाण प्राप्त करते हैं और अल्पज्ञानी भी निर्वाण प्राप्त करते हैं, पर चाहे वह मार्गमें ही सही। समस्त श्रुतका अवगाहन इन सब आराधकोंको होता ही है।

त्रिकालविषयं साक्षाज्ज्ञानमस्योपजायते।
विश्वतत्त्वप्रबोधश्च सतताभ्यासयोगतः ॥१९८५॥

विद्यामंत्रके ध्यानके प्रतापसे विश्वतत्त्वप्रबोध—इस विद्याका ध्यान करने वाले पुरुष के निरंतर अभ्यासके प्रसादसे तत्त्वोंका ज्ञान होता है और त्रिकालविषयक साक्षात् ज्ञान भी उत्पन्न होता है। वह है केवलज्ञान। ज्ञानके बड़े वेग चल रहे हैं। कितनी ही जगह उपयोग

Report any errors at vikasnd@gmail.com

गया हो, पर किसी भी क्षण अपने उपयोगको एक शून्यरूप बना लिया जाय, कुछ भी उपयोग में न रहे तो सर्वोत्कृष्ट डिग्रियोंसे अविभागप्रतिच्छेदोंमें वह ज्ञान विकसित हो जाता है। जितना ही उपयोगको सर्व ओरसे संकुचित करके एक शून्यरूप बना लिया जाता है तो उसमें शक्ति कई गुनी बढ़ जाती है और एक समय उसमें ऐसी शक्ति हो जाती है कि वह एक समय में चौदह राजू गमन कर सकता है बेरोकटोक। उस ज्ञानको अगर हम अभेद बनाकर उन सबसे हटाकर अपने केन्द्रमें उपयोगको लायें अर्थात् शून्य तक उपयोग लायें। जैसे गर्मीकी डिग्रियां होती हैं। जब गर्मी बिल्कुल नहीं रहती तो कहते हैं कि अब शून्यपर आ गया और यदि शून्यके नीचे भी आ जाय वह वातावरण तो उनकी फिर डिग्रियां बन जाती हैं, और फिर वे डिग्री शीतकी बन जाती हैं, शून्य तक आनेपर और शून्यसे भी उतरनेपर फिर महत्त्व बढ़ने लगता है इस वातावरणका। तो इस ही उपयोगको जो चारों ओर फैला हुआ था उसे जब केन्द्रपर लाये, शून्यपर लाये, कुछ भी नहीं जाना जा रहा, कुछ भी विकल्प नहीं किए जा रहे, एक शून्यसा बन गया, कुछ भी विकल्प नहीं रहा, तो इस स्थितिके बादमें ज्ञानमें इतनी सामर्थ्य आती है कि अविनाभाव प्रतिच्छेदोंके विकासपूर्वक यह ज्ञान उत्पन्न होता है, और इसे भी केवलज्ञान कहते हैं। केवलज्ञान पहिले था, अब तो सकल ज्ञान है, मात्र ज्ञान ज्ञानका स्वरूप ही ज्ञानमें था, वह तो केवलज्ञानके प्रगट करनेके उपायके समय था। अब तो यह सकल ज्ञान बन गया। समस्त विश्वका ज्ञान हो गया। तो यों एक रागादिकशून्य विकल्पशून्य ज्ञानभावपर उपयोग रहे तो उस ज्ञानमें यह सामर्थ्य हो जाती है। इस मंत्रके प्रयोगमें यही उपाय रचा गया है जिसके निरंतर अभ्याससे समस्त तत्त्वोंका ज्ञान होता और सकलज्ञान भी उत्पन्न हो जाता है।

शाम्यन्ति जंतवः क्रूरास्तथान्ये व्यंतरादयः।
ध्यानविध्वंसकर्तारो येन तद्धि प्रपञ्च्यते ॥१९८६॥

ध्यानविघ्नोपशामक ध्यानके वर्णनका संकल्प—ध्यानमग्न पुरुषोंके उपसर्ग करने वाले क्रूर जंतु शांत हो जाते हैं। ध्यानमें विघ्न डालने वाले व्यंतर आदिक भी उपशमताको प्राप्त हो जाते हैं। जिस ध्यानके प्रतापसे यह महिमा प्रगट होती है उस ध्यानका अब कुछ विस्तार से वर्णन करेंगे। परमतत्त्वके उपयोगमें उसमें एकाग्र होनेकी स्थितिमें ये सब प्रभाव बढ़ते हैं। कदाचित यह भी हो जाय कि तीव्र असाताका उदय हो और ऐसा ही बंध किया हो तो ध्यान-साधनाके प्रसंगमें भी उपद्रव उपसर्ग विपत्तियां आयें पर यह बहुत बिरली बात है। ध्यानी पुरुषके ध्यानके प्रतापसे ये विघ्न सब शांत हो जाते हैं और भले ही उपसर्ग आयें, उपसर्ग आनेपर भी ध्यानकी जब विशेषता बनती है तो वहाँ फिर उपसर्ग नहीं रहते।

http://sahjanandvarnishastra.org/

दिग्दलाष्टक सम्पूर्णे राजीवे सुप्रतिष्ठितम् ।
स्मरत्वात्मानमत्यन्तस्फुरद्ग्रीष्मार्क भास्करम् ॥१९८७॥

दिग्दलाष्टकसंपूर्ण कमलमें सुप्रतिष्ठित निर्मल आत्माका स्मरण—सर्व मंत्रोंमें इस समय प्रकरणवश महत्त्वके साथ ॐ णमो अरहंताणं मंत्रकी बात कह रहे हैं। कोई मंत्र या शब्द विशेष प्रचलित हो जाय, सबकी जबानपर आ जाय तो उसकी श्रद्धा प्रायः लोग कम कर लेते हैं। किन्तु इस मंत्रमें बड़ा प्रताप पड़ा हुआ है। अरहंतका जो स्वरूप है वह स्वरूप समस्त जब उपयोगमें आता है तब उपयोगको मलिन करनेकी कौन शक्ति रख सकता है ? अरहंतका स्वरूप उपयोगमें रहे तो उसके विषय कषाय विकार ये सारे उपद्रव शांत हो जाते हैं, और ऐसी महिमा सम्पन्न समृद्धि ऋद्धि सम्पन्न अरहंत प्रभुका स्वरूप है कि जिसके ध्यानके प्रताप से ऋद्धि समृद्धि भी प्रगट होती है। जहाँ ६४ ऋद्धियोंका वर्णन है वहाँ एक केवलज्ञान ऋद्धि भी बतायी गयी। तो केवलज्ञान तो ज्ञान है पर अरहंत प्रभुका लक्ष्य करके चूंकि उनका स्वरूप समस्त ऋद्धिसम्पन्न है। सर्व ऋद्धियोंको प्राप्त करके उनकी यह अवस्था प्रगट होती है। उन ऋद्धियोंके प्रतापसे जो उनका अतिशय विकास है वह भी ऋद्धिमें गिना है। अरहंत प्रभु के ध्यानके समान प्रभावक अन्य ध्यान कुछ है नहीं। या फिर इसके पश्चात् एक आत्मस्वरूप का ध्यान है। सिद्ध प्रभुकी बात भी अरहंत स्वरूपमें समायी हुई है ऐसा समझना चाहिए, क्योंकि गुणोंकी दृष्टिसे कुछ अंतर नहीं है और अतिशय चमत्कार त्रिलोकपूज्यता ये सब होनेके कारण अरहंत प्रभुके ध्यानमें ऋद्धि मंत्र इन सबमें एक विशेषता होती है। ये प्रभु १०० इंद्रोंका बंदनीक हैं। यहाँ प्रायोगिक बात चलती है कि केवलज्ञान हुआ, अरहंत प्रभु हुये और १०० इन्द्र आकर उनका नमस्कार करते हैं। बड़ी सम्पदा वैभव सहित देव देवांगनाओंका समूह तो अनगिनते आते हैं। जिनकी दिव्यध्वनि मधुर है। तीन लोकके जीवोंका हित करने वाली है, स्पष्ट है, लो तत्काल लाभ भी जीवोंको मिल रहा है। गुण तो अनंत असीम हैं ही, और अब ये प्रभु हमको मिलते तो हैं, आज नहीं मिल रहे पर मनुष्योंको मिला तो करते हैं। यहाँ दर्शन भी होते हैं प्रभुके, और वे भवोंसे अतीत हैं, संसारमें उनके दर्शन भी हो रहे हैं और संसारसे वे अतीत हैं। ऐसी महिमा सम्पन्न अरहंत प्रभुके। ध्यानका वाचक है यह मंत्र विशेष महत्त्व रखता है।

ज्ञानपुञ्जके रूपमें परमात्मतत्त्वका ध्यान—अभी एक अष्टदलका कमल चिंतन किया गया था। ८ दिशावोंमें ८ पत्रोंमें कमल भली प्रकार हैं और वे देदीप्यमान कांतिमान ग्रीष्म ऋतुके सूर्य समान स्वर्ग समान ऐसे देदीप्यमान कमलका भी स्मरण करें और समग्र आत्मा ऐसे सूर्य समान स्फुरायमान तेजस्वी है इसका भी ध्यान करें। मैं आत्मा हूं, तेजवत् हूं, ज्ञानमात्र हूं, ज्ञानज्योतिका ऐसा प्रकाश है, प्रभाव है कि दशों दिशावोंमें यह व्याप्त हो गया है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

एक ज्ञानमात्र अपने आपका अनुभवन करना यह सर्वोपरि पुरुषार्थ है। बड़ा तपश्चरण भी कर ले कोई और शास्त्रोंका पारगामी भी बन जाय और इतना विशेष ज्ञान प्राप्त कर ले कि सारी बातें यों बता दे, जैसे हाथ पर रखी हुई चीजकी बात बता दे। इतना बड़ा ज्ञान करले, तपश्चरण करले और कुछ अन्दरमें भावना भी हो ऐसी कि हम धर्मसाधना कर रहे हैं, हमें तो मुक्ति ही चाहिए, निर्वाणके समय अन्य किसीकी वाञ्छा नहीं, मैं स्वर्ग नहीं चाहता ऐसा मनमें आशय भी कुछ पवित्र बना रहा हो, लेकिन एक ज्ञानात्मक मैं आत्मा हूं ऐसा अनुभव न कर पाता हो तो वह कर्मोंको नष्ट करनेमें समर्थ नहीं है। तो अपने आपको ज्ञानात्मक अनुभव करना यह जब बनता है तो उसकी स्थिति एक निर्विकल्प होती है और क्या सोचना? कुछ नहीं सोचना, और ज्ञानमात्र परिणमन रहता है, ज्ञान ही ज्ञानमें बना हुआ है, एक अद्भुत अलौकिक आत्मीय आनन्दको उपजाता हुआ यह ज्ञानका अनुभव प्रगट हुआ है। ज्ञानानुभव हो जाय और आनन्दका अनुभव न आये, यह बात कभी नहीं होती। ज्ञानानुभव आनन्दको प्रगट करता हुआ ही हुआ करता है। तो ध्यानी पुरुष अपने आपके आत्माको ऐसे ज्ञानपुञ्जके रूपमें स्फुरायमान देदीप्यमान चिन्तन करें।

प्रणवाद्यस्य मन्त्रस्य पूर्वादिषुप्रदक्षिणम्।
विचिन्तयति पत्रेषु वर्णैकैकमनुक्रमात् ॥१६८८॥

प्रणवसहित आद्यमन्त्रका अष्टदलकमलमें पूर्वादिदिशाओंमें एक एक वर्णका क्रमसे ध्यान—जिसके आदिमें प्रणव मंत्र भी लगा हो, ॐ णमो अरहंताणं प्रणवमंत्र सहित यह आदि पद है जिसमें ऐसे मंत्रको पूर्वादिक दिशावोंमें प्रदक्षिणारूप एक एक पत्र पर अनुक्रमसे एक एक अक्षरका चिन्तवन करें। जैसे पूर्वदिशाकी ओर मुंह करके योगी पद्मासनसे विराजमान है तब अपने मुखकमलमें अष्टदलका चिन्तन करे और सामने ॐ फिर पूर्व और दक्षिणके बीचमें "ण" दक्षिणमें 'मो' इस प्रकार स्थापना करे। कोई कल्पना करके बैठ तो जाय अपने आपके उत्तमांगमें कमलका विचार करें, उन पत्रोंपर इन वर्णोंकी रचना करके सोचें तो उपयोग विशुद्ध होता है, विषय कषायोंसे उपयोग हटता है, यही आत्मा की रक्षा है। विषयकषायोंसे चित्त हटा रहे, यह आत्माकी बड़ी दया है। ये सब ध्यान की बातें हैं।

अधिकृत्य छदं पूर्वं सर्वाशासम्मुखः परम्।
स्मरत्यष्टाक्षरं मन्त्रं सहस्रैकं शताधिकम् ॥१६८९॥

प्रथम रात्रिमें सर्वदिशासम्मुख होकर ११०० बार प्रणवयुत आद्यमंत्रका ध्यान—इन पत्रोंमें से पूर्वदिशामें स्थित प्रथम पत्र को मुख्य करके फिर सर्वदिशावोंमें अपने उपयोगको सम्मुख करते हुए इन मंत्रोंका ११०० बार चिन्तन करें। चिन्तन करनेकी विधिमें प्रत्येक अक्षर जहाँ विराजमान हैं वहां उपयोग चला चलाकर उनको निरखकर बहुत ही धीरे धीरे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इस मंत्रका जाप करें और ११०० बार चिन्तन करें। मन नहीं लगता है मंत्रके ध्यानमें, आत्माके ध्यानमें, इसका कारण यह नहीं है कि समय नहीं है। समय न होनेसे जाप मंत्रकी बात नहीं बनती, यह बात नहीं है। समय सभीके पास बहुत-२ है पर उस समयको विकल्पों में बिता देते हैं। अब रोजिगार तो करते हैं करीब ६ घंटा, पर उसकी आसक्तिके कारण तत्सम्बन्धी विकल्प बनाये रहते हैं बहुत देर तक। खाते पीते, चलते फिरते, उठते बैठते, सभी स्थितियोंमें वही विकल्प बने रहा करते हैं, तो जो शेष समय है वह विकल्पोंमें गंवा देते हैं। समय खाली नहीं रहता। सभी लोग अपनी-अपनी बात जान लें कि गप्पोंमें, विकल्पोंमें, व्यर्थमें कितना समय व्यतीत होता है? प्रभुध्यानको चित्त नहीं चाहता। अरे संसारमें कुछ भी तो समागम ऐसा नहीं है जो हमारी मदद करदे। कुछ भी सहायता नहीं पहुंचा सकते। जैसा भाव बनता है, जैसा संस्कार बनता है उसके अनुकूल बंध होता और उसके उदयके अनुसार उदय सामने आ जाता है। इस ओर कुछ चित्त जाय स्वाध्यायमें तो ठीक ही है, उसमें समय ज्यादा लगाना भी चाहिए, पर यह ध्यानकी बात भी चित्तसे हटानेकी नहीं है। इसमें भी कुछ विशेष उद्यम हो और ध्यानमें हम किसी भी मंत्रका सहारा लें और जो विधि मुद्रा बताया है उस ढंगसे इसका ध्यान करें, विषय कषायोंसे उपयोग हटेगा, यह तो तत्काल ही फल मिल जाता है।

प्रत्यहं प्रतिपत्रेषु महेन्द्राशाद्यनुक्रमात्।
अष्टरात्रं जपेद्योगी प्रसन्नामलमानसः ॥१६६०॥
तस्याचिंत्यप्रभावेण क्रूराशयकलङ्किताः।
त्यजंति जंतवो दर्पं सिंहत्रता इव द्विपाः ॥१६६१॥

प्रतिदिन पूर्व दिशादिकके अनुक्रमसे आठ रात्रि तक प्रणवसहित आद्यमंत्रका ११०० बार ध्यान व उसका फल—इस प्रकार प्रतिदिन प्रत्येक कमलपत्रमें पूर्व दिशाके क्रमसे जाप करें और अर्द्धरात्रि पर्यंत बड़े प्रसन्न और निर्मल मनसे जाप करें। एक विशेष साधनाके प्रसंगमें बात चल रही है, यही एक ध्यान बनायें। मुखके मध्य ऊपर ललाट स्थानमें किसी भी उत्तम अंगमें एक अष्टदल कमलका इस प्रकार चिंतन करें और उसके प्रतिपत्रपर वर्णोंके क्रमसे ध्यान करें, अर्द्धरात्रि पर्यंत ११०० बार प्रति बार इसका जाप करें, फिर उसके अचिंत्य प्रभावसे जो क्रूर चित्त वाले जीव हैं वे भी अपना गर्व छोड़ देते हैं। वे भी नम्र होकर निकट बैठा करते हैं। श्रद्धाकी बड़ी विशेषता होती है। जैसे आजकल ज्ञान निकट पूर्वकी अपेक्षा बहुत बढ़ा चढ़ा है। कितने फिलास्फर बन रहे, कितने वैज्ञानिक बन रहे, लौकिक विद्यामें भी इञ्जीनियर या अन्य अन्य प्रकारके विद्या पारगामी कितने बनते जा रहे, धर्मकी दिशामें भी बड़े ग्रन्थोंका ऊँचा से ऊँचा स्वाध्याय करने वाले, ज्ञान करने वाले पंडित जन अब भी मिल रहे हैं। बहुत ज्ञान

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

की वृद्धि है, और एक छोटेसे छोटा भी बालक आज पहिलेके बालकोंकी अपेक्षा बड़ी चतुराई रख रहा है। इतनी जानकारीकी बातें पहिले बड़ी उम्रके बच्चे भी न जानते थे। आजकल तो ३-४ वर्षका बच्चा भी बड़ी चतुराईसे बातें करता है, और क्या प्रयोजन है, क्या स्वार्थ है, क्या सिद्ध करना है, वे सब अपने आप अपनी चतुराईसे लगा लेते हैं, लेकिन श्रद्धाकी कमी बहुत बनी रहती है। ज्ञान जहाँ इतना बढ़ रहा है श्रद्धाकी उतनी ही घटती हो रही है, और श्रद्धाके घटनेसे उस ज्ञानका अपने आपपर प्रभाव नहीं बन पाता। ध्यान और मंत्रकी साधना तो श्रद्धा पर ही चलती है। श्रद्धा हो तो वहीं भी किसी भी स्थितिमें हो, मनचाही बात प्राप्त की जा सकती है।

श्रद्धाका फल—दो भाई थे, नौकरीके लिए चले। तो रास्तेमें छोटे भाईको एक जंगल में एक साँड़ (बैल) मिल गया। सो बड़े भाईसे बोला कि हमारा तो मालिक मिल गया, हम इसीकी सेवा करेंगे, यही हमें सब कुछ देगा, और बड़ा भाई चला गया। वह किसी शहरमें जाकर किसी फर्मपर नौकरी करने लगा। तो बड़े भाईको तो हर महीने वेतन मिल जाया करता था सो उससे काम चलता था, छोटे भाईने भी पासके गांवके एक बनियासे मिल लिया था और उससे कह दिया था कि हमको एक बड़ा मालिक मिल गया है, उसका काम करेंगे, हमें खाने पीनेके लिए सामान देते रहना, ८-१० माहके बादमें हम आपका सारा हिसाब चुका देंगे। इस तरहसे चलते-चलते जब १ वर्ष बीत गया तो बड़ा भाई छोटे भाईके पास आया, बोला कि तुमने तो यहाँ रहकर बेकारमें समय बरबाद किया, चलो अब घर चलें। छोटा भाई बोला—अच्छा एक दिन ठहरो, कल हम जवाब देंगे। तो वह उस साँड़से कहता है कि अब तो हमारा १ वर्ष पूरा हो गया, अब हम घर जाना चाहते हैं सो हमारा वेतन दे दो। तो साँड अपने आप उत्तर देता है कि तुम एक दिन और ठहर जावो, कल मिलेगा। तो वह छोटा भाई बड़े भाईसे कहता है कि आप आज जावो, हम तो एक दिनके बाद आवेंगे। बड़ा भाई तो चल गया। अब वहाँ क्या बीता कि बंजारे लोग अपने बैलोंपर अशर्फियां लादे चले जा रहे थे। जब बैलोंको प्यास लगी तो नदीमें पानी पीने लगे। उस साँड़ने सभी बैलोंकी गांदीमें एक-एक सींग मार दी, बहुतसी अशर्फी उसी जगह गिर गई। बंजारे तो चले गए और उस छोटे भाईने वे सारी अशर्फियां पा लीं और उन्हें लेकर अपने घर चला आया। तो यहाँ तात्पर्य कहनेका यह है कि यह श्रद्धा जहाँ जम गयी वहीसे जो कुछ होना है वह सब हो जाता है। साधनावोंके प्रसंगमें श्रद्धा बिना तो कोई साधना ही नहीं बनती है, मूर्ति तो पाषाण है, धातु है, पर श्रद्धा है तो उस मूर्तिमें ही हम प्रभुताके दर्शन कर लेते हैं, और श्रद्धालु पुरुषोंको उस निर्दोष मूर्तिको निरखकर तुरंत ख्याल आ जाता है उन प्रभुका जिनकी कि उस मूर्तिमें स्थापना हुई है। बड़ी श्रद्धापूर्वक अरहंतके स्वरूपका स्मरण करे कोई और उस स्मरणके साथ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इन मंत्रोंका जाप करे तो उसके प्रभावसे क्रूर चित्त वाले पशु भी अपना गर्व त्याग देते हैं, नम्रतासे वे योगिराजोंके निकट बैठे रहते हैं।

अष्टरात्रे व्यतिक्रांते कमलस्यास्यवर्तिनः।
निरूपयति पत्रेषु वर्णानेताननुक्रमात् ॥१९९२॥

दशम दिन रात्रिमें विश्रामपूर्वक प्रतिपत्रमें मंत्रवर्णोंका निरूपण—तत्पश्चात् जब ८ रात्रि व्यतीत हो चुकें, इस कमलके पत्रोंपर जो विराट अक्षर हैं उन अक्षरोंको बारी-बारीसे जिस प्रकार वे अवस्थित हैं उनका यह निरूपण करता है, अवलोकन करता है। बहुत-बहुत जाप जपनेके बाद कुछ विश्रामके साथ एक सिंहावलोकनकी तरह इन वर्णोंको निरखते हैं। उस जापके समयमें जो वर्णोंका निरखना था और स्मरण करते हुए ध्यान करते करते वह एक जापकी अवधिमें हदमें था। अब जाप पूर्ण होनेके पश्चात् जो एक निरूपण हो रहा है, सर्व अक्षरोंका अवलोकन हो रहा है इसमें एक विश्राम और जैसे कार्यसिद्धि होनेके बाद एक सिंहावलोकन किया जाता है उस प्रकारकी एक गौरवताके साथ, सभ्यताके साथ इन पदोंका निरूपण किया जा रहा है। निरूपणका अर्थ लोग कहनेमें लेते हैं, पर निरूपणका अर्थ है चारों ओरसे भली प्रकार देखना। तो यह अब अपनी साधनाके पश्चात् जिनका सहारा लेकर साधना की, उनका निरूपण कर रहा है।

आलम्ब्य प्रक्रियामेनां पूर्वं विघ्नौघशांतये।
पश्चात् सप्ताक्षरं मंत्रं ध्यायेत् प्रणववर्जितम् ॥१९९३॥

विघ्नोपशामक प्रक्रियाके अनन्तर प्रणववर्जित सप्ताक्षर मंत्रका ध्यान—इस प्रकार इस प्रक्रियाको प्रथम विघ्नके समूहकी शांतिके लिए आलम्बन किया, पश्चात् अब प्रणव मंत्र न बोलकर केवल इन ७ अक्षरोंका ध्यान करे—णमो अरहंताणं। ध्यानकी प्रक्रियामें जो पुरुष चलते हैं और स्वरूपका जिन्हें ज्ञान है, अंतस्तत्त्वका भी जिन्हें परिचय है वे सब इस प्रभावको समझते हैं कि पहिले प्रणव मंत्र सहित जाप करनेमें क्या प्रभाव था, क्या परिणति बन रही थी और अब एक साधनाके पश्चात् मात्र णमोकार मंत्रका ध्यान करते हुएमें कितना हल्काव और विश्राम अतिनिकटता, मनोवांछिता ये सब कितनी विशुद्धिको प्राप्त हुए हैं उसका अनुभव करते हैं। तो इन समस्त साधनोंके पश्चात् अब वह प्रणव मंत्रसे रहित केवल सप्ताक्षरी मंत्रके प्रथम पदका ध्यान करता है।

मंत्रः प्रणवपूर्वोऽयं निःशेषाभीष्टसिद्धिदः।
ऐहिकानेककामार्थं मुक्त्यर्थं प्रणवच्युतः ॥१९९४॥

इस मंत्रका प्रणवपूर्वक ध्यान करें तो समस्त मनोवांछित कार्योंकी सिद्धि होती है। प्रणव सहित इस मंत्रके ध्यानमें समस्त विघ्न दूर होते हैं। जिसे संसारकी सम्पदाकी कोई

Report any errors at vikasnd@gmail.com

कामना ही नहीं है वह केवल आत्माके विशुद्ध स्वरूपका विकास ही चाहता है। वह पुरुष भी पहिले प्रणव मंत्र सहित इस प्रथम पदका ध्यान करता है। उसका प्रयोजन है विघ्न शांत हों। विषय कषायोंके जो महाविघ्न हैं वे भी न आयें और अन्य विघ्न भी न आयें, यह उस समयका आशय है, पश्चात् मुक्तिकी उसे वांछा है तो जो मुक्तिका कारणभूत है णमो अरहंताणं मंत्र, उसका ध्यान करे। यह सब एक बार विस्तारके साथ इस मंत्रके ध्यानकी बात बतायी गयी है। तो सुन करके कुछ चित्तमें भी बात लाना चाहिए। इस लोकमें हम आपको सहारा देने वाला कोई नहीं है बाहरमें। कोई कैसे दे सके? पापका उदय हो तो मां भी सहारा नहीं दे सकती। पुण्यका उदय हो तो मां भी छोड़ दे तो भी उसकी रक्षा करने वाले मनुष्य तो क्या देव भी हो जाते हैं। अकृत पुण्यकी कथा सुनी होगी। वह राजपुत्र था, उसे प्रजावादियोंने देश निकाला करवा दिया, क्योंकि जबसे वह उत्पन्न हुआ तबसे देशमें विध्वंस ही शुरू हुआ। जब वह देशसे बाहर जाने लगा तो मां ने उसके साथ बड़ी सम्पदा भी रख दी पर सम्पदा कोयला बन गयी। सारी मोहरें कोयला बन गयीं। अन्नकी जो गठरियां थीं उनमें छिद्र हो जानेसे सारा अन्न खत्म हो गया। तो पापका जब उदय होता है तो माँ भी सहायता नहीं कर सकती। गोदमें बैठा हो बालक तो उसे भी उसकी मां बचा सकती है क्या? जब पुण्यका उदय हो तो मां चाहे बच्चेको मरघटमें छोड़ दे फिर भी उसके अनेक लोग रक्षक हो जाते हैं। आपने जीवन्धरका चरित्र सुना होगा। उसकी मां उसे श्मशानमें छोड़ आयी थी, फिर भी उसकी रक्षा एक सेठने की थी। तो बाहरमें इस जीवका साथी एक धर्म ही है। इसलिए अपने धर्मकी रक्षा करनेमें इन ध्यान साधनाओंकी एकाग्रता तत्त्वके चिंतनमें अपना उपयोग लगाना चाहिए और कुछ अपनी सुधि रखना चाहिए। अपने आपकी सुधि रखे बिना, अपने आपका निर्मल परिणाम बनाये बिना अपना भला नहीं हो सकता है, इस कारण कुछ इस ध्यान साधनाकी ओर अपना प्रयत्न होना चाहिए।

स्मर मंत्रपदं वान्यज्जन्मसंघातघातकम्।
रागाद्युग्रतमस्तोमप्रध्वंसरविमण्डलम् ॥१९९५॥

जन्मसंघातघातक मंत्रपदका ध्यान—हे मुने! तू अब ऐसे अन्य एक मंत्रका स्मरण कर, जो जन्मसमूहका नाश करने वाला है, अर्थात् फिर संसारमें जन्म न लेना पड़े ऐसे विशुद्ध निर्वाण पदका प्रदान करने वाला है। जो रागादिक रूप तीव्र अंधकारको नाश करनेके लिए सूर्यमण्डलके समान है। वह मंत्र है—श्रीमद्वृषभादिवर्द्धमानान्तेभ्यो नमः। मंत्र कोई भी हो, प्राय: सभी मंत्रोंके आधारसे परमतत्त्वका स्मरण किया जा सकता है और जो शुद्ध तत्त्व है, ज्ञानस्वरूप है उस ज्ञानस्वरूपके स्मरणमें ही सर्व लक्ष्योंकी सिद्धि है। संसार सारा दुःखरूप है, और यहां मनुष्यभवमें और दुःख हैं सो सही हैं ही। पशु पक्षी आदिक पर्यायोंमें भी हैं,

कीट पतिंगे वृक्ष आदिकमें भी हैं। ये सभी क्लेश तो हैं ही। किन्तु इस मनुष्यभवमें व्यर्थका एक नये ढंगका क्लेश और भी है—लोकमें नामवरीकी चाह। उसमें बाधा आये तो उससे क्लेश माना। कहीं सम्मान न हो सके, कहीं अपमान हो जाय, कहीं अपनी प्रतिष्ठा गिरते मालूम पड़ने लगे तो उसका क्लेश और व्यर्थका होने लगता है। यों यह संसार सर्व ओरसे दुःखरूप है। दुःखरूप है संसार—इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, यह स्वरूप ही है। संसार सुखस्वरूप तो न बन जायगा। यदि संसार ही सुखस्वरूप बने तो फिर निर्वाणकी आवश्यकता क्या? और जो मुक्त हुए हैं, क्या वे ठलुवा ही मुक्त हो गए? जब संसार सुखस्वरूप था तो मुक्त क्यों हो गए? यह संसार दुःखरूप है और चूंकि यह सम्बंधरूप संसार है, शरीरका आत्माका सम्बंध है, और विकल्पोंसे इसका परिवारका मित्रोंका सम्बंध है। उन सम्बंधोंके कारण इसका यह संसार और क्लेशरूप हो गया है। यदि दुःखोंसे मुक्ति चाहिए तो मुख्य उपदेश यह है कि सर्वविकल्पोंको छोड़कर सबकी उपेक्षा करके ज्ञानमात्र जो निज अंतस्तत्त्व है उसमें ही बसकर तृप्त रहे, संतुष्ट रहे।

निर्विकल्पकताके उपायमें अन्तस्तत्त्वके आलंबनका विधान—निर्विकल्पकताका उपाय तो उन मनुष्योंसे बन सकता है, जिन्होंने सर्वपरिग्रहोंका त्याग किया। चिंता शोकका कोई प्रकरण नहीं रहा ऐसे मुनि जन ही इस लक्ष्यकी पूर्ति कर सकते हैं, पर जो श्रावक जन हैं उनका क्या कर्तव्य है? तो जितना ज्ञान और श्रद्धानका प्रकरण है, विषय है वह तो मुनियों समान ही श्रावकके होता है। श्रद्धा और प्रयोजनभूत ज्ञानमें श्रावक और मुनिमें अंतर नहीं होता। अंतर है तो एक संयम और चारित्रका, तपश्चरणका। तो श्रद्धा और ज्ञानमें तो परिपूर्ण कुशल होना ही चाहिए। अब रही चारित्रकी बात। तो लक्ष्यको सही बनाये रहना यह भी एक चारित्रका अंश ही है और जिसे कहेंगे स्वरूपाचरण। स्वरूपका सुगरूप आचरण है। स्वरूपाचरणका बहुत बड़ा विस्तार है, और अनेक पदवियोंमें अनेक विकासरूप इसके अर्थ हैं। कहीं स्वरूपका आचरण प्रतीतिरूप है, कहीं स्वरूपका आचरण स्वरूपमें स्थिरतारूप है, कहीं आत्मस्वरूपका आचरण स्वरूपमें विशेष स्थिरता रूप है और कहीं आत्यंतिक स्थिरता है। सदाके लिए आत्मामें लीन हो गया, निर्विकल्प हो गया, तो श्रद्धा और ज्ञानमें श्रावककी मुनि के साथ समानता है। अब चारित्रके प्रकरणमें गृहस्थका क्या कर्तव्य है, उसे अपनी रात दिन की चर्या कैसी बनानी चाहिए उससे विशेष सम्बंध है। जो गृहस्थ अपने आपको ७ व्यसनोंसे दूर रखता है—जुवा, मांस, मदिरा, हिंसा, चोरी, व्यसन, सम्बंध आदि। उस पुरुषके यह पात्रता रहती है कि समय-समयपर वह जब कभी ज्ञानका अनुभव कर सके। जो मनुष्य इन व्यसनोंके आधीन है उसकी वासनामें निरंतर इनका ही ख्याल है। पापमें और व्यसनमें इतना अन्तर है कि पाप तो हो गया, पर उसकी वासना और उसका तांता उस ही रूप पाप करनेकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रकृति नहीं है, उदयवश पाप बन गया है और व्यसनमें यह बात है कि उसका तांता लग जाता है, परम्परा बढ़ती तो वासना बनी रहती है। तो जो व्यसनोंमें प्रवृत्ति करता है उस पुरुषका धर्ममें अधिकार नहीं है। तो व्यसनोंसे दूर रहें। दूसरी बात—अपने समयपर आजीविकाका साधन करें और अपनेको ऐसे तपश्चरणमें लगायें जो गृहस्थोंके योग्य है। जो भी अपनी आय हो, पुण्यके अनुसार जितना जो कुछ प्राप्त हो उसके अंदर ही अपना गुजारा करना और प्रसन्न रहकर उतनेमें ही गुजार रखकर प्रसन्न रहकर अपना बहुत समय ज्ञानाभ्यासमें धर्मपालनके प्रसंगमें रहना, यह कर्तव्य है।

निर्दोष जीवन वालोंको ध्यानविधानमें अलौकिक लाभ—निर्दोषविधिसे जो अपना जीवन चलाते हैं वे धर्मध्यानके प्रकरणमें जिस किसी भी मंत्र पदका ध्यान करते हुए उस परमतत्त्वकी ही सुधि लेते हैं। इस कारण सभी मंत्र पदमें करीब-करीब यह बात बतायी गयी है कि इस ध्यानसे जीव संसारसे पार हो सकते हैं। तो कोई यों शंका करने लगे कि किसी मंत्रसे तो संसारसे पार होता और किसी मंत्रसे यह संसारमें ही मौज करता। तो भाई जिसका लक्ष्य विशुद्ध है उसके लिए सभी मंत्र सहारे हैं निर्वाण प्राप्तिके लिए और निर्वाण मार्गमें पहुंचनेसे पूर्व उस मंत्रका ही क्या, किसी भी चर्चाका विकल्प नहीं रहता है। एक मात्र ज्ञानात्मक अपने आपका अनुभव रहा करता है। इस मंत्रमें वृषभ से आदि लेकर वर्द्धमान पर्यंत २४ तीर्थंकरको नमस्कार किया गया है। इनका नाम भी भक्तिपूर्वक लेनेसे बहुतसे पापों का क्षय होता है। नामके साथ ही साथ उनकी मुद्रा, उनकी चर्या, उनकी गम्भीरता, किस प्रकार उन्होंने दीक्षा ली, किस तरह तपश्चरण किया, कैसे दिव्यध्वनि खिरी, यह सब चित्रण भक्तके सामने आ जाता है तो इसी कारण उनका नाम लेनेसे भी अनेक पाप दूर होते हैं।

नाभिज चतुर्मुख आदि ब्रह्माके स्तवनमें नामस्मरणकी महिमाका चित्रण—भक्तामर स्तोत्रमें एक काव्यमें बताया है ना कि हे भगवन! स्तवन करनेकी बात तो दूर रही, तुम्हारा नाम मात्र लेनेसे भी अनेक पापोंका क्षय होता है। जब अपने भाव भीगें, अपने परिणामोंमें विशुद्धता जगे तभी तो पापका क्षय होता है। नाम मात्र लेनेसे क्षय होता, पर नाम लेने वाले के ऐसी श्रद्धा है, ऐसा ज्ञान है कि उस समय तत्त्वस्वरूपका भी उपयोग रखता है। ऋषभदेव जो इस चतुर्थकालके भी पहिले उत्पन्न हुए और इस चतुर्थकालकी सर्व व्यवस्था बनानेके वे कारण हुए, इसी कारण लोकमें यह प्रसिद्धि हुई कि ब्रह्माने सृष्टि रची। वे ब्रह्मा यही आदि पुरुष हैं। ब्रह्माके अनेक नाम भी इस बातकी पुष्टि करते हैं। प्रथम तो यह प्रसिद्धि है कि ब्रह्मा नाभिसे कमल निकला उसके उत्पन्न हुए। तो ये ही आदिनाथ नाभिराजासे उत्पन्न हुए। ब्रह्माको चतुर्मुख बताया है। इन आदिनाथ भगवानके समवशरणमें चारों ओरसे लोगों को मुख दिखता था, यह एक उनके अतिशयकी बात है। कहीं उनके चार मुख लग गए हों

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भगवतपनेकी महिमा बढ़ानेके लिए, ऐसी बात नहीं है। यहाँ तो कोई दो मुख वाला बच्चा पैदा हो जाय, जैसा कि कभी-कभी अखबारोंमें सुनते हैं, तो वह भी शायद दो चार मिनट ही जीवित रहता होगा। तो ये सब बातें अव्यावहारिक हैं कि चार मुंह हो जायें, कहाँ-कहाँसे हो जायें, किस जगहसे कैसे चार मुख बन गए, अरे चारों ओरसे मुख दिखता था ऐसा अतिशय था, इस कारण आदिनाथ भी चतुर्मुख कहलाये। यदि भगवानका मुख चारों ओर बैठे हुए सभी लोगोंको न दिखता तो सभामें शांति न रह सकती थी। वहाँ बारह सभायें चारों ओर भरती हैं। हर एक कोई यही चाहेगा कि जिस ओर भगवानका मुख है वहीं जाकर बैठें। यदि चारों ओरसे मुख न दिखता तो देवोंमें, मनुष्योंमें सभीमें परस्परमें बड़ी-बड़ी लड़ाइयां हो जातीं। तो इसी व्यवस्थाके कारण उनमें एक ऐसा अतिशय था कि चारों ओरसे उनका मुख दीखता था। उस अतिशयका सम्बंध है एक परमौदारिक शरीरसे। जो शरीर ऐसा कांतिमान हो गया, स्फटिक मणिकी तरह स्वच्छ हो गया, ऐसे चमकते हुए कांतिमान निर्मल पारदर्शी शरीर में मुख आगे भी है लेकिन पीछे भी नजर आता है। जैसे स्फटिक मणिकी प्रतिमामें पीछेसे भी दर्शन करें तो मुख वही दिखता है, आगेसे दर्शन करें तो भी वही दिखता है, ऐसे ही भगवानके मुखमें भी एक ऐसा अतिशय है कि चारों ओर मुख दीखता है, और फिर जैसे मनुष्योंमें भी कोई यांत्रिक तांत्रिक, कोई मदारी वगैरह खेल दिखाता है तो वह भी एकसे एक अपना अतिशय बनाकर पैदा करता है कि लोग आश्चर्यमें पड़ जाते हैं, ऐसे ही वहां भी अतिशय है। वहाँ तो रचनामें देवोंकी प्रधानता है। उनकी रचनामें तो अतिशयका कहना ही क्या है। एक तो भगवानके केवलज्ञानका अतिशय और दूसरे देवोंकी विशिष्ट रचना जो मनुष्योंकी कृतिसे परे है। तो वहाँ ऐसा ही अतिशय है कि मुख चारों ओर दिखता है। तो जिस ब्रह्मा को लोगोंने चतुर्मुख बताया वे आदिनाथ थे। लोगोंने सृष्टिकर्ता ब्रह्माको बताया, तो ऐसे समय में जब कि लोग हैरान थे, किंकर्तव्यविमूढ़ थे, भोगभूमि समाप्त हो रही थी, क्या खायें, कैसे रहें, एक बड़ी विकट समस्याके कालमें उन्होंने सही व्यवस्था बनायीं। अपने ज्ञानसे जानकर प्रजाजनोंको उपदेश दिया, और प्रजाके लोग उनके उपदेशानुसार पुरुषार्थ करके ढंगसे जीवित रहने लगे। तो यह सृष्टिका रूप नहीं है क्या ? इस प्रकारसे ये आदिनाथ सृष्टिके कर्ता थे। कोई असत् पदार्थ एकदमसे बना देवे इस प्रकारकी सृष्टिकी बात नहीं कह रहे हैं। तो ब्रह्माका नाम लेनेसे ऋषभदेवका नाम तो अपनी कल्पनामें स्पष्ट होना चाहिए।

परमगुरुभक्तिका अनुपम प्रसाद—भावभीनी भावनासे भावित समस्त तीर्थंकरोंका जब जब नाम लिया जाय तब तब जैसा कुछ भी कल्पनामें बन सके उस तरह उनके गुणोंका स्मरण होवे। जैसा कुछ उनके चारित्रके बारेमें अध्ययन हो तो यों गुणस्मरणपूर्वक चौबीस तीर्थंकर परमदेवोंका नाम लेनेसे अनेक पापोंका क्षय वहीं हो जाता है। संकटोंसे निपटनेका उपाय तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

एक भगवद्भक्ति, अपने अंतःस्वरूपकी भक्ति, ऐसा ही धर्मपालन है जिसके प्रसादसे ही पुण्य बढ़ता है और पुण्यसामग्री प्राप्त होती है। धर्मको कभी न भूलें। जब कभी दुःख आये तो उस समय भी यह साहस रखना चाहिए कि देखो घबड़ाकर अपनेको विह्वल बना लेनेसे दुःख छूट न जायेंगे किन्तु उन दुःखकी स्थितियोंमें और विशेषरूपसे धर्म और ज्ञानकी उपासनामें लगें। तो इन चौबीस तीर्थंकर परमदेवोंका नाम लेकर नमस्कार करते हुएके प्रसंगमें उनके गुण स्मरणकी भी बात होनी चाहिए। तो इन मंत्रोंसे रागादिक अंधकार दूर होता है, अपने स्वरूपका परिचय होता है जिससे विशुद्धि बढ़ती है और उस विशुद्धिसे अनेक पापोंका क्षय होता है, पुण्यरस बढ़ता है। धर्मभावके निकट पहुंचा करते हैं।

मनः कृत्वा सुनिष्कम्पं तां विद्यां पापभक्षिणीम्।
स्मर सत्त्वोपकाराय या जिनेन्द्रैः प्रकीर्तिता ॥१९९६॥

पापभक्षिणी विद्याके स्मरणका आदेश—अब हे मुने! मनको निष्कम्प बनाकर अब पापभक्षणी विद्याका स्मरण कर। ऐसी पापोंको नष्ट करने वाली विद्या जो समस्त जीवोंके उपकारके लिए जिनेन्द्र भगवानने बतायी है वह विद्या यही है जिसमें अनेक अक्षर हैं। ॐ अर्हंमुखकमलवासिनि पापात्मक्षयंकरि श्रुतज्ञानज्वालासहस्रप्रज्वलिते सरस्वति मत्पापं हन हन दह दह क्षां क्षीं क्षूं क्षौः क्षः क्षीरवरधवले अमृतसंभवे वं वं हूं हूं स्वाहा। श्रद्धापूर्वक इस ओर उपयोग लगानेसे जो चित्तमें एकाग्रता होती है उस एकाग्रतामें ही अनेक प्रभाव पड़े हुए हैं, उसमें धर्मतत्त्वका सम्बंध रखने वाले मंत्रपदोंका सम्पर्क होता है, इससे पापक्षयमें और विशेषता आती है। इस मंत्रमें सरस्वती ज्ञान देवताको, ज्ञानस्वरूपको, आत्माके असाधारण स्वरूपको नमस्कार किया है, सावधान किया है और उस ही सरस्वतीसे अर्थात् आत्मस्वरूपसे आशा लगायी है। सरस्वती कहो अथवा ज्ञानप्रकाश कहो, अलंकारमें उसे सरस्वती देवी कहते हैं सरस्वती शब्दका अर्थ है फैलाव वाली। जिसका बहुत बड़ा फैलाव है उसे सरस्वती कहते हैं। अब खोज करके बतावो कि सबसे अधिक फैलाव किसका है? कोई कहे कि आकाशमें है सबसे बड़ा फैलाव, तो ठीक है उसका कहना, पर ऐसे बड़े फैलाव वाले आकाशको जिस ज्ञानने जाना उस ज्ञानका फैलाव क्या आकाशसे कम है? ऐसे समग्र आकाशको, समस्त पदार्थोंके समूहको, जीव पुद्गल आदिक अन्य समस्त पदार्थोंके समूहको जिस ज्ञानीने जाना उस ज्ञानमें अभी इतनी सामर्थ्य और है कि ऐसे लोकालोक, ऐसे समस्त वैभव यदि इससे असंख्यातगुने भी और होते तो वे भी सबके सब इस ज्ञानमें प्रगट होते। तब ज्ञानका फैलाव इस आकाशके फैलावसे भी बहुत बड़ा है। इससे सरस्वती नाम है ज्ञानविकासका। अब चूंकि ज्ञानविकासमें साधनशास्त्र हैं, मंत्र जाप हैं, ध्यान भी हैं तो इन सबका प्रतीक उस सरस्वतीके हाथमें दिखाया है।

सरस्वतीका अलंकारिक चित्रण—सरस्वतीके एक हाथमें पुस्तक है जो ज्ञानका संकेत

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

करती है, वीणा है जो संगीतका संकेत करती है। संगीत एक ऐसा निर्मल और मनको पवित्र रखने वाला तत्त्व है कि जिससे पापकी वासना दूर होती है। भले ही आजकलके जो थोड़ा गंदे गायन चले हैं वे पापवासनाकी ओर प्रेरित करें, पर संगीत वास्तवमें पापवासनाको दूर करनेमें कारण है। उस संगीतके सुनने वाले लोग भले ही कुछ सोच लें पर गाने वालेके चित्त में उतनी अपवित्रता नहीं आती, चाहे वह किसी भी प्रकारका गाना गाता हो। कमी बेसी जरूर रहती है, कारण यह है कि संगीतकी ओर उसका उपयोग अधिक है, विषयोंके लिए उपयोग नहीं है, । फिर जो बहुत विशुद्ध भजन है जिसमें वीतरागताकी, सर्वज्ञताकी, आत्म-स्वरूपकी बात है उसके गानेसे तो चित्तमें एक विशुद्धि बढ़ती है। तो सरस्वतीके हाथमें वीणा भी बताई गयी है जिससे लोग संगीतके उपायसे भी ज्ञानके विकासमें लगें। एक हाथमें माला दिखाया कि जाप और ध्यानके प्रतापसे अपने चित्तको निर्मल बनायें। पुस्तक दिखायी गयी ताकि स्वाध्यायसे पवित्र बनें। शंख दिखाया—प्रणव मंत्रका, ॐ मंत्रका, एक गम्भीर ध्वनिका उच्चारण करके अपने आपके अंगोंको पवित्र बना लें और उपयोगको भी पवित्र बनायें। तो जो साधन हैं उनका संकेत बनाकर एक सरस्वतीकी मूर्ति लोगोंने बना ली, पर सरस्वती वास्तवमें नाम है विद्याका, ज्ञानविकासका। तो यह सरस्वती अरहंत भगवानके मुख-कमलमें निवास करती है। सरस्वतीको कमलवासिनी बताया है लोगोंने, मगर वह कौनसा कमल है ? वह कमल है अरहंतदेवका मुखकमल। जिससे दिव्यध्वनि निकली, जो समस्त पापोंका क्षय करती है। जिसके श्रवणसे, चिंतनसे, उच्चारणसे विषयकषाय पाप दूर भाग जाते हैं। तो ऐसी उस ज्ञानविद्याका स्मरण करके उससे आशा की है कि मेरे पापोंको नष्ट करे, जलावे और बीजाक्षर मंत्रमें जो इस विद्याका प्रतीक संकेत रखता है उन बीज अक्षरोंको बोलकर इस मंत्रको स्वाहाके साथ भक्तिपूर्वक बोला जाता है। सभी मंत्रोंका लक्ष्य है आत्मस्वरूपका। जो विशुद्ध है, अविकारी है, ज्ञानमात्र है उसके ध्यानसे पुण्यरस बढ़ता है, पापोंका क्षय होता है, धर्ममें प्रगति होती है। तो यह योगी ध्यानी पुरुष इन उपायोंसे अपने आत्माको सम्हाले रहता है।

चेतः प्रसत्तिमाधत्ते पापपङ्कः प्रलीयते।
आविर्भवति विज्ञानं मुनेरस्याः प्रभावतः ॥१९९७॥

पापभक्षिणी विद्याकी आराधनाका प्रताप चित्तप्रसाद पापप्रलय व विज्ञानाविर्भाव— जो ऊपरके श्लोकोंमें पापभक्षणी विद्याकी आराधना बतायी है उस विद्याके प्रभावसे; मंत्रके ध्यानसे मुनिका चित्त प्रसन्नता धारण करता है और पाप नष्ट होते हैं, विशिष्ट ज्ञान उत्पन्न होता है। इसमें सरस्वतीकी आराधना है और अरहंतके स्मरण सहित और श्रुतज्ञानकी प्रभावना सहित सरस्वतीकी आराधनामें पापोंको नष्ट करनेकी और अमृत तत्त्वका पान करनेकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इसमें आराधना की गई है। सो चित्त विशुद्ध होता है। चित्तमें जिस प्रकारका ध्यान करता है उस प्रकारकी चित्तमें उद्भूति होती है। आत्माके प्रसादके फलसे पाप दूर होते हैं और विशिष्ट ज्ञान उत्पन्न होता है।

पदस्थध्यान वर्णन प्रकरण (३८)

मुनिभिः संजयन्ताद्यैर्विद्यावादात्समुद्धृतम् ।
भुक्तिमुक्तेः परं धाम सिद्धचक्राभिधं स्मरेत् ॥१९९८॥

भुक्तिमुक्तिके परमधाम सिद्धचक्र नामक मंत्रके स्मरणका विधान—तत्पश्चात् सिद्ध चक्र नामा मंत्रको संजयन्तादिक महामुनियोने विद्यानुवाद नामा दशम पूर्वसे उद्धृत किया है—सो यह मंत्र भोग और मोक्षका उत्कृष्ट धाम है, मुनिजन इसका स्मरण करें। संजयन्तने किसी कालमें मंत्रोंकी आराधनामें और मंत्रोंके ध्येयमें प्रसिद्ध मुनिराज हुए, उनका उदाहरण देकर कहा कि यह सिद्धचक्र नामक मंत्र जो अभी आगे कहा जायगा यह मोक्षका और भोगका उत्कृष्ट धाम है। मंत्र शास्त्र जितने निकले हैं वे विद्यानुवाद नामक १०वें पूर्वसे निकले हैं। श्रुत ११ अंग और १४ पूर्वमें हैं, सो यों समझिये कि ११ अंग मिलकर भी उतने प्रमाणके नहीं हो पाते जितना कि १२वें अंगका प्रमाण है। १२वें अंगमें न्यायशास्त्र दृष्टिवाद और अनेक प्रकारके जो १४ पूर्व हैं उनमें बहुत-बहुत विद्या और विज्ञानका प्रवेश है। तो पूर्व है, चूलिका है, ये सब १२वें अंगके भेद हैं। तो दशम जो विद्यानुवाद नामक पूर्व है उससे इस मंत्रका उदाहरण है। यह मंत्र भोग और मोक्षका उत्कृष्ट धाम है। उसकी आराधनाके लिए मुनीश्वरोंने कहा है। आराधनाका प्रयोजन तो एक निज सहज ज्ञानस्वरूपका लक्ष्य पहिचानना है। जिसका लक्ष्य सीधा ज्ञानभावसे ही पहिचाना जाता है, वह पुरुष तो स्वयं मंत्र है, पर जिस सहज ज्ञानस्वभावपर सहज दृष्टि नहीं पहुंचती है, विलम्ब रहता है तब ऐसी स्थितिमें कोई विषय कषाय आदिकके उपद्रव आक्रमण न कर सकें उसके लिए कुछ धार्मिक चर्या होनी आवश्यक है। उसकी ही पूर्तिके लिए यह मंत्र आराधना है। तो जो मुक्तिके इच्छुक हैं उनके मंत्र आराधनाका यही प्रयोजन है और इसका तत्काल प्रभाव भी पड़ता है। किसी भी मंत्रका जैसी उसमें विधि बतायी गई है उस विधिसे मंत्रका आराधन करें तो उपयोग एक जगह टिका, चित्तकी एकाग्रता हुई, अनेक विषय कषायोंके विकल्प दूर हुए और ऐसी स्थितिमें उसे अवसर है कि ज्ञानमूर्तिमें अंतस्तत्त्वका अवलोकन करें। तो इसमें सिद्धचक्र नामक मंत्रके लिए स्मरणकी प्रेरणा की है।

तस्य प्रयोजकं शास्त्रं तदाश्रित्योपदेशतः ।
ध्येयं मुनीश्वरैर्जन्ममहाव्यसनशांतये ॥१९९९॥

सिद्धचक्रमंत्रकी जन्मव्यसनशान्तिके लिये ध्येयता—इस सिद्धचक्र मंत्रके प्रयोजक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अर्थात् जिन शास्त्रोंमें मंत्रका वर्णन है उन शास्त्रोंका आश्रय लेकर उनके उपदेशसे मुनीश्वरों को जन्मरूपी महासंकटकी शान्तिके लिए ध्यान करना चाहिए। सिद्धचक्रमें ध्यान तो तत्त्व है सिद्धका समूह अथवा सिद्धस्वरूप। सिद्ध भगवानके नमस्कार करनेकी आम जनतामें धारणा थी, प्रवृत्ति थी, और एक मंत्र जिसको बिगाड़कर लोग यों कहने लगे—ओनामासीधं। बहुत पहिले समयमें पाठशालावोंमें जो ब्राह्मण लोग पाठ पढ़ाते थे वे इस ही शब्दसे पढ़ाना शुरू करते थे। ओनामासीधं—इसका अर्थ न तो पढ़ाने वालोंको मालूम रहता था और न पढ़ने वालोंको, किन्तु यह एक रिवाज था। पढ़ने वाले लोग समझ लेते थे कि हमने एक पाटी पढ़ ली, हमने दो पाटी पढ़ ली, हमने तीन पाटी पढ़ ली। सो वह पाटी क्या थी ? वह पाटी थी कातंत्र व्याकरण। जो जैन आचार्योंका बनाया हुआ है उसका सूत्र है। यह बहुत प्राचीन व्याकरण है। इसका शुद्ध शब्द है ॐ नमः सिद्धं। दूसरा मंत्र है ॐ नमः सिद्धेभ्यः। लेकिन ॐ नमः सिद्धेभ्यः की अपेक्षा ॐ नमः सिद्धंमें मर्म बहुत है। ॐ नमः सिद्धेभ्यः का अर्थ है सिद्धोंको नमस्कार हो और ॐ नमः सिद्धंका अर्थ है जिसमें नमस्कार किया जा रहा हो, जिसमें जो गुण हों वे मुझमें प्रगट हों। ॐ नमः सिद्धंका प्रयोग प्रारम्भमें पाटियोंमें था, और जो गलत सूत्र पढ़ा था—और उस गलत सूत्रका गलत अर्थ भी लगाने लगे। पहिले पढ़ाने वालेको १५ दिनमें एक दिन आटा, दाल, चावल वगैरह सूखा भोजन, जिसे सीधा कहते हैं, उन पढ़ने वालोंकी तरफसे दिया जाता था। तो लोगोंने उस सिद्धंका अर्थ सीधा जान लिया। अर्थ उसका यह है, शुद्ध शब्द यह है सिद्धोवर्णसमानाय, अक्षरोंकी परम्परा बिना बनाये अनादिकालसे स्वयं चली आयी हुई है, जिसको अजैन व्याकरण कहता है कि महादेवने डमरू बजाया और उसमें से ये अक्षर निकले, और जैन आचार्य यह कहते हैं कि अक्षरोंकी परम्परा अनादिकालसे स्वयं सिद्ध है, इस आध्यात्मिक ढंगसे वैज्ञानिक ढंगसे सुगमतासे इस व्याकरणकी रचना हुई थी। तो सिद्धचक्रमें अनेक सिद्धोंका समूह स्मरणमें लेना। सिद्ध स्वरूपको स्मरणमें लेनेका प्रयोजन सिद्धस्वरूप का स्मरण करना ही है अनेक सिद्धोंके स्मरण में भी। उस सिद्धचक्रका मंत्र जो अभी बतावेंगे उसकी आराधना जन्मरूप महाकष्टकी शान्ति के लिए होती है। यह विशुद्ध मंत्र है और विधान है, सिद्धचक्र विधान, और मंत्रोंका लक्ष्य तो यह है कि हमारा यह संसार जन्म मरण शरीर मिलनेकी परम्परा नष्ट हो और सिद्धके समान ही मैं अपने आपके स्वरूपका अनुभव करूँ। तो उस जन्मरूप महाकष्टकी शान्तिके लिए इन मंत्रोंका ध्यान करना चाहिए।

स्मर मन्त्रपदाधीशं मुक्तिमार्गप्रदीपकम्।
नाभिपङ्कजसंलीनमवर्णं विश्वतोमुखम् ॥२०००॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सिवर्णं मस्तकाम्भोजे साकारं मुखपङ्कजे ।
आकारं कण्ठकञ्जस्थं स्मरोपकारं हृदि स्थितम् ॥२००१॥

"अ सि आ उ सा" मंत्रके अक्षरों, विविध उत्तम देहस्थानोंमें स्थापित करके ध्यान करने का विधान—हे मुने ! तू मंत्र पदोंका स्वामी और मुक्तिके मार्गको प्रकाश करने वाले अकार अक्षरको नाभिकमलमें चिन्तवन कर । पंचपरमेष्ठियोंमें उनके वाचक अक्षरोंमें जो प्रथम अक्षर हैं उनको उच्चारणमें लेकर यह मंत्र बना है । अ सि आ उ सा । इस अ शब्द को नाभिकमलमें चिन्तवन करें । यह अक्षर सर्वव्याप्ति है । चारों ओर इसका मुख है । अ अक्षरमें विशेषता वह बतायी जायगी जो अ के वाच्यभूत अरहंतमें विशेषता है । शब्दोंका माहात्म्य शब्दोंके वाच्यभूत पदार्थोंकी महिमाके साथ जुड़ जाता है, क्योंकि उस शब्दमें ही अर्थको बता रहे हैं । अरहंत शब्दका अगर माहात्म्य बताते हैं तो अरहंतस्वरूपका जो माहात्म्य है उस ही प्रकार वर्णन करके अरहंत शब्दकी महिमा बतायी जायगी । अरहंतके स्वरूप का स्मरण करनेसे पाप नाश होते हैं तो अरहंत शब्दमें महिमामें भी यह बताया जायगा । यह अ अक्षर मंत्रपदोंका स्वामी है और मुक्तिमार्गका प्रकाश करने वाला है । अरहंत मुक्तिमार्ग का प्रकाश करते हैं ना, तो उनकी यह मूर्ति बनाया, मुद्रा बनाया । जैसे मूर्तिको देखकर, फोटो को देखकर हम झट बोल उठते हैं कि यह अमुकचन्द हैं, इसी प्रकार इन अक्षरोंको देखकर इन पदोको देखकर हम भी झट बोल देते हैं कि यह अमुक है । तो ये अक्षर सब आधारभूत पदार्थकी मूर्तियां हैं तो जैसे हम अरहंत भगवानकी मूर्तिमें वही विशेषता बोला करते हैं कि धन्य हैं, ये मोक्षमार्गको प्रगट करने वाले हैं, चारघातियाकर्म नाश कर दिया है । मूर्तिसे व्यवहारभेद है । उनमें जो विशेषता है उसी विशेषताको हम मूर्तिमें कहा करते हैं, इसी प्रकार यह साकार मूर्ति है और अक्षर जो है वह एक निराकार मूर्ति है । अ मंत्रसे अरहंतका बोध हो गया तो अब यह अ अरहंतकी मूर्ति हो गयी । तो जो विशेषता अरहंतमें कही जाती है, वह विशेषता इस अ मंत्रमें भी रही । जो श्रुतविद्याका श्रद्धालु पुरुष है वह इन प्रत्येक अक्षरोंका विनय करता है । तो अ अक्षरको नाभिकमलमें विचारो और सि अक्षरको मस्तक कमलमें विचारो । आ अक्षर जो आचार्य परमेष्ठीका वाचक है उसको कंठस्थ कमलमें विचारें । कंठकी जगह कमल रचना सोचें और वहाँ आ अक्षर है ऐसी स्थापना करें । उ अक्षरको हृदय कमलमें और सा अक्षरको मुखस्थ कमलपर विचारें । उ अक्षर उपाध्यायका वाचक है और सा अक्षर साधुका वाचक है । इन ५ अक्षरोंको ५ स्थानोंपर चिन्तवन करें । असिआउसा । सिद्धचक्रका विधान करते समय भी इसी मंत्रका जाप बोलते हैं, जो लक्ष मंत्र जपे, सवा लक्ष जपे असिआउसा, इसमें थोड़ी और विशेषता कर देना, प्रथम ॐ ह्रीं लगाकर अंतमें नमः बोल देना—ॐ ह्रीं असिआउसा नमः । असिआउसा यह निपात शब्द है, इसलिए उसमें य शब्द

जोड़नेकी जरूरत नहीं है। जैसे लोग बोल देते हैं असिआउसाय नमः। तो यह न बोलना चाहिए। असिआउसा ये शब्द सब विभक्तिमें लगते हैं।

सर्वकल्याणबीजानि बीजान्यन्यानपि स्मरेत्।
यानाराध्य शिवं प्राप्ता योगिनः शीलसागराः ॥२००२॥

सर्वकल्याणबीजभूत अन्य बीजमन्त्रोंके ध्यानका आदेश—सर्व कल्याणके बीज अन्यान्य भी मंत्र हैं जिनकी आराधनासे योगीजन मोक्षको प्राप्त हुए। उन सभी अक्षरोंका मुनि ध्यान करें। जैसे एक मंत्र है—'नमः सर्वसिद्धेभ्यः' इस मंत्रमें जिसका स्मरण किया गया है उसका स्वरूप समा जाय हृदयमें तो मंत्रका प्रभाव अत्यन्त अधिक बढ़ जाता है। जब सिद्धोंको नमस्कार किया जा रहा हो, कोई गुफामें विराजमान आत्मतत्त्वका एकाग्र होकर ध्यान कर रहे हैं, कोई पर्वत शिखापर विराजमान होकर आत्मचिन्तन कर रहे हैं, कोई नदीके तटपर, कोई जंगलोंमें, ऐसे विचित्र नाना एकांत स्थानोंमें चिन्तवन करते हुए बहुतसे मुनिराजोंके स्वरूपको हृदयमें सोचें और इस चिन्तनके साथ फिर सिद्धोंको नमस्कार करें। 'नमः सर्वसिद्धेभ्यः' इन शब्दोंको बोलकर सब चित्रणमें आये हुए मुनिजनोंको नमस्कार करें तो इस भांति पूर्ण ध्यान से आत्मामें विशुद्धि बढ़ती है, प्रसन्नता होती है, तृप्ति जगती है, आत्मीय विशुद्ध आनन्द प्रगट होता है, कर्मकलंक भी नष्ट होते हैं।

श्रुतसिन्धुसमुद्भूतमन्यद्वा पदमक्षरम्।
तत्सर्वं मुनिभिर्ध्येयं स्यात्पदस्थप्रसिद्धये ॥२००३॥

आधारभूत परमतत्त्वकी प्रसिद्धिके लिये अन्य अक्षर पदोंके भी ध्यानका उपदेश—अन्य भी पद तथा अनेक अन्य अक्षर जो श्रुतसमुद्रसे अर्थात् द्वादशांग शास्त्रसे उत्पन्न होते हैं वे सभी पदस्थ ध्यानकी प्रसिद्धताके लिए हैं, उन्हें भी मुनि जन अपने ध्यानमें लायें, ध्यानगोचर उन्हें भी बनायें। एक एक अक्षरका ध्यान भी अद्भुत महिमाको बढ़ाता है, इस बातपर इस आधारपर कि उस अक्षरका आधारभूत जो परमतत्त्व है वह स्मरणमें रहे। सब ध्यानोंमें विशुद्ध ध्यान है अपने आत्माके विशुद्ध स्वरूपका ध्यान। यह बहुत ऊँची दशा है अपनी जो अपनेमें ऐसा भाव जगे, ऐसी प्रेरणा मिले कि यह मैं इस स्वरूपमें मग्न होऊँ, बस यही मेरे लिए वास्तविक काम है। अन्य सब तो एक विषयकषायोंसे निपटनेके लिए आधार है, आश्रय मात्र है, करनेका मुख्य काम तो एक आत्ममग्नता है और ज्ञानी पुरुषोंको यह आत्मज्ञानके रूपमें ज्ञानके ही नेत्र द्वारा स्पष्ट प्रतीत होता है। प्रदेश दिखते हों यह बात नहीं कह रहे, किन्तु जैसे अंधेरेमें किसी चीजको टटोलकर जाना जाय तो न दिखनेपर भी वह चीज तो प्रत्यक्ष हो जाती है ना, आँखोंसे दीखे तब वह प्रत्यक्ष कहलाये सो बात नहीं। अंधेरेमें टटोलकर भी किसी चीजको ग्रहण कर सके तो वह स्पष्ट भी तो मालूम पड़ रहा है, इसी प्रकार प्रदेश भी

सिवर्णं मस्तकाम्भोजे साकारं मुखपङ्कजे ।
आकारं कण्ठकञ्जस्थं स्मरोपकारं हृदि स्थितम् ॥२००१॥

"अ सि आ उ सा" मंत्रके अक्षरों, विविध उत्तम देहस्थानोंमें स्थापित करके ध्यान करने का विधान—हे मुने ! तू मंत्र पदोंका स्वामी और मुक्तिके मार्गको प्रकाश करने वाले अकार अक्षरको नाभिकमलमें चिन्तवन कर। पंचपरमेष्ठियोंमें उनके वाचक अक्षरोंमें जो प्रथम अक्षर हैं उनको उच्चारणमें लेकर यह मंत्र बना है। अ सि आ उ सा। इस अ शब्द को नाभिकमलमें चिन्तवन करें। यह अक्षर सर्वव्याप्ति है। चारों ओर इसका मुख है। अ अक्षरमें विशेषता वह बतायी जायगी जो अ के वाच्यभूत अरहंतमें विशेषता है। शब्दोंका माहात्म्य शब्दोंके वाच्यभूत पदार्थोंकी महिमाके साथ जुड़ जाता है, क्योंकि उस शब्दमें ही अर्थको बता रहे हैं। अरहंत शब्दका अगर माहात्म्य बताते हैं तो अरहंतस्वरूपका जो माहात्म्य है उस ही प्रकार वर्णन करके अरहंत शब्दकी महिमा बतायी जायगी। अरहंतके स्वरूप का स्मरण करनेसे पाप नाश होते हैं तो अरहंत शब्दमें महिमामें भी यह बताया जायगा। यह अ अक्षर मंत्रपदोंका स्वामी है और मुक्तिमार्गका प्रकाश करने वाला है। अरहंत मुक्तिमार्ग का प्रकाश करते हैं ना, तो उनकी यह मूर्ति बनाया, मुद्रा बनाया। जैसे मूर्तिको देखकर, फोटो को देखकर हम झट बोल उठते हैं कि यह अमुकचन्द हैं, इसी प्रकार इन अक्षरोंको देखकर इन पदोको देखकर हम भी झट बोल देते हैं कि यह अमुक है। तो ये अक्षर सब आधारभूत पदार्थकी मूर्तियां हैं तो जैसे हम अरहंत भगवानकी मूर्तिमें वही विशेषता बोला करते हैं कि धन्य हैं, ये मोक्षमार्गको प्रगट करने वाले हैं, चारघातियाकर्म नाश कर दिया है। मूर्तिसे व्यवहारभेद है। उनमें जो विशेषता है उसी विशेषताको हम मूर्तिमें कहा करते हैं, इसी प्रकार यह साकार मूर्ति है और अक्षर जो है वह एक निराकार मूर्ति है। अ मंत्रसे अरहंतका बोध हो गया तो अब यह अ अरहंतकी मूर्ति हो गयी। तो जो विशेषता अरहंतमें कही जाती है, वह विशेषता इस अ मंत्रमें भी रही। जो श्रुतविद्याका श्रद्धालु पुरुष है वह इन प्रत्येक अक्षरोंका विनय करता है। तो अ अक्षरको नाभिकमलमें विचारो और सि अक्षरको मस्तक कमलमें विचारो। आ अक्षर जो आचार्य परमेष्ठीका वाचक है उसको कंठस्थ कमलमें विचारें। कंठकी जगह कमल रचना सोचें और वहाँ आ अक्षर है ऐसी स्थापना करें। उ अक्षरको हृदय कमलमें और सा अक्षरको मुखस्थ कमलपर विचारें। उ अक्षर उपाध्यायका वाचक है और सा अक्षर साधुका वाचक है। इन ५ अक्षरोंको ५ स्थानोंपर चिन्तवन करें। असिआउसा। सिद्धचक्रका विधान करते समय भी इसी मंत्रका जाप बोलते हैं, जो लक्ष मंत्र जपे, सवा लक्ष जपे असिआउसा, इसमें थोड़ी और विशेषता कर देना, प्रथम ॐ ह्रीं लगाकर अंतमें नमः बोल देना—ॐ ह्रीं असिआउसा नमः। असिआउसा यह निपात शब्द है, इसलिए उसमें य शब्द

जोड़नेकी जरूरत नहीं है। जैसे लोग बोल देते हैं असिआउसाय नमः। तो यह न बोलना चाहिए। असिआउसा ये शब्द सब विभक्तिमें लगते हैं।

सर्वकल्याणबीजानि बीजान्यन्यानपि स्मरेत्।
यानाराध्य शिवं प्राप्ता योगिनः शीलसागराः ।।२००२।।

सर्वकल्याणबीजभूत अन्य बीजमन्त्रोंके ध्यानका आदेश—सर्व कल्याणके बीज अन्यान्य भी मंत्र हैं जिनकी आराधनासे योगीजन मोक्षको प्राप्त हुए। उन सभी अक्षरोंका मुनि ध्यान करें। जैसे एक मंत्र है—'नमः सर्वसिद्धेभ्यः' इस मंत्रमें जिसका स्मरण किया गया है उसका स्वरूप समा जाय हृदयमें तो मंत्रका प्रभाव अत्यन्त अधिक बढ़ जाता है। जब सिद्धोंको नमस्कार किया जा रहा हो, कोई गुफामें विराजमान आत्मतत्त्वका एकाग्र होकर ध्यान कर रहे हैं, कोई पर्वत शिखापर विराजमान होकर आत्मचिन्तन कर रहे हैं, कोई नदीके तटपर, कोई जंगलोंमें, ऐसे विचित्र नाना एकांत स्थानोंमें चिन्तवन करते हुए बहुतसे मुनिराजोंके स्वरूपको हृदयमें सोचें और इस चिन्तनके साथ फिर सिद्धोंको नमस्कार करें। 'नमः सर्वसिद्धेभ्यः' इन शब्दोंको बोलकर सब चित्रणमें आये हुए मुनिजनोंको नमस्कार करें तो इस भांति पूर्ण ध्यान से आत्मामें विशुद्धि बढ़ती है, प्रसन्नता होती है, तृप्ति जगती है, आत्मीय विशुद्ध आनन्द प्रगट होता है, कर्मकलंक भी नष्ट होते हैं।

श्रुतसिन्धुसमुद्भूतमन्यद्वा पदमक्षरम्।
तत्सर्वं मुनिभिर्ध्येयं स्यात्पदस्थप्रसिद्धये ।।२००३।।

आधारभूत परमतत्त्वकी प्रसिद्धिके लिये अन्य अक्षर पदोंके भी ध्यानका उपदेश—अन्य भी पद तथा अनेक अन्य अक्षर जो श्रुतसमुद्रसे अर्थात् द्वादशांग शास्त्रसे उत्पन्न होते हैं वे सभी पदस्थ ध्यानकी प्रसिद्धताके लिए हैं, उन्हें भी मुनि जन अपने ध्यानमें लायें, ध्यानगोचर उन्हें भी बनायें। एक एक अक्षरका ध्यान भी अद्भुत महिमाको बढ़ाता है, इस बातपर इस आधारपर कि उस अक्षरका आधारभूत जो परमतत्त्व है वह स्मरणमें रहे। सब ध्यानोंमें विशुद्ध ध्यान है अपने आत्माके विशुद्ध स्वरूपका ध्यान। यह बहुत ऊँची दया है अपनी जो अपनेमें ऐसा भाव जगे, ऐसी प्रेरणा मिले कि यह मैं इस स्वरूपमें मग्न होऊँ, बस यही मेरे लिए वास्तविक काम है। अन्य सब तो एक विषयकषायोंसे निपटनेके लिए आधार है, आश्रय मात्र है, करनेका मुख्य काम तो एक आत्ममग्नता है और ज्ञानी पुरुषोंको यह आत्मज्ञानके रूपमें ज्ञानके ही नेत्र द्वारा स्पष्ट प्रतीत होता है। प्रदेश दिखते हों यह बात नहीं कह रहे, किन्तु जैसे अंधेरेमें किसी चीजको टटोलकर जाना जाय तो न दिखनेपर भी वह चीज तो प्रत्यक्ष हो जाती है ना, आँखोंसे दीखे तब वह प्रत्यक्ष कहलाये सो बात नहीं। अंधेरेमें टटोलकर भी किसी चीजको ग्रहण कर सके तो वह स्पष्ट भी तो मालूम पड़ रहा है, इसी प्रकार प्रदेश भी

http://www.jainkosh.org

नजर आते। आत्मा अमूर्त है, पर ज्ञाननेत्र द्वारा ज्ञानका स्वरूप जब ध्यानगोचर हो रहा है तो यह आत्मा उस ज्ञानीको अपने आपमें स्पष्ट प्रतीत होता है। तभी उसका यह विचार हुआ कि बस इस ही में मैं मग्न होऊँ। प्रत्यक्षभूत हुआ यह आत्मा, जब इस प्रकार चिंतन हुआ बस इस ही में मग्न होता है, यहाँ ही रत रहता है, रत होनेका उत्साह जगता है। तब बहुत निकट पहुंचता है और निकट पहुंचते-पहुंचते भी विघ्न हो जाता है, कुछ ऐसी ही उदय प्रकृतियां हैं कि उसमें सफलता नहीं मिल पाती है, लेकिन उसके निकट पहुंचनेका भी जो एक विशिष्ट आनंद होता है वह आनन्द जगतमें किन्हीं भी भोगोंमें किसी भी स्थितियोंमें नहीं है, और ऐसा बार-बार अपने आत्मस्वरूपके निकट पहुंचने वाले भव्य जन किसी क्षण उसका अनुभव भी कर लिया करते हैं।

ध्याता योगिजनोंकी अलौकिक वृत्ति—जिन पुरुषोंको बाहरमें बहुत ख्याल लगते हैं, विकल्प मचते हैं, लौकिकता प्रवर्तती है, लोक लिहाज, लोक शर्म, सम्मानकी इच्छा, अपमान का भय, इन बातोंमें जिनका उपयोग अधिक उलझा होता है वे पुरुष इस आंतरिक तपश्चरण करनेके पात्र नहीं होते हैं। ध्यानसिद्धि वाले योगी, आत्मानुभव करने वाले ज्ञानी अलौकिक वृत्ति वाले होते हैं, लौकिक जनोंसे उनका मेल नहीं खाता। उनकी वृत्ति अलग ही है, संसार की परिपाटी बढ़ानेके सम्बंधको लिए हुए हैं, और ये ज्ञानी योगी अपनी एक ऐसी अलौकिक वृत्तिको लिए हैं जिनमें स्वयं आत्महित लगा है, आत्मीय आनन्दका अनुभव होता है उसकी धुनिमें रहते हैं। लोग क्या कहते हैं इस ओर उनका उपयोग नहीं उलझता है। स्वयंने क्या निर्णय किया है और अपना ही लक्ष्य जो मुक्तिमार्गका बीज है उसका अनुभव किया है, जाना है, उस लक्ष्यको वे छोड़ते नहीं हैं। तो उस लक्ष्यको न छोड़ने वाले लोग कदाचित् जैसे रामचंद्र जी का बहुत बड़ा उदाहरण देते हैं कि लक्ष्मणके गुजरनेके बाद कुछ समय ६ माह तक वे कैसा विह्वल रहे अथवा सीताके हरणके बाद उनमें कैसी विह्वलता रही, उतनी विह्वलता होनेपर भी जैसा कि प्रसिद्ध है कि उनके क्षपक सम्यक्त्व था तो आत्मप्रतीति न थी क्या? कितना अद्भुत उदाहरण है? ऐसी गम्भीर स्थितिमें भी आत्मप्रतीतिका काम वहाँ भी चल रहा था, विह्वलता होनेपर भी ज्ञानी पुरुषोंकी अन्तःवृत्ति एक अलग हुआ करती है।

आत्महितके लिये अन्तस्तत्त्वका पूर्ण लक्ष्य बना लेनेकी आवश्यकता—लक्ष्य पूर्ण सम्यक्रूपसे एक बार बना तो लीजिए। एक बार रुचि और ध्यान अपने आपके स्वरूपका बन तो जाय फिर समझ लीजिए कि बेड़ा पार है। संसारका आवागमन छूटेगा। संसाररहित केवल अपने आपके सत्त्वसे ही जैसा मेरा ज्ञानस्वरूप है, सहजभाव है, शुद्ध चैतन्य रागद्वेषसे रहितकी बात नहीं कह रहे, रागद्वेषरहित कहें ही क्यों? इस स्वरूपमें रागद्वेष थे ही कहाँ जो रहित बताया जाय। ऐसे शुद्ध नयकी दृष्टिसे उस सहजस्वरूपका निरखना हो रहा है। यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अनादिसे ही अपने स्वरूपरूप है, ज्ञानमात्र है, इसका स्वभाव आनन्दमग्न है। स्वभावमें कोई परतत्त्व नहीं प्रविष्ट होता है। भले ही परिणमन कितना ही उल्टा चल रहा हो तिसपर भी स्वभावमें कोई विरुद्ध तत्त्व नहीं घुसा हुआ है, कितना विचित्र निर्णय है ? पदार्थ एक ही है और वह पदार्थ मलिन पर्यायमें है, इतनेपर भी स्वभाव कभी भी मलिन नहीं होता। ऐसी निरख कितनी विशिष्ट प्रज्ञाका फल है। यों समझिये कि जैसे ऐक्सरा लेने वाला यंत्र होता है, आदमीको लिटा देते हैं और उसका फोटो लेते हैं तो वह यंत्र न कपड़ेको छूता है, न चमड़ेको, न मांस मज्जा आदिको। इन किसीको भी न छूकर केवल हड्डीका फोटो ले लेता है। कितना भीतरमें हड्डी है, पर उन सब आवरणोंको पार करके जैसे एक्सरा यंत्र मनुष्यके शरीरका फोटो ले लेता है ऐसे ही ये ज्ञानी पुरुष इतने आवरण होनेपर भी शरीर हैं, कर्म हैं, विभाव हैं, विचार हैं, परिणतियां हैं, पर्यायें हैं इन सबको पार करके एक सहज ज्ञानस्वरूपको ग्रहण कर लेते हैं, ऐसी उनकी प्रज्ञाकी विशेषता है। जिस पुरुषने ऐसे निज अंतस्तत्त्वका लक्ष्य बनाया है वह पुरुष उदयवश किन्हीं भी परिस्थितियोंसे उसे निपटना पड़ रहा हो, फिर भी जैसे पतंग उड़ाने वाले बालकके हाथमें डोर है तो वह पतंग कहीं नहीं गयी, उसके हाथमें है, और वह बालक भी ऐसा विश्वास बनाये हुए है कि मेरी पतंग कहीं गई नहीं है, मेरे ही हाथमें है। यद्यपि हाथसे बहुत दूर है लेकिन उस बालकको यह पक्का विश्वास है कि पतंग मेरे हाथमें ही है क्योंकि हाथमें डोर है। तो ऐसे ही प्रतीति वाले पुरुषके हाथमें उसका कल्याण ही है। कहाँ जायगा कल्याण ? भले ही अनेक परिस्थितियोंवश वह कुछ मजबूर हो लेकिन दृष्टि ले जाता उस ही तत्त्वकी ओर है। तो ध्यान उससे ही बनता है जिसको अपने लक्ष्यके पकड़नेकी धुनि बन जाय, और धुनि बन गयी इसकी पहिचान यह है कि उसे और कुछ न सुहाये, अन्य बातोंमें कोई महत्त्व न समझे, किसी भी इतर बातको कोई महत्त्व वाला ही समझे। एक तो लक्ष्यके ध्यानका ही निरन्तर प्रयास करे, दृष्टि दे, अभिमुख हो, ऐसा ध्यान करने वाला पुरुष इस मंत्रपदका सहारा लेकर भी उस ही परमलक्ष्यका ध्यान करता है। वह निज ज्ञायकस्वभाव है। जिस स्वरूपको लिए हुए है उस ही स्वरूपमें उपयोग विराजे तो उसके सर्व पाप तुरन्त ध्वस्त हो जाते हैं। रह गयी वासना तो वह भी अल्पकालमें ध्वस्त हो जाती है। जिस समय ज्ञानानुभवका परिणमन है उस समय पापका परिणमन नहीं है। इस कारण सब पाप ध्वस्त हो गए। पहिले पाप किया था उनकी वासना रह गयी, वह भी अल्पकालमें ही ध्वस्त हो जायगी। सो जो उत्कृष्ट ध्यान है निज अंतस्तत्त्व है उसका परिचय पायें, उसके ध्यानमें ही सन्तोष मानें तो इसमें ही अपने कल्याणकी सफलता है।

एवं समस्तवर्णेषु मन्त्रविद्यापदेषु च।
कार्यःक्रमेण विश्लेषो लक्ष्यभावप्रसिद्धये ॥२००४॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नजर आते। आत्मा अमूर्त है, पर ज्ञाननेत्र द्वारा ज्ञानका स्वरूप जब ध्यानगोचर हो रहा है तो यह आत्मा उस ज्ञानीको अपने आपमें स्पष्ट प्रतीत होता है। तभी उसका यह विचार हुआ कि बस इस ही में मैं मग्न होऊँ। प्रत्यक्षभूत हुआ यह आत्मा, जब इस प्रकार चिंतन हुआ बस इस ही में मग्न होता है, यहाँ ही रत रहता है, रत होनेका उत्साह जगता है। तब बहुत निकट पहुंचता है और निकट पहुंचते-पहुंचते भी विघ्न हो जाता है, कुछ ऐसी ही उदय प्रकृतियां हैं कि उसमें सफलता नहीं मिल पाती है, लेकिन उसके निकट पहुंचनेका भी जो एक विशिष्ट आनंद होता है वह आनन्द जगतमें किन्हीं भी भोगोंमें किसी भी स्थितियोंमें नहीं है, और ऐसा बार-बार अपने आत्मस्वरूपके निकट पहुंचने वाले भव्य जन किसी क्षण उसका अनुभव भी कर लिया करते हैं।

ध्याता योगिजनोंकी अलौकिक वृत्ति—जिन पुरुषोंको बाहरमें बहुत ख्याल लगते हैं, विकल्प मचते हैं, लौकिकता प्रवर्तती है, लोक लिहाज, लोक शर्म, सम्मानकी इच्छा, अपमान का भय, इन बातोंमें जिनका उपयोग अधिक उलझा होता है वे पुरुष इस आंतरिक तपश्चरण करनेके पात्र नहीं होते हैं। ध्यानसिद्धि वाले योगी, आत्मानुभव करने वाले ज्ञानी अलौकिक वृत्ति वाले होते हैं, लौकिक जनोंसे उनका मेल नहीं खाता। उनकी वृत्ति अलग ही है, संसार की परिपाटी बढ़ानेके सम्बंधको लिए हुए हैं, और ये ज्ञानी योगी अपनी एक ऐसी अलौकिक वृत्तिको लिए हैं जिनमें स्वयं आत्महित लगा है, आत्मीय आनन्दका अनुभव होता है उसकी धुनिमें रहते हैं। लोग क्या कहते हैं इस ओर उनका उपयोग नहीं उलझता है। स्वयंने क्या निर्णय किया है और अपना ही लक्ष्य जो मुक्तिमार्गका बीज है उसका अनुभव किया है, जाना है, उस लक्ष्यको वे छोड़ते नहीं हैं। तो उस लक्ष्यको न छोड़ने वाले लोग कदाचित् जैसे रामचंद्र जी का बहुत बड़ा उदाहरण देते हैं कि लक्ष्मणके गुजरनेके बाद कुछ समय ६ माह तक वे कैसा विह्वल रहे अथवा सीताके हरणके बाद उनमें कैसी विह्वलता रही, उतनी विह्वलता होनेपर भी जैसा कि प्रसिद्ध है कि उनके क्षपक सम्यक्त्व था तो आत्मप्रतीति न थी क्या ? कितना अद्भुत उदाहरण है ? ऐसी गम्भीर स्थितिमें भी आत्मप्रतीतिका काम वहाँ भी चल रहा था, विह्वलता होनेपर भी ज्ञानी पुरुषोंकी अन्तःवृत्ति एक अलग हुआ करती है।

आत्महितके लिये अन्तस्तत्त्वका पूर्ण लक्ष्य बना लेनेकी आवश्यकता—लक्ष्य पूर्ण सम्यक्‌रूपसे एक बार बना तो लीजिए। एक बार रुचि और ध्यान अपने आपके स्वरूपका बन तो जाय फिर समझ लीजिए कि बेड़ा पार है। संसारका आवागमन छूटेगा। संसाररहित केवल अपने आपके सत्त्वसे ही जैसा मेरा ज्ञानस्वरूप है, सहजभाव है, शुद्ध चैतन्य रागद्वेषसे रहितकी बात नहीं कह रहे, रागद्वेषरहित कहें ही क्यों ? इस स्वरूपमें रागद्वेष थे ही कहाँ जो रहित बताया जाय। ऐसे शुद्ध नयकी दृष्टिसे उस सहजस्वरूपका निरखना हो रहा है। यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अनादिसे ही अपने स्वरूपरूप है, ज्ञानमात्र है, इसका स्वभाव आनन्दमग्न है। स्वभावमें कोई परतत्त्व नहीं प्रविष्ट होता है। भले ही परिणमन कितना ही उल्टा चल रहा हो तिसपर भी स्वभावमें कोई विरुद्ध तत्त्व नहीं घुसा हुआ है, कितना विचित्र निर्णय है ? पदार्थ एक ही है और वह पदार्थ मलिन पर्यायमें है, इतनेपर भी स्वभाव कभी भी मलिन नहीं होता। ऐसी निरख कितनी विशिष्ट प्रज्ञाका फल है। यों समझिये कि जैसे ऐक्सरा लेने वाला यंत्र होता है, आदमीको लिटा देते हैं और उसका फोटो लेते हैं तो वह यंत्र न कपड़ेको छूता है, न चमड़ेको, न मांस मज्जा आदिको। इन किसीको भी न छूकर केवल हड्डीका फोटो ले लेता है। कितना भीतरमें हड्डी है, पर उन सब आवरणोंको पार करके जैसे एक्सरा यंत्र मनुष्यके शरीरका फोटो ले लेता है ऐसे ही ये ज्ञानी पुरुष इतने आवरण होनेपर भी शरीर हैं, कर्म हैं, विभाव हैं, विचार हैं, परिणतियां हैं, पर्यायें हैं इन सबको पार करके एक सहज ज्ञानस्वरूपको ग्रहण कर लेते हैं, ऐसी उनकी प्रज्ञाकी विशेषता है। जिस पुरुषने ऐसे निज अंतस्तत्त्वका लक्ष्य बनाया है वह पुरुष उदयवश किन्हीं भी परिस्थितियोंसे उसे निपटना पड़ रहा हो, फिर भी जैसे पतंग उड़ाने वाले बालकके हाथमें डोर है तो वह पतंग कहीं नहीं गयी, उसके हाथमें है, और वह बालक भी ऐसा विश्वास बनाये हुए है कि मेरी पतंग कहीं गई नहीं है, मेरे ही हाथमें है। यद्यपि हाथसे बहुत दूर है लेकिन उस बालकको यह पक्का विश्वास है कि पतंग मेरे हाथमें ही है क्योंकि हाथमें डोर है। तो ऐसे ही प्रतीति वाले पुरुषके हाथमें उसका कल्याण ही है। कहाँ जायगा कल्याण ? भले ही अनेक परिस्थितियोंवश वह कुछ मजबूर हो लेकिन दृष्टि ले जाता उस ही तत्त्वकी ओर है। तो ध्यान उससे ही बनता है जिसको अपने लक्ष्यके पकड़नेकी धुनि बन जाय, और धुनि बन गयी इसकी पहिचान यह है कि उसे और कुछ न सुहाये, अन्य बातोंमें कोई महत्त्व न समझे, किसी भी इतर बातको कोई महत्त्व वाला ही समझे। एक तो लक्ष्यके ध्यानका ही निरन्तर प्रयास करे, दृष्टि दे, अभिमुख हो, ऐसा ध्यान करने वाला पुरुष इस मंत्रपदका सहारा लेकर भी उस ही परमलक्ष्यका ध्यान करता है। वह निज ज्ञायकस्वभाव है। जिस स्वरूपको लिए हुए है उस ही स्वरूपमें उपयोग विराजे तो उसके सर्व पाप तुरन्त ध्वस्त हो जाते हैं। रह गयी वासना तो वह भी अल्पकालमें ध्वस्त हो जाती है। जिस समय ज्ञानानुभवका परिणमन है उस समय पापका परिणमन नहीं है। इस कारण सब पाप ध्वस्त हो गए। पहिले पाप किया था उनकी वासना रह गयी, वह भी अल्पकालमें ही ध्वस्त हो जायगी। सो जो उत्कृष्ट ध्यान है निज अंतस्तत्त्व है उसका परिचय पायें, उसके ध्यानमें ही सन्तोष मानें तो इसमें ही अपने कल्याणकी सफलता है।

एवं समस्तवर्णेषु मन्त्रविद्यापदेषु च।
कार्यःक्रमेण विश्लेषो लक्ष्यभावप्रसिद्धये ॥२००४॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

समस्त मंत्रविद्यापदोंमें, वर्णोंमें विश्लेषके अवबोधनका कर्तव्य—इस प्रकार समस्त वर्णोंमें, मन्त्रपदोंमें तथा विद्यापदोंमें कार्यक्रमोंके अनुसार अपने लक्ष्यकी सिद्धिके लिये विश्लेष अर्थात् भिन्न-भिन्न चिन्तवन करना चाहिये। संस्कृतकोष ग्रन्थोंमें एक एक अक्षरका भी वाच्य बताया गया है। जैसे अ का अर्थ ब्रह्म, परमेश्वर कहा गया है। इ का अर्थ लक्ष्मी, अन्तरङ्ग लक्ष्मी कहा गया है इत्यादि अनेक अर्थसे भरे हुए समस्त अक्षरोंमें लक्ष्यके अनुसार तत्त्वका चिन्तवन करना चाहिये। इसी प्रकार समस्त मन्त्रपदोंमें बीजाक्षरोंमें भी अनेक परम-तत्त्वोंका समावेश है तथा नाना ज्ञानोंसे समन्वित विद्यापदोंमें भी तत्त्व समाविष्ट हैं। विवेकी पुरुष जो कि संसार शरीरभोगोंसे अत्यन्त विरक्त हैं वे आत्मशान्तिके लक्ष्यकी सिद्धिके लिये इनका आराधन करते हैं, जो लोकधर्मप्रभावनाका विशिष्ट भाव रखते हैं वे अपने इस लक्ष्यकी सिद्धिके लिये आराधना करते हैं। जो सांसारिक समृद्धिका लक्ष्य बनाये हैं वे अपने लक्ष्यकी सिद्धिके लिये आराधना करते हैं, किन्तु इस प्रसंगमें किसी रूपमें किसी अंशमें मन्द कषाय होनेपर तथा देव गुरुके प्रति श्रद्धा होनेके कारण हुए पुण्यके कारण इस छोटे लक्ष्यकी सिद्धि होती है।

अन्यद्यद्यच्छ्रुतस्कन्धबीजं निर्वेदकारणम्।
तत्तद्ध्यायन्नसौ ध्यानी नापवर्गपथि स्खलेत् ॥२००५॥

निर्वेदकारणभूत श्रुतस्कन्धबीजरूप अन्य पदोंके ध्यानका विधान—अन्य भी जो जो श्रुतस्कन्धके बीजाक्षर हैं उनमें समाविष्ट तत्त्व हैं जो कि वैराग्यके कारण हैं उन उनका ध्यान करता हुआ यह योगी मोक्षपथमें बढ़ता है, शिवपथसे स्खलित नहीं होता है। मुक्तिपथसे गिरानेके कारणभूत हैं विषय कषायके परिणाम। इन परिणामोंका संवर होता है शुद्ध तत्त्वसे सम्बंधित पद्धतिसे ध्यान करनेके कारण। अतः इन ध्यानोंके प्रसंगमें आत्मा मुक्तिपथमें अपनी प्रगति करनेका पात्र होता है। सर्व ध्यायोंका सार निज अनादि अनन्त विशुद्ध ज्ञायक भावको लक्ष्यमें लेना है। बीजाक्षरोंमें किन्हींमें तो साक्षात् इस अनाहत अन्तस्तत्त्वका संकेत है, किन्हीं बीजाक्षरोंमें इस अन्तस्तत्त्वकी उपासनाका फल प्राप्त करने वाले प्रभुके स्वरूपका संकेत है। यों कार्यसमयसार व कारणसमयसारकी उपासना श्रुत स्कंधके बीज अक्षरोंमें मंत्रोंमें की गई है। जो विवेकी पुरुष भक्तिपूर्वक इन मंत्रोंका ध्यान करते हैं वे आत्मप्रसन्नता तो प्राप्त करते ही हैं और अनेक बार विकल्पोंका संवर होनेपर सहज आत्मीय आनन्दका भी अनुभव करते हैं जिसके प्रसादसे मोक्षपद प्राप्त होता है।

ध्येयं स्याद्वीतरागस्य विश्ववर्त्यर्थसंचयम्।
तद्धर्मव्यत्ययाभावान्माध्यस्थ्यमधितिष्ठतः ॥२००६॥

वीतराग संतके विश्ववर्ती अर्थसंचयकी ध्येयमात्रता—वीतराग संत योगियोंके विश्व-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वर्ती सभी पदार्थ ध्येय बन जाते हैं। इसका कारण यह है कि आत्मतत्त्वकी धुन रखने वाला और अतएव रागद्वेषकी कलुषतासे परे रहनेवाला योगी कुछ भी जाने उसमें इष्ट अनिष्ट बुद्धि नहीं करता है। साथ ही यह भी बात है कि ज्ञानी विरक्त पुरुष उपयोग लगा लगाकर बाह्य अर्थोंको जाननेका परिश्रम नहीं करता है, किन्तु ज्ञप्ति परिवर्तन होनेकी स्थितिमें बाह्यपदार्थ उसके ज्ञानमें आते हैं। सो कुछ भी पदार्थ ज्ञानमें आयें उनका यथार्थस्वरूप जाननेके कारण वीतराग संतोंके इष्ट अनिष्ट बुद्धि नहीं जगती है। पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपास्तित्वका उनके यथार्थ निर्णय है। प्रत्येक पदार्थ परिपूर्ण स्वास्तित्व सम्पन्न है। मैं भी परिपूर्ण निजस्वरूपमय हूं। इस कारण मुझे अन्य कुछ भी न हित हो सकता है और न अहित हो सकता है। इस विशुद्ध स्वरूपके परिचयके कारण योगीके सदैव माध्यस्थ भाव रहता है।

वीतरागो भवेद्योगी यत्किञ्चिदपि चिन्तयेत्।
तदेव ध्यानमाम्नातयतोऽन्यद्ग्रंथविस्तरः ॥२००७॥

कुछ भी चिन्तन करते हुए वीतराग रहने वाले संतके योगित्व—योगी पुरुष जिस किसी भी पदार्थका चिन्तवन करे वह वीतराग ही रहता है और वह जो कुछ भी चिंतन करे वही ध्यान कहलाता है। द्रव्य गुण पर्यायोंका चिंतन वीतरागताके पोषणमें सहायक होता है। योगी जब आत्माके द्रव्य गुण पर्यायोंका चिन्तन करता है तब भी वह विषय कषायसे परे रहनेके कारण ध्यानी कहलाता है और जब पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल पदार्थके द्रव्य गुण पर्यायोंका चिन्तन करता है तब भी विषय कषायसे परे होनेके कारण ध्यानी कहलाता है। तात्पर्य यह है कि कुछ भी तत्त्वचिन्तनमें आये वीतराग योगी पुरुषके वही ध्यान कहलाने लगता है। विशुद्ध ध्यानके प्रसंगमें मुख्यता रागद्वेष, इष्टबुद्धि, अनिष्टबुद्धि आदि विषमताओंसे परे रहनेकी है। वीतरागतासे ही आत्मा अपने विशुद्ध विकासको प्राप्त होता है। एतदर्थ वस्तुस्वरूपके यथार्थ निर्णयका होना आवश्यक है।

वीतरागस्य विज्ञेया ध्यानसिद्धिर्ध्रुवं मुनेः।
क्लेश एव तदर्थं स्याद्रागार्तस्नेह देहिनः ॥२००८॥

वीतराग मुनिके ध्यानसिद्धिकी ध्रुवता—वीतराग मुनिके ध्यानकी सिद्धि अवश्य होती है, किन्तु जो पुरुष रागसे पीड़ित है, किसी भी बाह्य परिकरका स्नेह जिसके जगा है उस प्राणीका ध्यानसिद्धिके लिये जो जो भी व्यवसाय होता है वह सब क्लेश ही है। ध्यानके इन प्रसंगोंमें जो ध्यानसिद्धिका पात्र जो वीतरागको कहा जा रहा है सो यहाँ क्षीणकषाय नामक गुणस्थान वाले वीतरागकी बात नहीं कह रहे हैं अथवा वीतराग अर्हंतदेवकी बात नहीं कह रहे हैं, वे तो ध्यानका फल भी प्राप्त कर चुके और उनके ध्यानसाधनाकी आकांक्षा ही नहीं है, वे लक्ष्य भी नहीं बनाते, इससे इन वीतराग प्रभुके वीतराग शब्दसे यहाँ नहीं कह रहे हैं, किन्तु

Report any errors at vikasnd@gmail.com

जो पुरुष संसार शरीर और भोगोंसे विरक्त हैं उन वीतराग मुनियोंको वीतराग शब्दसे कहकर उनके ध्यानकी बात कही जा रही है। ऐसे पुरुष ध्यानसे अनुराग भी करते हैं, अपनी आत्मसिद्धिका लक्ष्य भी करते हैं, किन्तु यह राग रागके अभाव करनेके लक्ष्यसे हो रहा है, इस कारण इस स्थितिमें राग रहनेपर भी वे वीतराग कहे जाते हैं। वीतराग मुनिके ध्यानकी सिद्धि अवश्य होती है। रागपीड़ित पुरुषके ध्यानकी सिद्धि नहीं होती है, बल्कि वह सब व्यवसाय क्लेशरूप ही रहता है।

निर्मथ्य श्रुतसिन्धुमुन्नतधियः श्री वीरचन्द्रोदये,
तत्त्वान्येव समुद्धरन्ति मुनयो यत्नेन रत्नान्यतः।
तान्येतानि हृदि स्फुरन्ति सुभगव्यासानि भव्यात्मनां,
ये वाञ्छन्त्यनिशं विमुक्तिललनासम्भोगसंभावनाम् ॥२००६॥

श्री वीरप्रभुके तीर्थमें धर्मप्रकाशका संकेत—अन्तिम तीर्थंकर जो इस चतुर्थकालमें हुए उन वर्द्धमान स्वामीरूप चन्द्रमाके उदय होनेपर उत्कृष्ट बुद्धिशाली मुनि जनोंने शास्त्ररूपी समुद्र को मथ करके ऐसे मंत्र तत्त्व रत्नोंको निकाला है जिनके ध्यानके प्रसादसे भव्य जीवोंने मुक्ति प्राप्त की है। अब भी जो मुक्तिके अभिलाषी हैं उनके हृदयमें इन मंत्रपदोंका ध्यान चलता है। आजका यह तीर्थ श्री वर्द्धमान स्वामीका तीर्थ है। उनके उपदेशकी परम्पराका यह सब तीर्थप्रवर्तन है। इस कारण वीर चन्द्रमाके उदयकी बात कही गई है। सार सारतत्त्व व प्रतिपादनोंका निकालना शास्त्रोंके अभ्यास बिना नहीं हो सकता है। इस कारण शास्त्रसमुद्रके मंथनकी बात कही गई है। ये बीजाक्षर समन्वित मंत्रराज अनाहत अंतस्तत्त्वकी ओर साक्षात् व परम्परया संकेत करते हैं। इस कारण ये मंत्रपद परमेश्वररूप हैं। इनके ध्यानके प्रसादसे पारमैश्वर्य प्रकट होता है।

विलीनाशेषकर्माणं स्फुरन्तमतिनिर्मलम्।
स्वं ततः पुरुषाकारं स्वाङ्गगर्भगतं स्मरेत् ॥२०१०॥

धर्मध्यानके प्रकरणमें अन्तिम शिक्षण—धर्मध्यानके चार भेद हैं—आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय, संस्थानविचय। इस प्रकरणमें संस्थानविचय धर्मध्यानका वर्णन चला है। संस्थानविचय धर्मध्यानमें विशेषता उत्पन्न करने वाले ये चार ध्यान हैं—पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत ध्यान। जिनमेंसे यह पदस्थ ध्यानका प्रकरण है। पदस्थ ध्यान में नाना मंत्रपदोंके अवलम्बनसे अनाहत अन्तस्तत्त्वकी साक्षात्, परम्परया व फलरूपमें उपासना की गई है। इन मंत्रपदोंके अभ्याससे विशुद्धि वृद्धिगत होती है। जिससे चित्त एकाग्र होनेसे तथा उत्तम लक्ष्यका ग्रहण होनेसे शुद्ध स्वरूपका प्रतिभास होता है, अनुभव होता है। उस शुद्ध तत्त्वके अनुभवके प्रतापसे कर्मोंका संवर होता है तथा कर्मोंकी निर्जरा होती है तथा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सर्व कर्मसे मुक्ति होने पर शाश्वत अनन्तज्ञानानन्द सम्पन्न हो जाता है।

पदस्थ ध्यानमें बताये हुए इन मन्त्रपदोंके अभ्यासके पश्चात् उपासकको अपने देहगत पुरुषाकार निज आत्माका चिन्तन करना चाहिये। निज आत्माका चिन्तन निज शाश्वत ज्ञानस्वभावके ध्यान द्वारा किया जाता है। यह आत्मा केवल अपने स्वरूपास्तित्वमय है जिसमें कर्म नोकर्म आदि किसी परतत्त्वका समवाय नहीं है। यह अपने आपमें अत्यन्त निर्मलरूप प्रकाशमान है। सर्वविशुद्ध ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वका ध्यान करनेमें विशुद्ध आत्मीय आनन्दका अनुभव होता है। इस आनन्दानुभवके प्रसादसे समस्त संकट निर्मूल नष्ट हो जाते हैं, आर्हन्त्य पद प्रकट होता है जिसका कि वर्णन अब आगेके प्रकरणमें रूपस्थ ध्यानके विश्लेषणमें किया जायगा।

इन मंत्र पदोंका ध्यान मुक्तिलाभका एक विशिष्ट उपाय है। इनके ध्यानसे लौकिक प्रयोजन भी नाना सिद्ध होते हैं, अणिमा महिमा आदि अनेक ऋद्धियां भी सिद्ध होती हैं, किन्तु जिन्होंने संसारके यथार्थस्वरूपको जाना है, आत्माके विशुद्धस्वरूपका परिचय किया है, आत्मीय आनन्दका अनुभव किया है उन योगीजनोंको सांसारिक सिद्धियोंसे कोई प्रयोजन नहीं होता। ज्ञानी योगीश्वरोंके केवल ज्ञानमात्र आनन्दघन निज अन्तस्तत्व ही उपादेय है। गृहस्थ जन भी यथाशक्ति इन पदोंका ध्यान करते हैं। उनको भी मोक्षमार्गके प्रयोजनसे ही ध्यान करनेको कल्याणकारी कहा गया है। जो महापुरुष इन मन्त्रपदोंका, बीजाक्षरोंका, अक्षरपदोंका अर्थ, रहस्य ध्यानमें रखकर एकचित्त होकर श्रद्धापूर्वक ध्यान करते हैं वे उत्तम पदस्थध्यानी हैं और वे आत्मकार्यकी सिद्धि प्राप्त करते हैं।

॥ ज्ञानार्णव प्रवचन एकोनविंश भाग समाप्त ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com